Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113065

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1883
82
1831

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन पत्रिका

RT-0602

चैत्र–ज्येष्ठ : शक १८८३ • भाग – ४७ : अंक – २

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113065
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन-पत्रिका

[त्रैमासिक]

113065

[भाग--४७, संख्या--२]
चैत्र-ज्येष्ठ : शक १८८३

सम्पादक
ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

वार्षिक आठ रुपये } हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग { एक प्रति दो रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

पृष्ठ

१. मतिराम नामधारी दो कवि [डाक्टर भगीरथ मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्] २
२. उन्नीसवीं शताब्दी : सांस्कृतिक संघर्षों का युग [डाक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम० ए०, डी० लिट्] १२
३. पंत की काव्य-कला [श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी] २३
४. विजयनाथ सूरि-कृत 'नेमिनाथ चतुष्पदी' [डाक्टर श्याममनोहर पांडेय, एम० ए०, डी० फिल्] ३४
५. रामायण एवं मानस में सांस्कृतिक चित्रण [डाक्टर त्रिलोकीनारायण दीक्षित, एम० ए०, डी० लिट्] ४१
६. प्राचीन जैन-ग्रन्थों में कुल और गोत्र [श्री अगरचंद नाहटा] ५६
७. घुमन्तु बनजारों के लोकगीत [डाक्टर श्याम परमार, एम० ए०, पी०एच-डी०] ६२
८. परिवहन संचार मंत्रालय में हिन्दी [श्री नवाबसिंह चौहान, एम० पी०] ७१
९. पाठविज्ञान में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द और उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन [डाक्टर हरिशंकर शर्मा 'हरीश', एम० ए०, पी० एच-डी०] ७७
१०. दिङ्नागाचार्य और उनकी 'कुंदमाला' --१ [श्री मायाप्रसाद त्रिपाठी, एम०ए०] ८८
११. महाकवि सूर की कुब्जा [डाक्टर देवेन्द्रकुमार, एम० ए०, पी० एच-डी०] १००
१२. प्रहेलिका-साहित्य की ऐतिहासिक रूपरेखा [श्री कस्तूरचंद सतभैया, एम०ए०] १०५
१३. विविधा ११८
    १. सिंध के लोकदेवता 'झूलेलाल'--प्रोफेसर मोहनलाल पुरोहित, रिसर्चस्कालर
    २. हिन्दी में शोध-कार्य--श्री देवेन्द्रकुमार जैन, एम० ए०, शास्त्री
    ३. हिन्दी-भाषी-क्षेत्र की हिन्दू-पुरुष नामावली के आधार--श्री रामरजपाल द्विवेदी, एम० ए०
    ४. कम्बर और तुलसी–एक पुनर्परीक्षण--प्रोफेसर रमेशचंद्र गंगराड़े, एम० ए०
    ५. 'विचित्र-नाटक' में अंधक-पिनाकी-युद्ध–श्री भवानीशंकर वर्मा, एम०ए०
१४. पुस्तक-परिचय--डाक्टर जयराम मिश्र, एम०ए०, पी०एच-डी०; श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ एम० ए०; श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री; श्री ओंकार शरद; श्री सत्या गुप्ता, एम० ए०; कुमारी माधवी, एम० ए०; श्री देवदत्त शास्त्री; श्री सूर्यनारायण मिश्र, एम० ए०। १३५
१५. सम्पादकीय १६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर भगीरथ मिश्र

मतिराम नामधारी दो कवि

मतिराम (१)

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक और इतिहासकार मिश्रबंधुओं के द्वारा हिन्दी कविता के नवरत्नों में परिगणित मतिराम अत्यन्त प्रतिभासंपन्न एवं उत्कृष्ट व्रजभाषा-कवि हैं। मतिराम के जीवनवृत्त एवं उनके ग्रंथों और कवित्व की सूचना तो प्रायः हिन्दी साहित्य के समस्त इतिहास-ग्रंथों में मिलेगी, परन्तु, मतिराम-संबंधी उल्लेख भिखारीदास कृत, काव्यनिर्णय, गोकुल कृत दिग्विजय भूषण, जैसे काव्य ग्रंथों में भी मिलते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों-शिवसिंह सेंगर, गार्सां दतासी, डॉ० जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबंधु, रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास आदि ने जो सूचना उनके जीवन-वृत्त और रचनाओं के संबंध में दी है, वह परंपरा-प्रसिद्ध एवं ग्रंथों के उल्लेखों के आधार पर है। जिस ग्रंथ में लगभग समस्त सामग्री का उपयोग पहले पहल भली रीति से किया गया, वह है पं० कृष्णबिहारी मिश्र कृत "मतिराम ग्रंथावली"। सब से पहले विस्तृत जीवन-चरित देनेवाला ग्रंथ "हिन्दी नवरत्न" है जिसका मुख्य आधार "शिवसिंह सरोज" है। परन्तु अब मतिराम की जीवनी एवं साहित्य को लेकर दो शोध प्रबंध भी लिखे जा चुके हैं—एक डा० महेन्द्रकुमार कृत "मतिराम-कवि और आचार्य" और दूसरा डा० त्रिभुवनसिंह कृत "महाकवि मतिराम" है। इन दोनों ग्रंथों में लगभग समग्र उपलभ्य सामग्री का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। परन्तु, अनेक प्रमाण होते हुए भी इन दोनों ही विद्वानों ने मतिराम के नाम पर मिलनेवाले समस्त ग्रंथों के रचयिता एक ही और प्रसिद्ध कवि मतिराम को माना है।

मेरा विचार इस संबंध में मतिराम नाम के दो कवियों को स्वीकार करने के पक्ष में है। इन ग्रंथों अर्थात् फूल-मंजरी, रसराज, ललितललाम, सतसई, अलंकार-पंचाशिका, छन्दसार (पिंगल) संग्रह या वृत्तकौमुदी, साहित्यसार और लक्षणाशृंगार—के रचियता दो मतिराम थे, इस बात की पुष्टि में हम निम्नलिखित प्रमाण पाते हैं:—

(१) मतिराम का जन्म-समय सं० १६६० के लगभग आता है और वृत्तकौमुदी की रचना उन्होंने सं० १७५८ में की और कुछ लोगों का विचार है कि साहित्यसार आदि की रचना और भी बाद में हुई। एक ही व्यक्ति के सभी ग्रंथ मानने पर वृत्तकौमुदी की रचना ९८ वर्ष की आयु में और अन्य ग्रंथों की रचना उसके भी बाद ठहरती है। इस अवस्था में मतिराम का श्री नगर (गढ़वाल) के राजा स्वरूपसिंह बुन्देला के आश्रय में जाना और छन्दसागर-ग्रंथ या वृत्त-कौमुदी की रचना करना अधिक संगत नहीं जान पड़ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) दोनों मतिरामों के वंशपरिचय भिन्न भिन्न हैं और दोनों का संबंध भिन्न गोत्रों के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से है।

(३) दोनों मतिरामों के समयों में ही थोड़ी भिन्नता नहीं, वरन् दोनों का कार्यक्षेत्र भी भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में रहा। मतिराम का आगरा, बूंदी आदि तथा दूसरे मतिराम का पहाड़ी क्षेत्र, कुमायूँ, गढ़वाल आदि था।

(४) दोनों की भाषा-शैली में भी भिन्नता परिलक्षित होती है। जहाँ रसराज और ललितललाम के रचयिता मतिराम की भाषा समर्थ, विदग्ध, अलंकार एवं भावव्यंजना की अद्भुत क्षमता-सम्पन्न, ऐतिहासिक-संदर्भ-संयुक्त तथा छन्द प्रवाहपूर्ण सुन्दर मोहक गतिवाले हैं, वहाँ वृत्तकौमुदीकार की भाषा सामान्य, छन्द शिथिल तथा शैली अभिधात्मक है।

(५) रसराज के प्रणेता मतिराम ने न कहीं किसी ग्रंथ में अपना परिचय दिया है और न रचनाकाल ही, क्योंकि वे स्वयं ही अति प्रसिद्ध कवि थे और उनके ग्रंथ भी अतिविख्यात थे। किसी भी दरबार में मतिराम जैसे कवि का जाना उनकी परमशोभा ही थी। अतः उन्हें अपने परिचय की आवश्यकता नहीं पड़ी। परन्तु वृत्तकौमुदीकार[1] की शैली ऐसी है जिसमें रचनाकाल भी दिया हुआ है। अतः दोनों व्यक्तियों की पद्धतियाँ अलग-अलग हैं।

(६) यदि अलंकारपंचाशिका और वृत्तकौमुदी या छन्दसार संग्रह ग्रंथ बाद में प्रसिद्ध मतिराम द्वारा अधिक परिपक्वावस्था में लिखे गये होते, तो वे निश्चय ही वैचारिक और भाषा संबंधी अधिक प्रौढ़ता का द्योतन करते। यह हो सकता है कि उनमें कवित्व की मात्रा कम हो जाती, पर उनमें अधिक संदर्भ-गर्भता होनी चाहिए। परन्तु, ऐसा नहीं है।

उपर्युक्त कारणों से दोनों मतिराम भिन्न-भिन्न हैं यह मानना उचित है। ऊपर लिखे हुए प्रथम चार ग्रंथों के प्रणेता, प्रसिद्ध कवि मतिराम हैं और दूसरे चार ग्रंथों के रचयिता दूसरे मतिराम हैं। हम पहले प्रसिद्ध मतिराम का परिचय दे रहे हैं:

यह प्रसिद्ध है कि मतिराम उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले में स्थित त्रिकमापुर (त्रिविक्रमपुर) के निवासी और प्रसिद्ध आचार्य और कवि चिन्तामणि त्रिपाठी और भूषण के भाई थे। इसका उल्लेख "वेशभास्कर" एवं 'तजकिरा' सर्व आजाद हिन्द" में हुआ है। भूषण ने प्रसिद्ध ग्रंथ 'शिवराज भूषण' में अपना परिचय इस प्रकार दिया है:—

दुज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा, तरनि तनूजा तीर॥२६

इससे स्पष्ट होता है कि भूषण रत्नाकर के पुत्र और कश्यपगोत्रीय कान्यकुब्ज त्रिपाठी ब्राह्मण थे। इस बात की पुष्टि, मतिराम के प्रपौत्र तथा चरखारी नरेश महाराज विक्रमादित्य

---

१. देखिये वृत्तकौमुदीकार मतिराम का परिचय तथा रसचंद्रिका में बिहारीलाल का परिचय—(महाकवि मतिराम—डॉ० त्रिभुवनसिंह, पृ० १०६ व ११४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के राजकवि बिहारीलाल कृत विक्रम सतसई की टीका "रसचंद्रिका" के अन्तर्गत होती है। इसमें अपना परिचय देते हुए कविवर बिहारीलाल ने लिखा है :—

बसत त्रिविक्रम पुरनगर, कालिन्दी के तीर।
विरच्यो भूप हमीर जनु, मध्यदेश को हीर॥१॥
भूषन चिन्तामनि तहाँ, कविभूषन मति राम।
नृप हमीर सनमान ते, कीन्हें निज निज धाम॥२॥
हैं पन्ती मतिराम के, सुकवि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती विदित, सीतल सुत सुमचाल॥३॥
कस्यप वंस कनौजिया, विदित त्रिपाठी गोत।
कविराजन के वृन्द में, कोविद सुमति उदोत॥४॥

इससे स्पष्ट है कि भूषण और बिहारीलाल एक ही गोत्र के थे और निश्चय रूप से मतिराम और भूषण का संबंध भाई भाई का था। नाती और पंती शब्दों से कुछ लोग दौहित्र (पुत्रीपुत्र) और प्रदौहित्र का अर्थ लगाने के पक्ष में हैं। और इस प्रकार वे मतिराम को वत्सगोत्री परंपरा में डालकर उपर्युक्त वर्णन मतिराम की पुत्री के वंश की परंपरा में रखना चाहते हैं, पर वह तर्क-संगत नहीं। पहली बात तो यह है कि वे कश्यप गोत्र पटकुलों में से है और पटकुलों में परस्पर विवाह की ही प्रथा प्रचलित रही है। वत्सगोत्रीय संबंध उनसे नहीं होते रहे। दूसरी बात यह है कि यदि ऐसा कुछ होता, तो चिन्तामणि या भूषण से बिहारीलाल का अधिक सीधा संबंध होता, क्योंकि यदि मतिराम वत्सगोत्री होते और बिहारीलाल के परनाना होते, तो या तो बिहारीलाल अपने परबाबा (प्रपितामह) का नाम लेते और यदि वे भूषण या चिन्तामणि ही होते, तो अपने को इनका प्रपौत्र कहने में भी गर्व का अनुभव करते। परन्तु, ऐसा उन्होंने नहीं किया। उन्होंने पिता से पहले अपने बाबा (पितामह) के रूप में जगन्नाथ का और परबाबा (प्रपितामह) के रूप में मतिराम, का स्मरण किया है। अत : पंती और नाती शब्द, प्रपौत्र और पौत्र के लिए ही आये हैं। ये शब्द उस क्षेत्र में इन्हीं अर्थों में प्रचलित हैं। (इस निबंध के लेखक का जन्मस्थान टिकमापुर से दस-बारह मील दूर ही है और उसने स्वयं वहाँ जाकर भी इसकी पुष्टि की है। अब भी वहाँ कबिन के घर के रूप में घरों के खंडहर विद्यमान हैं)। अतः मतिराम और भूषण दोनों ही कश्यपवंशीय त्रिपाठी तथा परंपरा-प्रसिद्धि के अनुसार सहोदर भाई थे। वत्सगोत्रीय वनपुर निवासी मतिराम दूसरे थे।

इसके अतिरिक्त "ललितललाम" ग्रंथ में कविवर मतिराम ने जो लक्षण दिये हैं, लगभग वही लक्षण भूषण ने अपने ग्रंथ, शिवराज भूषण, में भी स्वीकार किये हैं। 'ललितललाम' पहले बना है अतः निस्संकोच लक्षणों को ले लेने के कारण भी दोनों ही का सगा भाई होना प्रमाणित हो जाता है जिसमें मतिराम बड़े और भूषण छोटे थे यह भी स्पष्ट होता है। किंवदन्ती में भी भूषण का अपनी बड़ी भौजाई के ताना मारने पर घर से निकल जाने की ख्याति है। हो सकता है कि वे भौजाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतिराम की स्त्री ही हों। इनके पति राजदरबारों में प्रसिद्ध और संपत्ति प्राप्त कर चुके थे। अतः चिन्तामणि, मतिराम और भूषण ये सगे भाई थे और इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था।

मतिराम ने किसी भी ग्रंथ में अपना कोई परिचय नहीं दिया। अतः इनके जन्म समय के संबंध में भी कुछ कहना कठिन है। फूलमंजरी के आधार पर इनका जन्मसमय पं० कृष्णबिहारी मिश्र के अनुसार सं० १६६० वि० के लगभग आता है। "फूल मंजरी" इनकी सर्वप्रथम रचना है जो जहाँगीर की आज्ञा से आगरा में लिखी गयी। जहांगीर अपने राज्यारोहण का १६ वां जलूसी वर्ष आगरा में मना रहा था, उसी समय के आसपास इसकी रचना हो सकती है। वह समय १०३० हिजरी या सं० १६०८ वि० था। मतिराम की यह किशोरावस्था की रचना मानने से उनकी अवस्था उस समय १८ वर्ष की रही होगी। अतः मतिराम का जन्म संवत् १६६० वि० ठहरता है।

मतिराम का अधिकांश समय बूंदी दरबार में व्यतीत हुआ था और वहाँ के हाड़ा राजाओं की वीरता और चारित्र्य वर्णन इन्होंने अपने अलंकार ग्रंथ "ललितललाम" में किया है। जिन राजाओं का वर्णन उसमें आया है वे राव सुरजन, रावराजा भोज, राव रतन सिंह, महाराज छत्रसाल और दीवान भावसिंह हैं। "फूल मंजरी" इन्होंने जहांगीर के लिए बनायी थी। संभव है, बूंदी दरबार से इनका संबंध उस समय भी रहा हो और बूंदी नरेश के साथ ही वे आगरा गये हों। "ललित ललाम" ग्रंथ दीवान भावसिंह के आश्रय में लिखा गया और इसके अनेक छन्द उनकी वीरता एवं दान की प्रशंसा में हैं। इसके अतिरिक्त मतिराम सतसई किन्हीं राजा भोगनाथ के लिए लिखी गयी जिनका ठीक इतिहास अभी ज्ञात नहीं है। ये भी राजस्थान या मध्यप्रदेश के कोई राजा या धनीमानी किन्तु रसिक व्यक्ति ज्ञात होते हैं।

प्रसिद्ध मतिराम की केवल चार रचनायें ही प्रमाणिक मानी जानी चाहिए जो रचनाक्रम के विचार से हैं--फूलमंजरी, रसराज, ललित ललाम और सतसई। इनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

फूलमंजरी--यह मतिराम की सर्वप्रथम रचना है जो उन्होंने जहांगीर की आज्ञा पाकर आगरा में की थी। इसकी सब से प्राचीन प्रति सं० १८५० वि० की प्राप्त होती है। इसका विवरण डा० मयाशंकर याज्ञिक द्वारा ९ जुलाई १९२४ की 'माधुरी' पत्रिका में लिखित "मतिराम और भूषण" शीर्षक लेख में प्राप्त होता है। फूलमंजरी ग्रंथ के अन्तिम दोहे के अनुसार यह मतिराम की रचना है। दोहा इस प्रकार है :--

हुकुम पाय जहाँगीर को, नगर आगरे धाम।
फूलनि की माला करी, मति सों कवि मतिराम ॥६०॥

पं० कृष्णबिहारी के अनुसार यह समय जहाँगीर का १६ वें जलूसी वर्ष के उत्सव का समय था जो सं० १६७८ (१०३० हि०) में मनाया गया था। उस समय मतिराम की आयु १८ वर्ष के लगभग रही होगी, क्योंकि यह किशोरावस्था की रचना जान पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फूल मंजरी" के प्रत्येक दोहे में एक फूल का नाम है जिसके श्लेषार्थ से नायिका का संकेत मिलता है। इस ग्रंथ की भाषा सरल एवं सहज प्रवाहयुक्त है। किशोर भावों को अभिव्यक्ति देनेवाली इस रचना से मतिराम की रसिकता प्रकट होती है। इस रचना का सबसे बड़ा महत्व यही है कि इससे मतिराम की जन्मतिथि का अनुमान लगता है।

रसराज--मतिराम की प्रसिद्धि का मुख्य आधार "रसराज" है। यह शृंगार रस और नायिकाभेद पर लिखा ग्रंथ है। बिहारी की सतसई के समान ही रीतिकालीन ग्रंथों में रसराज प्रसिद्ध रहा है। इसकी सब से प्राचीन प्रति सं० १७८० की लिखी मिली है और सब से प्रथम यह ग्रंथ संवत् १९२५ वि० में, काशी में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। आज भी विभिन्न हस्तलिखित ग्रंथालयों में रसराज की प्रतियाँ मिलती हैं। अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ इस ग्रंथ की मौजूद हैं। रसराज का सब से प्रामाणिक संस्करण पं० कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा संपादित 'मतिराम ग्रंथावली' में मिलता है।

'रसराज' का रचनाकाल सं० १६९० और १७०० के बीच में ठहरता है। यह मतिराम का युवावस्था में लिखा गया ग्रंथ है और ललितललाम के पूर्व की रचना है, क्योंकि वह अधिक प्रौढ़ है। रसराज किसी के आश्रय में न लिखा जाकर स्वतंत्र ग्रंथ है। इस ग्रंथ में शृंगार के आलंबन नायिका-नायक तथा उनके भेदों का और उसके पश्चात् भावों, हावों एवं शृंगार रस के अंगों का बड़ा रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ की प्रमुख विशेषता सहज भावों का स्वाभाविक चित्रण है। बिहारी के समान इसमें हावभाव का चटकीला आकर्षण एवं मुखररूप न होकर सजह किशोर एवं सकुमार भावनाओं का मूक चित्रण है। अपने मौन रूप में ही चित्रण की विशेषता के कारण समस्त आंतिरिक भावभंगिमा छन्दों में मुखरित हो जाती है। रसराज के नायक नायिका, अधिक चतुर और क्रिया विदग्ध न होकर अल्हड़, शिष्ट, सुकुमार एवं भावुक व्यक्ति हैं जिनकी भावनाओं में प्रभावशीलता तथा सहानुभूति जाग्रत करने की विशेषता है। वे सीधे सच्चे सरल भावोंवाले नायिका-नायक हैं।

रसराज को मतिराम ने भाव-संपति से सम्पन्न किया है। इसमें जिन भावों का वर्णन है वे प्रधानतया किशोर एवं युवावस्था से संबन्ध रखते है। रसराज में मतिराम की प्रतिभा अलंकरण एवं अप्रस्तुत कल्पना की उतनी नहीं प्रगट होती जितनी विविध प्रसंग-कल्पना की। अतएव अनेक छन्दों में घटना-वर्णन एवं प्रबंध-वक्रता की सी रोचकता निहित है। इन्हीं विशेषताओं के कारण "रसराज" रसिकजनों का कण्ठहार रहा है। इसकी अनेक टीकाएँ भी हुई हैं।

ललितललाम--यह ग्रंथ बूंदी नरेश दीवान भावसिंह के आश्रय में लिखा गया अलंकारों का रीति-ग्रंथ है। इसका रचनाकाल सं० १७२० के आसपास माना जाता है। रसराज की भाँति "ललित-ललाम" की भी टीकाएँ हुई हैं और यह भी रीतिकाल का एक अति प्रसिद्ध ग्रंथ है। राजवंश-प्रशंसा के उपरान्त "ललित ललाम" ग्रंथ में अलंकारों के लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं। लक्षण तो चन्दालोक एवं कुवलयानंद के आधार पर हैं, परन्तु उदाहरण मतिराम के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निजी हैं और वे अधिकांश राव भावसिंह या उनके पिता पितामह की वीरता या दान का वर्णन करनेवाले हैं।

"ललितललाम" में "रसराज" के भी कुछ छन्द उदाहरण स्वरूप आये हैं और 'सतसई' के भी। परन्तु "ललितललाम" के छन्दों की विशेषता उनकी प्रौढ़ता एवं ऐतिहासिक संदर्भ-गर्भता में देखी जा सकती है। इसमें मतिराम की सहज निश्चल भावुकता के स्थान पर सूक्ष्म एवं उच्च कल्पनाशीलता प्रकट हुई है।

सतसई--मतिरामकृत सतसई भी उनकी एक ललित एवं सुन्दर रचना है। इसके दोहों की रचना यद्यपि पहले भी होती रही होगी, परन्तु इसका संकलन सं० १७४० के आसपास "बिहारी सतसई" की प्रेरणा पर किया गया। यह सतसई, किन्हीं भूप भोगनाथ के लिए लिखी गयी, जो एक धनी एवं रसिकजीव थे और संभवतः व्रज, राजस्थान या बुन्देलखंड के निवासी थे। इनके संबंध में कुछ अधिक ज्ञात नहीं हो सकता। सतसई में आये इनसे संबंधित १८ दोहों से इनके सुन्दर, दानशील, उदार, सम्पत्तिमान एवं रसिक होने का पता चलता है। मतिराम-सतसई में आये अनेक दोहों से यह स्पष्ट पता चलता है कि यह बिहारी सतसई के दोहों की प्रेरणा से लिखी गयी। फिर भी इसके बहुसंख्यक दोहे मौलिक एवं सुन्दर हैं।

सतसई की भाषा सरल एवं ललित व्रजभाषा है। इसका वर्ण्य विषय मुख्यतया शृंगार है फिर भी कुछ दोहे सामान्य नीति सम्बन्धी भी हैं। इस ग्रंथ में प्रेम, नायिका भेद, रूप-सौन्दर्य, चेष्टा, विरह आदि पर स्मरणीय दोहे हैं। इसके अन्तर्गत शब्दलालित्य के साथ साथ भाव-भंगिमा एवं नव्यकल्पना का भी वैभव है। उदाहरणार्थ--

अरुन बसन निकरीं पहिरि, पावस में छविखानि।
इन्द्रगोप सी गोपिका, गोप इन्दु लखि आनि॥३३०॥

कुंद न पावत रदन रुचि, कुंदन अंग प्रकास।
चंद न पावत वदन छवि, चंदन अंग सुवास॥३४७॥

तिहिं पुरान नवद्वै पढ़े, जिहिं जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा, नव पुरान ह्वै जात॥३६४॥

भयो सिंधु ते विधु सुकवि वरनत सुमति विचार।
उपज्यो तो मुख इंदु तें, प्रेमपयोधि अपार॥४१६॥

मतिराम के उपर्युक्त ग्रंथों में सभी महत्वपूर्ण हैं फिर भी इनकी विशिष्ट ख्याति के आधार-स्वरूप रसराज एवं ललितललाम ही हैं। मतिराम का रीतिकालीन कवियों के बीच अत्यंत उत्कृष्ट स्थान है और हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत वे उच्च प्रतिभा-संपन्न कवियों में परिगणित होते हैं। व्रजभाषा पर सहज अधिकार, कल्पना का अपार वैभव एवं सूक्ष्म भावों की सरल, मधुर तथा अविस्मरणीय अभिव्यक्ति मतिराम के काव्य के विशिष्ट गुण हैं। रूप-सौन्दर्य, भाव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंगिमा, चेष्टा एवं प्रेम की सूक्ष्मानुभूतियों का जैसा सजीव चित्रण मतिराम कर सके हैं, वह साहित्य में चिरस्थायी निधि के रूप में गृहीत हैं।

मतिराम--(२)

मतिराम द्वितीय का परिचय केवल वृत्तकौमुदी के आधार पर ही प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में दिये हुए इनके परिचय के दोहे इस प्रकार हैं:--

तिरपाठी बनपुर बसै, वत्सगोत्र सुठिगेह।
विबुध चक्रमणि पुत्र तहँ, गिरिधर गिरिधर देह॥
भूमिदेव बलभद्र हुअ, निर्तहि तनुज मुनि-गान।
मंडित पंडित मंडली, मंडन मही महान॥
तिनके तनय उदार मति, विस्वनाथ हुअ नाम।
दुतिधर श्रुतिधर कौ अनुज, सकल गुननि कौ धाम॥
तासु पुत्र मतिराम कवि, निज मति के अनुसार।
सिंह स्वरूप सुजान को, बरन्यो सुजस अपार॥

(वृत्त कौमुदी)

इस वृत्तकौमुदी का विवरण पं० भागीरथप्रसाद दीक्षित ने अपने लेख तथा भूषण-विमर्श नामक ग्रंथ में दिया है। इसके अनुसार मतिराम के पिता का नाम विश्वनाथ था, पितामह का बलभद्र, प्रपितामह का गिरधर। वे वत्सगोत्री त्रिपाठी थे और इनका निवास स्थान बनपुर था। ये प्रसिद्ध मतिराम से भिन्न थे जिनका परिचय बिहारीलाल कृत रसचंद्रिका में और पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा ढूँढे गये मथुरा के चौबों के यहाँ प्राप्त वंशवृक्ष में मिलता है। इसके अनुसार मतिराम के पिता रतिनाथ और पुत्र जगन्नाथ, पौत्र शीतल तथा प्रपौत्र बिहारीलाल थे। अतः यह कल्पना भी सही नहीं उतरती कि मतिराम की पुत्री की वंश परंपरा में बिहारीलाल थे और इस कारण गोत्र मिलता है। इसलिए दोनों मतिराम भिन्न भिन्न थे और वृत्तकौमुदी के रचयिता वत्सगोत्री द्वितीय मतिराम थे और वे रसराज के रचयिता कश्यपगोत्री मतिराम से भिन्न व्यक्ति थे।

वत्सगोत्रीय, बनपुर निवासी मतिराम द्वितीय का परिचय और अधिक प्राप्त नहीं होता। यों टिकमापुर के निकट ही जिला फतेहपुर में बनपुरा नामक ग्राम है और हो सकता है कि यही मतिराम द्वितीय का स्थान बानपुर हो। इन मतिराम की लिखी हुई रचनायें हैं:--अलंकार पंचाशिका, साहित्यसार, लक्षण श्रृंगार और छन्दसारसंग्रह या वृत्तकौमुदी। इन ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय यहाँ पर दिया जाता है। ये समस्त ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित हैं।

अलंकार पंचाशिका--अलंकार पंचाशिका जैसा कि नाम से ही विदित है, अलंकारों पर लिखा गया ग्रंथ है। इसका रचनाकाल सं० १७४७ वि० है, जो निम्नलिखित दोहे से स्पष्ट है:--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत सत्रह सै जहाँ, सैंतालिस नभमास।
अलंकार पंचासिका, पूरन भयो प्रकास ॥११६॥

अलंकार पंचाशिका के अनेक छन्दों में "मतिराम" की छाप है, अतएव यह मतिरामकृत ग्रंथ है, इसमें सन्देह नहीं।

इसके प्रारंभिक छन्दों से पता चलता है कि यह संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर कुमायूं नरेश उदोतचन्द्र के पुत्र ज्ञानचन्द के लिए लिखा गया था :--

संसकिरत को अर्थ लै भाषा शुद्ध विचार।
उदाहरण क्रम ए किये, लीजो सुकवि सुधार॥
ज्ञानचंद के गुन घनै, गनै भनै गुनवन्त।
बारिधि के मुकतान को, कौने पायो अन्त॥
तदपि यथामति सों कह्यौ, शब्द अर्थ अभिराम।
अलंकार पंचासिका, रची रुचिर मतिराम॥

अलंकार पंचाशिका में दोहा, सवैया, कवित्त आदि छन्दों में लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं। इसके भीतर ४८ अलंकारों का भेदप्रभेदों के साथ वर्णन किया गया है। इसके छन्दों में ज्ञानचन्द के दान और वीरता का वर्णन आया है। पंचाशिका के छन्द ओज-गुण प्रधान तथा सरल हैं। भाषा साफ है, परन्तु छन्द की गति एवं कल्पना की नव्यता प्रसिद्ध मतिराम के ग्रंथों की सी नहीं है।

साहित्यसार--यह ग्रंथ १० पृष्ठों का नायिकाभेद पर लिखा द्वितीय मतिराम का ही जान पड़ता है। इसकी हस्तलिपि किसी समय दतिया राजपुस्तकालय में थी, पर अब प्राप्य नहीं है। इसका प्रतिलिपिकाल सं० १८३७ तथा रचनाकाल पं० कृष्णबिहारी मिश्र के अनुसार सं० १७४० वि० ठहरता है। यह सामान्य महत्व का ग्रंथ है। (विशेष विवरण के लिए देखिए 'साहित्यसार')

लक्षण-श्रृंगार--यह ग्रंथ भी मतिराम द्वितीय-द्वारा रचित श्रृंगाररस के भावों और विभावों का वर्णन करने वाला है। खोज रिपोर्ट के अनुसार इसकी सं० १८२२ की हस्तलिखित प्रति बिजावर राज्य में थी। पं० कृष्णबिहारी मिश्र के अनुसार इसका रचनाकाल सं० १७४५ मानना चाहिए। यह भी सामान्य महत्व का ही ग्रंथ जान पड़ता है। (विशेष विवरण के लिए देखिये 'लक्षण-श्रृंगार')

(४) छन्दसार संग्रह या वृत्तकौमुदी--यह ग्रंथ मतिराम के नाम पर "छन्दसार पिंगल" के रूप में प्रसिद्ध है। इसका यह नाम शिवसिंह सरोज से चालू हुआ। वास्तव में इसका नाम छन्दसार संग्रह (पिंगल) यह होना चाहिए था। मतिराम द्वितीय के ग्रंथ वृत्तकौमुदी में अधिकांश स्थलों पर "छन्दसारसंग्रह" ही ग्रंथ का नाम आया है, जैसे :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छंदसार संग्रह रच्यो, सकल ग्रंथ मति देखि।
बालक कविता सिद्धि को, भाषा सरल विशेखि ॥९॥

तथा

जगत जासु अवलम्ब लहि मतिराम सुकवि हित चित धरिय।
रचि छन्दसार संग्रह सरस सु इमि दंडक पद्धति करिय ॥१०॥

यह ग्रंथ गढ़वाल श्रीनगर के राजा फतेह साहि बुंदेला के पुत्र स्वरूप साहि बुंदेला के आश्रय में लिखा गया था। छन्दसार संग्रह और वृत्तकौमुदी एक ही ग्रंथ हैं जिसका रचना काल सं० १७५८ वि० है। दोहा इस प्रकार है :—

संवत सत्रह सौ बरस, अट्ठावन सुभ साल।
कार्तिक शुक्ल त्रियोदसी, करि बिचार तिहिकाल ॥ (५ वाँ प्रकाश)

रचनाकाल वाले उपर्युक्त दोहे से अलंकार पंचाशिका के रचनाकालवाले दोहे से तुलना करने पर स्पष्ट ही दोनों एक ही व्यक्ति की रचनायें जान पड़ती हैं, क्योंकि रचनाकाल को प्रकट करने की पद्धति दोनों में एक सी है। "छन्दसारसंग्रह" की दो प्रतियाँ (हस्तलिखित रूप में) प्राप्त हैं। एक नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में और दूसरी फतेहपुर के निकट एक ग्राम पुस्तकालय में। सभा की प्रति खंडित है और दूसरी प्रति पूर्ण कही जा सकती है, पर भाषा की दृष्टि से बड़ी भ्रष्ट है। यह पाँच प्रकाशों में है। प्रथम प्रकाश में गणेश सरस्वती की वन्दना के पश्चात् अपने आश्रयदाता स्वरूपसाहि बुन्देला की दानवीरता की प्रशंसा है। उसके बाद से इसमें तथा अन्य प्रकाशों में छन्द संबंधी विविध सूचनायें हैं (विवरण के लिए देखिए वृत्तकौमुदी तथा डा० महेन्द्रकुमार कृत "मतिराम-कवि और आचार्य" पृ० ६७ तथा ३१०)

छंदसारसंग्रह या वृत्तकौमुदी छन्द का विस्तृत विवेचन करने वाला ग्रंथ है। लक्षण और उदाहरण दोनों ही स्पष्ट हैं। अतः यह एक महत्वपूर्ण छन्दशास्त्र का ग्रंथ है।

इस प्रकार द्वितीय मतिराम यद्यपि मतिराम की भाँति उत्कृष्ट प्रतिभा के कवि नहीं थे, फिर भी रीतिकालीन आचार्य कवियों में उनका एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनका भी राजाओं के दरबार में समुचित सम्मान हुआ था, यह उनके वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

उन्नीसवीं शताब्दी : सांस्कृतिक संघर्षों का युग

आधुनिक भारतीय सांस्कृतिक जीवन न मालूम कितने तत्वों के सम्मिश्रण से बना है। भाषा, साहित्य, संगीत, कला, धर्म और वेशभूषा, आचार-विचार आदि की दृष्टि से अनेक देशी विदेशी जातियों ने उसके निर्माण, स्वरूप-गठन और विकास में योग प्रदान किया है। इनमें से भारत में आर्यागमन से पूर्व की जातियों, स्वयं आर्यों, आर्येतर जातियों, मुसलमानों और अंत में यूरोपियनों (विशेषतः अंगरेजों) के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इतिहासविदों ने भारत और मुसलमानों के माध्यम द्वारा इस्लामी संस्कृति के युग को मध्ययुग के नाम से तथा भारत और यूरोपीय संस्कृति के संपर्क-काल को आधुनिक युग के नाम से अभिहित किया है। भारत में यूरोपीय संस्कृति का वपन-काल उन्नीसवीं शताब्दी है। इस शताब्दी से पूर्व यहां का जीवन मध्ययुगीन पौराणिक वातावरण में डूबा हुआ था। मध्ययुगीन जीवन यद्यपि वीर, दर्प-पूर्ण एवं उत्तेजना पूर्ण था, उस समय दो संस्कृतियों के सम्मिलन के परिणाम-स्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रियाशीलता का जन्म हुआ था, तो भी तत्कालीन जीवन मन्दगति-पूर्ण और विस्तारभार से बोझिल था। इस प्रवृत्ति के दर्शन उस समय की सबीह तथा चित्रकला के अन्य रूपों, शिल्प की पच्चीकारी तथा सजावट और हिन्दी की रीतिकालीन कविता में होते हैं। उसमें तेजी या त्वरित गति नहीं थी। ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अंतिम पचास वर्षों में जब राजनीतिक अस्तव्यस्तता, अराजकता और विश्रृंखलता उपस्थित हुई तो मध्ययुगीन जीवन की मंद गति को अवरुद्ध होते देर न लगी। कहा जाता है कि एक बार शाह आलम ने किसी अंगरेज को खिलिअत प्रदान की। उसके साथ जो हाथी दिया गया था वह बीमार था। भारत के सम्राट के लिए यह सचमुच शोचनीय परिस्थिति थी। किन्तु दान में दिया गया उसका हाथी यदि तत्कालीन जीवन का प्रतीक मान लिया जाय तो असंगत न होगा। हाथी अपनी मंद गति के साथ-साथ रोग भी धारण किए हुए हो तब तो भगवान् ही रक्षक है।

इस शताब्दी में यूरोपीय उपनिवेशवाद अपनी पूर्ण शक्ति के साथ देश में आया और शीघ्र ही उसका प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। एक विदेशी व्यवसायात्मिका बुद्धि-सम्पन्न कंपनी ने धीरे-धीरे देश की राजनीति में अपना निश्चित स्थान बना लिया। सर्वप्रथम उसने आर्थिक क्षेत्र में अपने पैर जमाए। अपने आर्थिक हितों की रक्षा करने के लिए उसने सैनिक दल रखे और अन्ततोगत्वा वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजनीति का नियंत्रण करने लगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि अठारहवीं शताब्दी की अराजकतापूर्ण परिस्थितियों से उसने भरपूर लाभ उठाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंपनी की बढ़ती हुई शक्ति के साथ साथ ईसाई धर्म-प्रचारक आए जिन्होंने देश के धार्मिक जीवन को अपने अभियान का लक्ष्य बनाया। प्रारंभ में उन्हें आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई। किन्तु उनके राजनीति-मिश्रित धर्म ने देशवासियों को शीघ्र ही सचेत कर दिया। वास्तव में आर्थिक शोषण और ईसाइयों के धर्म-प्रचार-कार्य ने देश में कटुता के बीज बोए। उन्नीसवीं शताब्दी में ही दो-तीन बार विदेशियों को देश से बाहर निकाल देने के प्रयत्न हुए। (वैलोर, वाहबी आन्दोलन, १८५७ का विद्रोह) किन्तु अपनी चरित्रगत दुर्बलताओं, दोषों एवं विदेशियों की प्रबल संगठन-शक्ति और अनुशासन के कारण देश को सफलता प्राप्त न हो सकी। पैर जम जाने पर अंगरेजों ने अनेक शासन संबंधी सुधार किए। वणिक लोग शासक बन बैठे। मालगुजारी और टैक्सों के रूप में उन्होंने देश से अपार धन बटोरा। यहां के खनिज पदार्थों और प्राकृतिक साधनों पर उनका स्वत्व स्थापित हो जाने के कारण देशवासियों की अवस्था शोचनीय हो गई। किन्तु नवीन शिक्षा, प्रेस, रेल, तार जैसे नवीन आविष्कारों के प्रचार से देश का पाश्चात्य विचार-परंपरा और साहित्य से संपर्क स्थापित हुआ। देशवासियों में नवीन साहित्यिक, कलात्मक और शासन-संबंधी अकांक्षाएं उत्पन्न हुईं। यहां एक महत्वपूर्ण बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि जहां देश में एक ओर पाश्चात्य प्रभाव अत्यन्त तीव्रता से बढ़ रहा था, वहां दूसरी ओर अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परंपराओं से, पुरातत्व विभाग के माध्यम द्वारा सामने आए प्राचीन कला के उदाहरणों से और विभिन्न स्थानीय साहित्यों के समृद्ध भंडारों से प्रेरणा ग्रहण करने के कारण देश का ध्यान अपने प्राचीन गौरव की ओर गया। लोगों को यह ज्ञात होते देर न लगी कि देश सदैव भू-लुंठित नहीं था, कालगति से उनके बुरे दिन आ गए थे। जब यूरोप निवासी बर्बर थे, जब वे पेड़ की छालों से बने वस्त्र पहनते थे और गुफाओं में रहते थे,उस समय भारतवर्ष सभ्यता के उच्च शिखर पर था। उन्हें भारतवर्ष 'विश्व गुरु" के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा, एक ऐसे देश के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा जिसका अपना एक ऐसा सन्देश था जिससे मानवता का कल्याण हो सकता था। यहीं से देश में "पूर्व" और "पश्चिम" का संघर्ष शुरू होता है। यह एक विचित्र ऐतिहासिक घटना है कि आधुनिकता के जन्म के समय से ही आधुनिक भारत का निर्माण ऐसे महापुरुषों द्वारा हुआ जो पाश्चात्य भौतिक दृष्टिकोण से, पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान से प्रभावित होते हुए भी भारतीय आध्यात्मिक गरिमा और सन्देश भूल नहीं गए थे—राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, बालगंगाधर तिलक, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, योगी अरविन्द, रमण महर्षि, मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी आदि। उन्नीसवीं शताब्दी में इस संघर्ष का परिणाम पाश्चात्य संस्कृति और शासकों के विरोध के रूप में प्रकट हुआ—१८५७ के विद्रोह के पीछे भी सांस्कृतिक कारण बताया जाता है। आर्य-समाज-आन्दोलन (१८७५) और इंडियन नेशनल कांग्रेस (१८८५) इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। संसार में अपना आध्यात्मिक सन्देश प्रदान करने के लिए देश ने राजनीतिक एवं आर्थिक दासत्व की श्रृंखला तोड़ना अनिवार्य समझा। इसी संघर्ष के फलस्वरूप सक्रियता ही भारतीय नवोत्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रथम चरण के नाम से अभिहित की जाती है। यह नवोत्थान अनेक परस्पर विरोधी तत्वों से निर्मित था और उसकी निश्चित परिभाषा देना कठिन है। किन्तु धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन और आध्यात्मिकता उसके प्रधान स्तंभ थे। उसकी तुलना यूरोपीय नवोत्थान से अधिक न की जाकर आयर्लैंड के केल्टिक नवोत्थान से की जानी चाहिए। उन्नीसवीं शताब्दी की राष्ट्रीयता भी इस प्रारंभिक नवोत्थानकालीन भावना से प्रभावित थी, उसमें भी धर्म और आध्यात्मिकता को स्थान प्राप्त था।

मध्ययुग की तुलना में जीवन की उपर्युक्त परिस्थितियों के बीच अवतरित उन्नीसवीं शताब्दी का अध्ययन करने पर दोनों के बीच स्पष्ट विभाजन-रेखा खींचना सरल कार्य हो जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी प्राचीन और नवीन का संधि-काल है और देश के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक जीवन में एक नितान्त नूतन मोड़ प्रस्तुत करती है। पिछली शताब्दी का स्वाभाविक विकास होते हुए भी वह जीवन, कला और साहित्य को देखने और परखने के लिए ऐसी विचारधारा और ऐसे दृष्टिकोण को जन्म देती है जिसका अस्तित्व पहले कभी नहीं मिलता। क्योंकि, एक ओर तो भारतीय जीवन सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ शिक्षा-पद्धति के अभाव के कारण अनेक मध्ययुगीन कट्टर, गतिहीन, रूढ़िबद्ध, असामाजिक और अनुदार अंधविश्वासों, कुरीतियों और कुप्रथाओं से भरा हुआ था, समाज में कूपमंडूकता का प्रचार था, उसकी सर्जनात्मक और नव नवोन्मेषशालिनी शक्ति और उच्च आकांक्षाओं एवं साहसिक प्रकृति का ह्रास हो गया था और भारतीय-इस्लामी सभ्यता एवं संस्कृति का सूर्य अस्ताचलगामी हो चुका था, तो दूसरी ओर परंपरा और रूढ़ि-प्रियता तथा पौराणिकता का मोह छोड़ कर नवीनता की ओर बड़ी तीव्रता के साथ बढ़ रहा था जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि भारतीय जीवन अपने दुर्दिन देख रहा था, तो भी वह नितांत निष्प्राण नहीं हो गया था। उन्नीसवीं शताब्दी में वह अपनी शक्ति में लग गई जंक साफ करने के लिए प्रयत्नशील हुआ। प्रयत्न की यह प्रक्रिया उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक आते-आते अपने तीव्र रूप में प्रकट होने लगी थी। ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय जीवन में अभिव्यक्ति यह प्रक्रिया उस महान ऐतिहासिक क्रम का एक अंग थी जो उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ पूर्व से ही, प्रधानतः ऐंग्लो सैक्सन सभ्यता के सम्पर्क द्वारा, मिश्र, टर्की, अरब, ईराक, ईरान, अफगानिस्तान, चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, मलयद्वीप आदि समस्त पूर्वी संसार का जीवन स्पन्दित कर रहा था। यह क्रम साम्राज्यवादी अवश्य था और वह स्वार्थ-मुक्त कभी नहीं था, तो भी भारत ही नहीं, एशिया का सारा भूभिभाग अपनी क्रियात्मक शक्ति का ह्रास हो जाने के कारण पश्चिम से प्रभावित हुए बिना न रह सका। हां, भारतवर्ष के संबंध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि एक प्राचीन तथा उच्च सभ्यता का उत्तराधिकारी और यूरोप से दूर होने के कारण वह दूसरा टर्की न बन पाया। यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य है कि पश्चिम की भौतिकता का धक्का खाते ही भारत अपने वास्तविक आध्यात्मिक जीवन का मूल्य समझ बैठा। भारत के नवीन शासकों ने फोर्ट विलियम कॉलेज (१८००ई०) के माध्यम द्वारा जिस नवीन शिक्षा का सूत्रपात किया था उससे भारतीय दृष्टिकोण में परिवर्तन हुए बिना न रह सका। तभी तो कॉलेज के संस्थापक मार्क्विस वेलेजली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने उसे एशियाई ज्ञानांधकार के बीच प्रकाश-स्तंभ के रूप में माना था। इस शिक्षा का प्रभाव प्रसारित करने में प्रेस तथा अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों ने अपनी शक्ति का परिचय दिया। महत्व की बात यह है कि पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का भारतीय जीवन पर अविश्वसनीय ढंग से तीव्र प्रभाव पड़ा। उसने जीवन एकदम झकझोर डाला। मशीनों, प्रेसों, तार, डाक, रेलों, एंजिनों आदि का प्रभाव तत्कालीन एक-दो पीढ़ी में ही मालुम होने लगा था जिसके फल-स्वरूप जीवन के मानदंड बदलने लगे थे। साथ ही पाश्चात्य विद्वानों ने देश के प्राचीन धर्मशास्त्रों का विधिवत् संपादन किया। भाषाओं और साहित्यों का परिश्रम पूर्वक अध्ययन कर नवीन आधुनिक शिक्षा की नींव डाली। फलतः पिछली मानसिक निष्क्रियता में स्पन्दन उत्पन्न हुआ। भारतवासी (Self-Conscious) हुए। जीवन में नई संभावनाएं प्रत्येक मास, वर्ष और दशाब्द में दृष्टिगोचर होने लगीं। बाहर की दुनिया से परिचय प्राप्त करने, नवीन शिक्षा, प्रेस तथा पत्रकार-कला, यातायात के वैज्ञानिक साधनों के फलस्वरूप देश का एक सूत्र में बद्ध हो जाने, स्त्री-शिक्षा के प्रचलित हो जाने आदि के कारण देशवासियों का दृष्टिकोण व्यापक और ऐक्य-सम्पन्न हुआ। यूरोप के औद्योगिक क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास, वहां के निवासियों का भूगर्भ में प्रवेश करने, समुद्रतल तक पहुंचने तथा ऐसी ही अन्य रोमान्चकारी कथाएं भारतीय मन को उद्वेलित करने लगीं। यहां के निवासियों को मनुष्य शरीर के संबंध में अनेक बातें मालूम हुईं। उन्होंने वैज्ञानिक और मशीनों द्वारा मनुष्य को नवीन शक्ति अर्जित करते देखा, उसे पहले से अधिक शक्तिशाली बनते देखा। उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय जीवन में प्रेस और बारूद ने तो अपना प्रभाव दिखाया ही था, किन्तु कम्पास, दूरबीन आदि ने यह भावना भी उत्पन्न कर दी कि मनुष्य अपने चारों ओर की परिस्थितियों पर काबू पाने की क्षमता भी रख सकता है। वास्तव में कोपर्निकस, मिल, मोर्ले तथा अन्य यूरोपीय विद्वानों के विचारों ने भारतीय मध्ययुगीन जीवन की जड़ हिला दी। यही उन्नीसवीं शताब्दी का वास्तविक महत्व है। नहीं तो राजनीतिक उत्थान-पतन पहले भी हो चुके थे।

नित्य नये अविष्कारों के युग में भारतीय मन का नई दिशाएं खोजना स्वाभाविक था। अपनी प्राचीन समृद्ध संस्कृति का संबल लेकर उसने नवीन से प्रेरणा ग्रहण की। भौतिक दृष्टि से पश्चिम से अनेक बातें सीखने के साथ-साथ भारतवासी आत्म-मंथन में प्रवृत्त हुए। इस आत्म मंथन का बीजारोपण तो उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही हो गया था—राजा राममोहन राय उसके प्रतीक हैं। उत्तरार्द्ध में वह भलीभांति अंकुरित और पल्लवित हुआ जिसे भारतीय नवोत्थान के नाम से अभिहित किया जाता है।

भारत में अंगरेजी राज्य के अन्तर्गत आर्थिक शोषण, जाति और रंग भेद, मिशनरियों की धार्मिक संकीर्णता आदि से जीवन को बड़ी भारी क्षति पहुँची, इसमें तो कोई सन्देह नहीं। किन्तु उसका एक दूसरा लाभपूर्ण पक्ष भी था। अन्य लाभों के अतिरिक्त प्राचीन वस्तुओं के संग्रह और संरक्षण की दृष्टि से देश को लाभ हुआ, अन्यथा न मालूम कितने बहुमूल्य ग्रन्थ और भव्य इमारतें नष्ट हो जातीं। अंगरेज और उनके साथ कुछ देशी विद्वानों ने न केवल प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत और हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों की खोज की, वरन् प्रेस और नवीन शिक्षा के अन्तर्गत निर्धारित पाठ्य-क्रमों के माध्यम द्वारा उन्हें सबके लिए सुलभ बनाया। अंगरेजों द्वारा स्थापित स्कूलों, कालेजों और यूनिवर्सिटियों में पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ भारतीय विद्याओं का पठन-पाठन भी होता रहता था। विद्या-व्यसनियों को साधारण ग्रन्थ तो उपलब्ध हुए ही, साथ ही अनेक लोकप्रिय और प्रसिद्ध व्यक्तियों के ग्रन्थ प्राप्त हो जाने से उनमें काफी उत्तेजना और उत्साह का प्रचार हुआ। गड़ी हुई रत्न-राशि प्रेस जैसे वैज्ञानिक अविष्कार द्वारा बहुसंख्यक लोगों को प्राप्त हुई। प्रेस ने नवीन विचारों को फैलाने में ही सहायता नहीं की, वरन् प्राचीन ऋषि-मुनियों के विचारों को उनके वास्तविक रूप में पहिचानने का अवसर प्रदान कर पौराणिकता, कर्मकाण्ड और कूप-मंडूकता पर प्रबल आघात कर नवोत्थान की जड़ें मजबूत कीं। अनेकानेक ग्रन्थों का लुप्त हो जाने से बच जाना देश के सांस्कृतिक जीवन के लिए बहुत बड़ी बात थी जो उन्नीसवीं शताब्दी में सम्पन्न हुई। ज्ञान -प्रसारण की दृष्टि से हस्तलिखित पोथियों की अपनी सीमाएं थीं। किन्तु अब उनकी आवश्यकता न रह गई थी। इसके अतिरिक्त नये शासकों द्वारा स्थापित पुरातत्व विभाग ने अनेक पुरानी इमारतों, मूर्तियों, सिक्कों तथा अन्य भग्नावशेषों की रक्षा की और जो चीजें संग्रहालयों में सुरक्षित हो सकती थीं उन्हें वहां स्थान दिया। उनके अध्ययन के फलस्वरूप भारत की कलात्मक परंपरा का एक सुसम्बद्ध रूप फिर से प्रकाश में आया। इन सब कारणों से अपनी प्राचीन संस्कृति पर देशवासियों को गर्व होना स्वाभाविक था। किन्तु साथ ही पश्चिम के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभाव से बचना भी कठिन था। फलतः संघर्ष उत्पन्न होना अनिवार्य था। इसीलिए उन्नीसवीं शताब्दी, संधिकाल होने के कारण, संघर्षों का युग है। धर्म के प्राचीन और नवीन रूपों में संघर्ष, स्वयं सनातन धर्म के कट्टर पंथियों और उदार मतावलम्बियों में संघर्ष, राजनीति के क्षेत्र में देश-प्रेम और राज-भक्ति में संघर्ष ("राजा कृष्ण समान" वाली भावना से फलस्वरूप), उच्च वर्ग में संघर्ष (नवीन शिक्षा-प्राप्त मध्यम वर्ग तेजी के साथ प्रगति कर रहा था), विज्ञान और पौराणिक परंपराओं एवं अंधविश्वासों में संघर्ष, व्यक्तित्व और सत्ता में संघर्ष, और सर्वोपरि, पूर्व और पश्चिम का संघर्ष। अच्छा हुआ भारतीय जन को इतने संघर्षों का सामना करना पड़ा। उनके जीवन-मार्ग के झाड़झंखाड़ साफ हो गए और एक सुन्दर प्रशस्त मार्ग दिखाई देने लगा। इस संघर्ष के फलस्वरूप धूल से दबी हुई घर की चीजों को साफ करने की, सुन्दर वस्तुओं के संग्रह करने का और जीर्ण वस्तुओं को फेंक देने का अवसर प्राप्त हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज का आन्दोलन इस संघर्ष की हिन्दी को सुन्दरतम् देन है। पश्चिम के संक्रामक प्रभाव के कारण आत्म-हनन के लिए उद्यत देश की उन्होंने रक्षा की।

एक और महत्वपूर्ण तथ्य जो उन्नीसवीं शताब्दी के संबंध में उल्लेखनीय है वह यह है कि इस समय देश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ। विज्ञान की प्रयोगात्मक पद्धतियों द्वारा ज्ञान के विविध मार्ग खुले। विद्वानों ने प्राचीन संस्कृत साहित्य का अध्ययन तथा विश्लेषण करने की नवीन पाश्चात्य पद्धति ग्रहण की और एक ऐसी आलोचनात्मक विधि स्थापित की जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचीनता के प्रति पूज्य या पौराणिक भाव से रहित थी, जिसका आधार सत्य तक पहुँचने की प्रबल आकांक्षा थी। देश में बिखरी हुई सामग्री के संग्रह,संरक्षण और परीक्षण से ज्ञान संवर्द्धन हुआ। वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान और उद्योग धंधों के संबंध में जो पद्धतियां विकसित होकर भारतवर्ष में आई थीं, उनका उपयोग साहित्य तथा संस्कृति के अन्य अंगों के लिए भी होने लगा। प्रेस के कारण समाचार-पत्रों के प्रचार से और अनुवाद ग्रन्थ प्रकाशित करने की सुविधा हो जाने के कारण विविध विषयों से संबंधित लेखों, प्रबंधों, मासिक पत्रों आदि से उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त तत्कालीन वैज्ञानिक पद्धति का अत्यन्त सुन्दर परिचय प्राप्त होता है। इतना ही नहीं उन्नीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक विधि में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक आदि कार्य करने के केन्द्रीभूत प्रयासों के रूप में अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि लोग ज्ञान की तीव्र पिपासा शांत करने और जीवन का परिष्कार करने के लिए आतुर हो उठे थे। वैज्ञानिक विधि से संवलित अदम्य बौद्धिक क्रियाशीलता उन्नीसवीं शताब्दी की अपनी विशेषता है। भारतीय जीवन में ऐसी ही क्रियाशीलता बहुत दिनों बाद देखने को मिलती है।

अभी-अभी समाचार-पत्रों और अनुवाद-ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के जागरण में पत्रों और अनुवाद-ग्रन्थों का बहुत बड़ा उत्तरादायित्व था। भारतीय इतिहास के प्राचीन तथा मध्य युग के राजदरबारों में सन्देशवाहक या हरकारे हुआ करते थे जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक या तो समाचार ले जाते थे या हस्तलिखित चिट्ठियाँ एक दरबार से दूसरे दरबार भेजा करते थे। इनके अतिरिक्त दरबारों में विविध घटनाओं और समाचारों का संग्रह करने वाले पत्र-लेखक या अखबारनवीस भी हुआ करते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में प्रेस की सहायता से आधुनिक पत्रकार-कला का प्रचार हुआ। पत्रकार-कला के ऐतिहासिक विवरण में जाने की यहां आवश्यकता नहीं हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय जीवन के उन्नयन के लिए समाचार-पत्र प्रबल अस्त्र सिद्ध हुए। साहित्य के क्षेत्र में नवीन भावों, विचारों, गद्य-रूपों एवं शैलियों के प्रवर्तन प्रवर्द्धन की दृष्टि से ही नहीं, वरन् सुधारवादी और राजनीतिक एवं आर्थिक आन्दोलनों को प्रोत्साहन प्रदान करने, नवोदित राष्ट्रीयता को बल देने, भारत में ऐक्य-भावना उत्पन्न करने, जन-जागरण को जन्म देने तथा पुष्ट करने और अन्य अनेक विषयों के संबंध में विचार-विनिमय का साधन प्रस्तुत करने, संक्षेप में, भारतीय नवोत्थान के विशाल चक्र को गतिशील बनाने में समाचार-पत्रों ने विद्युत-शक्ति का कार्य किया। उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय जन कितना ज्ञान-पिपासु था, वह किस प्रकार अपने ज्ञान की परिधि को निरंतर प्रसारोन्मुख बनाने में संलग्न था, यह जानने के लिए तत्कालीन पत्र पाक्षिक, साप्ताहिक, दैनिक और फिर मासिक——उत्तम और श्रेष्ठ साधन हैं।

समाचार-पत्रों के अतिरिक्त उन्नीसवीं शताब्दी में किए गए अनुवाद-कार्य का ठीक-ठीक मूल्यांकन अभी नहीं हो पाया। ज्ञान-विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं के संबंध में अनूदित या रूपान्तिरित ग्रन्थों का प्रकाशन उस समय की एक महत्वपूर्ण घटना थी और यदि अंगरेज शासकों की शिक्षा-नीति के फलस्वरूप वह कार्य शिथिल न हो गया होता तो आज हिन्दी तथा अन्य भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान संबंधी ग्रन्थों का अभाव उतना न खटकता जितना आज खटक रहा है। अनुवाद कार्य अपने में तो, स्पष्ट है, उच्च कोटि की रचनाओं को जन्म नहीं देता किन्तु उच्चकोटि के ग्रन्थों के निर्माण में, उन्हें प्रोत्साहन देने में, वह अवश्य सहायक होता है। उन्नीसवीं शताब्दी की दृष्टि से यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण था। यह ठीक है कि भारतवर्ष के पास संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश का अपना साहित्य था। किन्तु विचारणीय बात यह है कि जन-साधारण में इन भाषाओं के ज्ञाता कितने थे? खेद की बात है कि अपने ही देश का प्राचीन साहित्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनूदित नहीं हो पाया। यदि यह कार्य सम्पन्न हो जाता तो नवोत्थानकालीन भावना छनछन कर शीघ्र ही समाज के निम्नस्तर तक पहुंच जाती। उस समय देश कहां होता, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। देश की कूपमंडूकता, अंधविश्वासों और पुरोहितों तथा पंडों का "प्रभुत्व" समाप्त करने में यह अनुवाद-कार्य बहुत सहायता पहुंचाता और साथ ही प्राचीन साहित्य एवं संस्कृति के प्रचार में भी हाथ बँटाता। इसके अतिरिक्त वैसे भी संसार की कोई भी भाषा या राष्ट्र स्वतःपूर्ण नहीं है। अन्य राष्ट्रों की भाषाओं में निहित विचारों के संपर्क और संघर्ष में आना नवस्फूर्ति ग्रहण करना है, अन्यथा संकीर्णता से संवेष्ठित होना प्राकृतिक नियम है। इससे दृष्टिकोण व्यापक होता है। आधुनिक साहित्य की प्रगति का श्रेय बहुत-कुछ विदेशी भाषाओं और साहित्यों के साथ स्थापित संपर्क को है। मूल ग्रंथों तक सर्वसाधारण की पहुँच नहीं हो सकती। प्लेटो, अरस्तू, होमर, न्यूटन, दांते, वर्जिल, गेटे, शेक्सपियर, वर्डसवर्थ, शेली, बायरन, कीट्स लेव, तोलस्ताय, गोर्की तथा अन्य अनेक विदेशी विचारकों और साहित्यकारों एवं कलाकारों ने आधुनिक विचारधारा को कितना प्रभावित किया है, इस संबंध में विस्तार से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। विचार क्षेत्र में आदान-प्रदान किसी भी राष्ट्र के लिए हितकर ही सिद्ध नहीं होता, वरन् उससे ज्ञानपिपासा की तीव्रता का भी द्योतन होता है। उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में यह कार्य सम्पन्न हुआ। हिन्दी में न केवल ज्ञान-विज्ञान और साहित्य-संबंधी विदेशी ग्रन्थों के अनुवाद हुए, वरन् भारतवर्ष की ही अन्य भाषाओं, विशेषतः बंगला, उर्दू और मराठी के अनेक ग्रन्थों के अविकल अनुवाद अथवा रूपान्तर खड़ीबोली हिन्दी में प्रकाशित हुए। यह कार्य खड़ीबोली हिन्दी की शक्ति का प्रतीक और उसके उज्ज्वल भविष्य का परिचायक था।

विचार-क्षेत्र में प्रोत्साहन प्रदान करने के अतिरिक्त अनुवादों का भाषा समृद्धि की दृष्टि से भी अत्यधिक महत्व है। अनुवादों में अनुवादक की भाषा का शब्द-भंडार वृद्धि को प्राप्त होता है। उसके नए विचारों को व्यक्त करने के लिए नवीन शब्दों और अभिव्यंजनाओं का प्रचार होता है। उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रजभाषा एक विशेष प्रकार के साँचे में ढली हुई थी। वह उस विचार-पद्धति के अनुकूल न थी जिसे यूरोपीय जातियां, विशेषतः अंगरेज जाति, अपने साथ लाई थी। आधुनिक खड़ीबोली प्रधानतः बोलचाल की ही भाषा थी। उसमें नाममात्र का साहित्य था। भौगोलिक दृष्टि से भी उसकी अपनी संकुचित सीमाएं थीं और साहित्यिक तथा बौद्धिक कार्यों के लिए उसका व्यवहार बहुत कम होता था। संस्कृत, पाली, प्राकृत या अंगरेजी तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य यूरोपीय भाषाओं की तुलना में वह बहुत दरिद्र थी। तभी तो पं० बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी का "प्रोज" पोच बताया था। उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ीबोली को एक ओर तो प्रेस जैसे वैज्ञानिक अविष्कार और समाचारपत्र-कला का साहाय्य प्राप्त हुआ, तो दूसरी ओर नवोत्थानकालीन भावना के फलस्वरूप भारत की प्राचीन तथा तत्कालीन भाषाओं एवं साहित्यों और अंगरेजी के साथ संपर्क स्थापित हुआ। नवीन शिक्षा और देश की नवोदित परिस्थिति-संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से खड़ीबोली में अनेकानेक ग्रन्थों के अनुवाद या रूपान्तर हुए। फलतः उसके शब्द-भांडार और अभिव्यञ्जना-शक्ति के बढ़ने में देर न लगी। इस कार्य के अभाव में खड़ीबोली आधुनिकता का अथवा नवोत्थानकाल का बोझ संभालने में समर्थ न हो पाती। अनुवाद-कार्य द्वारा ही वह एक नवीन ऐतिहासिक क्रम में अपना योग प्रदान करने में समर्थ हो सकी।

उन्नीसवीं शताब्दी में स्वयं खड़ीबोली का विकास और राजस्थानी तथा ब्रजभाषा-गद्य की स्फुट परंपराओं का अन्त एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। खड़ीबोली की स्फुट गद्य-परंपरा तो पहले भी विद्यमान थी, किन्तु उसके क्रमबद्ध इतिहास और आधुनिकता के प्रतीक के नाते उन्नीसवीं शताब्दी ही उल्लेखनीय है। प्रारंभ से ही उसने आधुनिक विषयों और शब्दों तथा अभिव्यंजनाओं से अपने को समृद्ध बनाया। खड़ीबोली की शैली भी संस्कृत, उर्दू, बंगला, अंगरेजी आदि विभिन्न भाषाओं के तत्वों से समृद्ध हुई। अनूदित ग्रन्थ की भाषा पर मूल भाषा की शैली का प्रतिबिम्ब पड़ना अनिवार्य है। अनुवादक की अपनी भाषा में ऐसे अनेक शब्दों और अभिव्यंजनाओं का अभाव होता है जो उसे मूल भाषा से उधार लेने पड़ते हैं या अपनी भाषा के साँचे में ढालने पड़ते हैं। काव्य-ग्रन्थ का अनुवाद करते समय तो छन्दों की दृष्टि से भी प्रभाव स्वीकार करना पड़ता है। अनेक रूपक और उपमाएं नई आ जाती हैं। उनसे अनुवादक की भाषा में नवीनता और चमत्कार प्रकट होता है। अनेक नवीन क्रिया-रूपों और लोकोक्तियों तथा मुहावरों का समावेश भी उसकी भाषा में हो जाता है। यदि अनुवाद अच्छा हुआ तो शैलीगत इन नवीन विषयों का अनुकरण मूल लेखक भी करने लगते हैं और इस प्रकार ये नवीन विशेषताएं अनुवादक की भाषा का प्रमुख अंग बन जाती हैं। खड़ीबोली में इस प्रकार की न मालूम कितनी विशेषताएं संस्कृत, ब्रजभाषा, उर्दू, बंगला, मराठी, अंगरेजी आदि भाषाओं से आकर उसकी शैली का निर्माण कर चुकी हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के खड़ीबोली-साहित्य का सामान्य परिचय इन सब बातों की ओर संकेत करता है। उसके काव्य-क्षेत्र में संस्कृत, ब्रजभाषा, उर्दू, बंगला और अंगरेजी छंदों तक का प्रभाव उन्नीसवीं शताब्दी में ही दृष्टिगोचर होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और श्रीधर पाठक की रचनाओं और हेनरी पिन्कौट द्वारा संपादित "खड़ीबोली पद्य" जैसी कुछ प्रमुख रचनाओं में ही यह भाषा और शैलीगत प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। नाटकों और उपन्यासों की रचना-पद्धति पर पड़ा यह प्रभाव तो सर्वविदित है। "क्लाइमेक्स" "ऐंटीथिसिस", "अपोस्ट्रफी", "ट्राइकोलोन", विरामचिन्हों, शब्दों तथा वाक्यांशों का शैलीगत क्रम आदि ऐसी अनेक बातें हैं जो विदेशी भाषाओं और साहित्यों के संपर्क और अनुवाद-कार्य द्वारा खड़ीबोली में आई। अब ये बातें उसका प्रमुख अंग बन गई हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में ही खड़ीबोली ने अपनी समन्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्मक शक्ति का परिचय दे दिया था। आज किसी का इस ओर ध्यान जाता ही नहीं कि हिन्दी में उन्नीसवीं शताब्दी से पहले इन विशेषताओं का कोई अस्तित्व नहीं था। ये बातें अब स्वाभाविक रूप में ग्रहण कर ली जाती हैं। वाष्प द्वारा संचालित ऐंजिन का अविष्कार यूरोप में हुआ था। लेकिन अब क्या किसी का ध्यान इस ओर जाता है? वह मानव मात्र की संपत्ति है।

और फिर, अनुवादों ने ही उन्नीसवीं शताब्दी में नवीन विषय सुझाए, नवीन साहित्यिक रूपों का जन्म दिया। अनुवादों ने उस समय यह बड़ा भारी कार्य सम्पन्न किया था। उच्च विचार कहीं क्यों न हों, उनसे उच्च विचारों को ही जन्म मिलता है। उन्नीसवीं शताब्दी में किए गए अनुवादों ने हिन्दी भाषाभाषियों तथा अन्य भारतवासियों को सजग और सचेत बनाया, उत्तर मध्ययुगीन पौराणिक वातावरण के कर्दम से बाहर निकाल कर उन्हें मानवसापेक्ष्य दृष्टिकोण प्रदान किया और सत्यानुसंधान की प्रेरणा प्रदान की। अच्छे-बुरे सभी प्रकार के अनुवादों की इससे सार्थकता सिद्ध होती है। अनुवादकों का उद्देश्य था पुनर्जागरण और जीवन का पुनःसंस्कार। इस कार्य में उन्हें अनुवादों से काफी अधिक सहायता प्राप्त हुई, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के जागरण-काल की सर्वव्यापी क्रियाशीलता का साहित्य पर प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी था, जीवन की नवीन गति का उसे अनुसरण करना ही चाहिए था। उसने मध्ययुगीन परंपराओं से विमुख होना प्रारंभ कर अभिव्यक्ति के नए माध्यम और नए विषय अंगीकार किए। प्राचीन साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व आदि के अध्ययन के फलस्वरूप कवियों और लेखकों को नई सामग्री का अक्षय भांडार मिला। कुछ सामग्री तो पहले ही ज्ञात थी, किन्तु उसका अध्ययन, परीक्षण और विश्लेषण वैसा न हुआ था जैसा उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। इस काल के साहित्यकारों में एक अद्भुत उत्साह दृष्टिगोचर होता है। वास्तव में क्लैसीकल और नवीन संस्कृतियों के समन्वय के फलस्वरूप विचार-क्षेत्र में उत्तेजना उत्पन्न हुए बिना न रह सकी। पुस्तकों की संख्या में वृद्धि तो प्रेस जैसे साधन से हो रही थी। किन्तु साथ ही कला और साहित्य की नवीन प्रेरक शक्तियों की ओर ध्यान जाना इस शताब्दी की महत्वपूर्ण देन है। प्रेस का प्रचार हो जाने के कारण नागरी टाइप ढाले गए। सर चार्ल्स विल्किन्स (१७५०-१८३६) ने फ़ारसी और बंगला अक्षरों के टाइप ढालने की विधि का आविष्कार कर कैरे, गिलक्राइस्ट आदि का मार्ग प्रशस्त किया। साथ ही विल्किन्स, हलहैड (१७५३-१८३०), कैलेरे (१७६१-१८३४), मार्शमैन (१७९४-१८७७), कोलब्रुक (१७६५-१८३७) सर विलियम जोन्स (१७४६-१८३०), विलियम प्राइस, तासी, ग्रियर्सन, आदि ने प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रति रुचि प्रकट कर, व्याकरणों, कोशों और साहित्य के इतिहासों की आधुनिक परंपरा को जन्म दिया। इन प्रयासों के फलस्वरूप प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार की साहित्यिक परंपराओं का जीर्णोद्धार और संरक्षण हुआ। देश के जीवन में इन विद्वानों और साहित्य के प्रेमियों को आदरपूर्ण स्थान मिला।

कलात्मकता और सुन्दरता के मापदंडों में परिवर्तन होना भी उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ जिससे आधुनिक समालोचना का आविर्भाव हुआ। इस आलोचनात्मक बुद्धि का प्रसार जीवन के धार्मिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों तक हुए बिना न रह सका। उन्नीसवीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शताब्दी की यह एक महान् उपलब्धि है। देशी और विदेशी (विशेषतः अंगरेज़ी) साहित्यों की श्रेष्ठ परंपराओं के आत्मसात् कर लेने का परिणाम उसी समय श्रेयस्कर एवं रुचिकर प्रतीत होने लगा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की विविध रचनाएं, भूमिकाएं और उनके भाषण इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। सच बात तो यह है कि इस नवजागरण-काल ने जिस भारतीय जन को जन्म दिया उसने पूरी शक्ति, उमंग और आत्म-रक्षा की भावना के साथ अपने युग की चुनौती स्वीकार की। हिन्दी की नवीन साहित्य-चेतना के मूल में बाह्याक्रमणों का अभाव, आंतरिक शक्ति, वैज्ञानिक आविष्कारों और औद्योगीकरण का प्रचार, जन-संख्या में वृद्धि, "राजा कृष्ण समान" वाली भावना के स्थान पर जनसत्तात्मक मानव-सापेक्ष्य उदार विचारधारा, मध्यम वर्ग का जन्म, दास-प्रथा का निषेध, स्त्रियों तथा समाज के अन्य उपेक्षित समुदायों में शिक्षा का प्रचार और सांस्कृतिक खोजों एवं पुरातत्व-विभाग द्वारा प्राचीन कलात्मक वस्तुओं के संरक्षण के फलस्वरूप प्राप्त आत्म-चेतना और आत्म-ज्ञान, ये प्रधान कारण थे। इन कारणों से साहित्य-संबंधी ग्रन्थों के प्रकाशन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई और साहित्य के ऐसे रूपों और आदर्शों पर बल दिया जाने लगा जो जन-साधारण में प्रचलित हो सकते थे, जो अधिकाधिक लोगों को प्रभावित कर सकते थे। काव्य का महत्व कम होने लगा, महाकाव्य और नीतिकाव्य का कोई स्थान न रह गया। उनका स्थान नाटक और उपन्यास ने ले लिया। यद्यपि हिन्दी नाटक और उपन्यास दोनों का जन्म नवीन सुधारवादी एवं राजनीतिक आन्दोलनों के क्रोड़ में हुआ था, तो भी नाटक ने सुधारवादी और राष्ट्रीय विचारों का प्रचार करने में अपना विशेष योग दिया और उपन्यास ने नवीन आन्दोलनों का अनुसरण करते हुए भी, नवोत्पन्न मध्यम वर्ग के मनोरंजन का विशेष ध्यान रखा। समाचार-पत्रों ने निबन्ध-कला को प्रोत्साहन दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशाब्द में हिन्दी के जिन ऐयारी और जासूसी उपन्यासों की परम्परा का जन्म हुआ उससे इस बात का संकेत मिलता है कि उपन्यासकारों की दृष्टि कहां केन्द्रित थी। प्रहसनों का प्रणयन भी, विषय और कला दोनों ही दृष्टिकोणों से, समाज के सामान्य स्तर की ओर इंगित करता है। दरबारों से निकल कर साहित्य का समाज के व्यापक जीवन की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक ही था। उस समय उसमें वह परिष्कार, वह निखार और कलात्मकता नहीं आ सकती थी जो मध्ययुगीन राज्याश्रय-प्राप्त ब्रजभाषा काव्य-साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। किन्तु इतने पर भी उसमें उमंग और उत्साह है, आगे बढ़ने की शक्ति है, आत्मचेतना है। यह क्या कम है ?

उन्नीसवीं शताब्दी में उद्भूत नवीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, शिक्षा-संबंधी आदि शक्तियों का समष्टिगत प्रभाव यह हुआ कि देश का ध्यान यदि एक ओर पिछली अराजकता, धार्मिक एवं सामाजिक ह्रास, विदेशियों द्वारा सब प्रकार के शोषण और स्वयं अपनी चरित्रगत एवं मानसिक दुर्बलताओं की ओर गया, तो दूसरी ओर अपने महान् गौरवपूर्ण प्राचीन के साथ-साथ तड़ित्तेज-संपन्न नवीन की ओर गया। वह या तो अपने गौरवपूर्ण अतीत को भूल कर पश्चिम का अन्धानुकरण करता, या नवीन शक्तियों के प्रति उपेक्षा या उदासीनता का भाव ग्रहण करता—जैसा बहुत दिनों तक मुसलमानों ने किया। किन्तु समन्वय तो भारतीय जीवन का

113065

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारभूत अंग रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसा प्रतीत होता है कि भारत की प्राचीन संस्कृति ही जैसे नवीन रूप धारण कर अवतरित हो रही थी। इस समय ज्ञान की परिधि का विस्तार हुआ और सामाजिक एवं धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनों, कालानुसार राष्ट्रीयता, देश की एकता, नवीन नैतिकता, स्त्री-शिक्षा, आर्थिक चेतना, भावोन्नति और मानव-सापेक्ष्य नींव पर आधारित आत्मिक उत्थान की चेष्टा के फलस्वरूप चौमुखी सक्रियता दृष्टिगोचर होने लगी। कुछ लोगों ने उत्तर मध्ययुगीन अंध-विश्वासों, पुराण पंथ, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं को बनाए रखने की चेष्टा अवश्य की, किन्तु असफलता और निराशा के सिवाय उनके हाथ कुछ न लगा। भ्रष्ट लोक-परंपराओं के स्थान पर स्वस्थ परंपराएं स्थापित करने के पुनीत प्रयास का उस समय जन्म हुआ। राष्ट्रीय जीवन के लगभग सभी जीर्णशीर्ण अंगों का इतने संकल्पात्मक रूप में विच्छेद करने का व्यापक प्रयास संभवतः पहले कभी नहीं हुआ था। बीसवीं शताब्दी भारत की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपराओं का वपन काल होने की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी का निश्चय ही अत्यधिक महत्व है। वह भारत का नवजागरण काल है, उस समय उसने अपने को ही नहीं, दुनिया को नयी दृष्टि से देखना सीखा।

बीसवीं शताब्दी में देश अपनी प्राचीन आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, धार्मिक एवं सामाजिक, साहित्यिक आदि परंपराओं का पाश्चात्य परंपराओं के साथ कहां तक समन्वय स्थापित कर सका है, यह भिन्न विषय है।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत पश्चिमी सभ्यता का आघात पाकर जाग उठा। किन्तु यह आघात इतना प्रबल था कि उससे उसके पैर लड़खड़ाने लगे। सौभाग्यवश उसे राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, बालगंगाधर तिलक जैसे अनेक महापुरुषों का आश्रय प्राप्त हुआ और शीघ्र ही उसकी दृष्टि अपने लक्ष्य पर जम गई। उसे स्वर्णिम विहान दिखाई देने लगा : 'a range of new colours.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

पंत की काव्य-कला

पन्त की कविता और उसकी व्यंजकता (कलाभिव्यक्ति) का आरम्भ 'वीणा' से होता है। 'वीणा' के लिए उन्होंने कहा है--

यह तो तुतली बोली में है
एक बालिका का उपहार

* * *

इस बोली में कौन सुनेगा
इसकी वीणा को निस्सार ?

* * *

यह अति अस्फुट ध्वन्यात्मक है,
बिना व्याकरण, बिना विचार।

इस विनम्र उद्गार से खड़ीबोली और पन्त की कविता की कलात्मकता पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने 'वीणा' में जिस भाषा का आरम्भ किया वह खड़ीबोली की परम्परागत भाषा नहीं थी, नये भाव की तरह नयी भाषा थी। उसमें छायावाद का सद्यः किशोर कण्ठ था। पन्त जी ने 'वीणा' के 'विज्ञापन' में लिखा है--"कई शब्द, वाग्बन्ध आदि--जैसे मम, स्वीकारो, निर्भाऊँ, वय-वाली, 'पहना है शुचि मुक्तामाल' इत्यादि--जिनका प्रयोग अब मुझे कविता में अच्छा नहीं लगता, इसमें ज्यों के त्यों रख दिये गये हैं।"

द्विवेदी-युग की परिपक्व खड़ीबोली और स्वयं पन्त के 'पल्लव' की परिमार्जित भाषा की तुलना में 'वीणा' की भाषा 'तुतली बोली' हो सकती है, किन्तु इसकी अविकचता में हृदय का जो अनायास सारल्य है, सहज स्वभाव है, वह किसी प्रौढ़ कवि के लिए प्रयासपूर्वक भी सम्भव नहीं है। पन्त जी अपने संस्मरण ('साठ वर्ष') में कहते हैं कि 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि' और 'पल्लव' की 'बालापन'-शीर्षक कविता बनारस में हाई स्कूल में पढ़ते समय (सन् १९१८ में) लिखी थी। उसके बाद कौसानी (अलमोड़ा) लौटने पर 'वीणा' के गीतों की रचना की। भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से 'प्रथम रश्मि' और 'बालापन' में कितनी वयस्कता, कल्पकता और प्रांजलता है! उसके बाद 'वीणा' के गीतों में इतनी अपरिपक्वपता कैसे आ गयी!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वीणा' की पहिली कविता (('उत्सर्ग') न केवल 'वीणा' की, वल्कि पन्त की 'पल्लव'-कालीन भाषा, भाव, रुचि और कला की भी संक्षिप्त भूमिका है। जैसा कि 'वीणा' की भाषा के लिए उन्होंने कहा है--'बिना व्याकरण, बिना विचार', 'पल्लव' में 'व्याकरण के लोहे की कड़ियाँ' तोड़ कर भाषा को काव्य का स्वतन्त्र व्यक्तित्व दे दिया, उसे भावानुरूप बना दिया किन्तु 'व्याकरण के लोहे की कड़ियाँ' किसी अविचारिता से नहीं तोड़ी गयी हैं, (अविचारिता तो 'वीणा' में नहीं थी, अविचारिता और स्वाभाविक अविकचता एक ही चीज नहीं है)। 'पल्लव' की भाषा में जो सुविचार है, उससे काव्य को कैसी सूक्ष्म चित्रचारुता मिल गयी है!

'वीणा' की भाषा के लिए कवि ने कहा है--'यह अति अस्फुट ध्वन्यात्मक है'--क्या वह अस्फुट और ध्वन्यात्मक भाषा किशोरावस्था की अविकचता के कारण है? भाषा यदि भाव की अनुवर्तिनी है तो मूलतः वही अस्फुट और ध्वन्यात्मक है। क्या वह कभी प्रस्फुट और पूर्ण प्रत्यक्ष हो सकता है? 'वीणा' की बालिका ने कहा था--

जीवन-भर भी मां! मैं पूरे
गा न सकूँगी तेरे गीत
अपनी वाणी में स्वर भर।

जो अगेय है, अनन्त है, अभ्यन्तर की तरह ही अगोचर है, वह आजीवन पूर्णतः व्यक्त नहीं हो सकता। कविता जब अन्तर्मुखी हो जाती है तब उसमें अस्फुटता और ध्वन्यात्मकता आ ही जाती है। यही उसकी रहस्यमयता है। मध्ययुग की निर्गुण कविता ऐसी ही रहस्यमयी है। तो रहस्यवाद और छायावाद में क्या अन्तर है?--निर्गुण (रहस्यवाद) निराकार है, वीतराग है, छायावाद साकार है, सानुराग है, सगुण का आधुनिक विकास है; स्वभावतः उसमें अनुभूति की अनिर्वचनीयता भाव के लिए रूप की तरह अभिव्यक्ति की कलात्मक क्षमता भी पा गयी।

केवल अनुभूति की अनिर्वचनीयता के कारण ही नहीं, अभिव्यक्ति की विशेष कलाभिरुचि के कारण भी कविता में (और सौन्दर्य में भी) अस्फुटता और ध्वन्यात्मकता आ जाती है। अभिव्यक्ति की यह विशेषता छायावाद में भी देखी जा सकती है। किन्तु कविता जब कला के द्वारा दृश्यजगत (बहिर्जगत) को अपना चित्रपट बनाती है तब उसमें अस्फुटता और ध्वन्यात्मकता अधिक नहीं रहती। इस दृष्टि से 'वीणा' की अपेक्षा 'पल्लव' में अस्फुटता और ध्वन्यात्मकता कम है। उसमें यत्र-तत्र 'वीणा' की-सी सांकेतिक शैली है, किन्तु अधिकांशतः वह प्रासादिक है।

'पल्लव' प्रसाद-गुण-सम्पन्न होते हुए भी द्विवेदी-युग के पद्य-जैसा इतिवृत्तात्मक अथवा अभिधेय नहीं है। यह चित्रवृत्त्यात्मक अथवा अन्तर्व्यंजक है। वर्णन नहीं, उद्गार इसका मर्मस्पन्दन है। किन्हीं कविताओं ('छाया', 'अनंग') के आरम्भ में द्विवेदी-युग की शैली का कुछ स्थूल आभास मिलता है, किन्तु भाव और कल्पना से चित्र और राग इतने सूक्ष्म हो गये हैं कि वे पद्य नहीं, काव्य बन गये हैं। यथा--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परियों की निर्जल सरसी-सी,
वन्य देवियाँ जहाँ विहार
करतीं छिप-छिप छाया-जल में,
अनिल-वीचियों में सुकुमार।

--('छाया')

ऐसी अनुभूति को ग्रहण करने के लिए अभिव्यक्ति की भी एक विशेष मानसिक साधना का कला-संस्कार चाहिये। यही बात छायावाद की सभी कविताओं के लिए कही जा सकती है, उनसे पाठकों की सुषुप्त सूक्ष्म रुचि का जागरण और तद्नुकूल कला-दृष्टि का प्रस्फुरण होता है। वे स्वयं भी कवि बन जाते हैं।

पन्त ने 'वीणा'-द्वारा किस युग के आगे का आरम्भ किया था? 'वीणा' के प्रारम्भ में उन्होंने अपनी कविता का आह्वान इन शब्दों में किया है--

नव वसन्त ऋतु में आओ
नव कलियों को विकसाओ
प्रेयसि कविते! हे निरुपमिते!
इन नयनों को समझाओ
इन्हें न लड़ना सिखलाओ
प्रेयसि कविते! हे निरुपमिते!

उक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि कवि मध्ययुग के शृंगार-काव्य के आगे के युग में कविता का आह्वान कर रहा है। ब्रजभाषा के बाद खड़ीबोली का द्विवेदी-युग आया। तो क्या कवि कविता को द्विवेदी-युग में देखना चाहता है? नहीं, 'वीणा' की अस्फुटता और ध्वन्यात्मकता से सूचित होता है कि वह उसे द्विवेदी-युग की अभिधेय शैली से आगे ले जाना चाहता है। अपने संस्मरण ('साठ वर्ष') में पन्त जी ने लिखा है--"द्विवेदी-युग की कविता से, रूप-सौष्ठव तथा भाव-ऐश्वर्य दोनों ही दृष्टियों से, मुझे असन्तोष रहा है।" किन्तु उनका यह असन्तोष न तो 'वीणा' में व्यक्त हुआ और न 'पल्लव' की विस्तृत भूमिका 'प्रवेश' में। दोनों में मध्ययुग के शृंगार-काव्य की ही भर्त्सना है। तथापि, ब्रजभाषा की मृदुलता और मधुरता का स्निग्ध संस्कार उनके 'पल्लव' की सुकुमारता में है। 'वीणा' में कहा था--

जननि! सुना दे मृदु झंकार।
मधु-बाला की मृदु बोली-सी
तेरी वीणा की गुंजार
खिला कई कवि-कुल-कमलों को
सुरभि कर चुकी है संचार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि का यह अनुनय 'पल्लव' में सफल हुआ। खड़ीबोली मृदु-बोली (ब्रजभाषा)-सी मधुर और सुरभित हो गयी। पुरानी रुचि के रूढ़ समीक्षकों ने पन्त की काव्य-कोमलता पर स्त्रैणता का आरोप किया। वे अपनी परुषा प्रकृति के अनुसार ओज चाहते थे। किन्तु काव्य ओज या माधुर्य्य लेकर ही काव्य नहीं बनता। रस-संचार के लिए काव्य की एक अपनी कला है, उसके बिना ओज भी नीरस हो जाता है और माधुर्य्य भी शुष्क हो जाता है। कविता में जहाँ कला है वहाँ ब्रजभाषा की अश्लीलता भी श्लाघ्य है।

पन्त ने भी ब्रजभाषा के 'सरस दधि के मटकों का स्वाद' लिया है। 'ग्रन्थि' और यत्र-तत्र 'पल्लव-गुंजन' के सौन्दर्य्य और रस-बोध में ब्रजभाषा का प्रभाव पड़ा है। पन्त को ब्रजभाषा से विरक्ति नहीं है, किन्तु उनका असन्तोष उसके सीमित भाव-क्षेत्र तथा रूढ़ रस और अलंकार से है, इसीलिए 'वीणा' में उन्होंने कविता को नये वसन्त (नये भाव-क्षेत्र) और नयी कलियों (नयी काव्यकला) में आने के लिए निमन्त्रित किया था। वे हिन्दी-कविता का उत्तरोत्तर विकास चाहते थे। 'वीणा' से उन्होंने इसी विकास का श्रीगणेश किया।

'वीणा' गीतकाव्य है। रवीन्द्रनाथ के वंगीय प्रभाव से गीतकाव्य का आरम्भ द्विवेदी-युग में ही हो गया था। गुप्त जी की 'झंकार' तथा सियारामशरण और मुकुटधर के मुक्तक प्रगीत इसके प्रमाण हैं। यद्यपि पन्त जी की 'वीणा' का प्रणयन भी द्विवेदी-युग में ही हुआ, तथापि इसकी भाषा, भाव और शैली में उस युग की कोई छाप नहीं है। वह रवीन्द्रनाथ और सरोजिनी नायडू की अंग्रेजी कविता से भी प्रभावित है, अतएव, द्विवेदी-युग से सर्वथा भिन्न है।

'वीणा' गीतकाव्य की दृष्टि से द्विवेदी-युग की कविता में ही नहीं, स्वयं पन्त की रचनाओं में भी अप्रतिम है। वह गीत-शैली 'वीणा' में ही सम्पुटित रह गयी, पन्त की किसी अन्य कविता-पुस्तक में उसका राग-विकास नहीं हो सका।

ज्यों-ज्यों पन्त के अनुभव और अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत होता गया त्यों-त्यों उनकी कविता में भाव, भाषा और शैली में भी परिवर्तन होता गया। 'वीणा' के बाद 'पल्लव' में गीतकाव्य की एक नयी शैली आयी, इसे प्रलम्ब प्रगीत ('ओड') कह सकते हैं। इसका विस्तार खण्डकाव्य-जैसा जान पड़ता है, किन्तु द्विवेदी-युग के खण्डकाव्य की भाँति इसमें कथा का सीमित स्थूल कलेवर नहीं, भावना और कल्पना का सुदीर्घ सूक्ष्म मानसिक प्रसार है, मुक्तक के ही पंखों से काव्य के विशदाकाश (वायव्य जगत) में गीत-विहग का उन्मुक्त विहार है। इसमें प्रत्येक मुक्तक (और कहीं-कहीं उक्ति-विशेष) अपने में पूर्ण चित्र भी हैं और समवेत होकर सम्पूर्ण काव्य भी हैं। जैसा कि 'वीचि-विलास'-शीर्षक कविता के अन्त में कवि ने कहा है—

मेरे मन की विविध तरंग
रंगिणि! सब तेरे ही संग
एक रूप में मिलें अनंग।

इसी तरह कल्पना की विविधता में भी मूल मनोभाव अथवा अन्तरंग रस की एकरूपता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कदाचित् इस तरह का 'ओड' आधुनिक भारतीय साहित्य में अन्यत्र नहीं है। क्या अंग्रेजी में है ?

'पल्लव' के प्रलम्ब प्रगीतों की विविध कल्पनाओं को भाव की अनेक मुद्राएँ, रस की अनेक भंगिमाएँ, दृश्य की अनेक झलकियाँ कह सकते हैं। 'वीणा' में शैली की गूढ़ता होते हुए भी भावना सीधी-सादी थी। 'पल्लव' में शैली की वैसी गूढ़ता नहीं, किन्तु भावना में कला-वक्रता है। यहाँ 'युगान्त' की 'सन्ध्या' की यह पंक्ति याद आती है (जो 'पल्लव' की काव्यकला की याद दिलाती है)—'भाव-संकुल, वंकिम, भू-चाप'। ऐसे ही 'पल्लव' के प्रलम्ब प्रगीत 'भाव-संकुल' और भूचाप-से 'वंकिम' हैं। उसकी कल्पनाओं में भावों की कितनी सघनता और 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश' की तरह ही कितनी शिप्रता है !

भावनाओं और कल्पनाओं की रसानुकूल अभिव्यक्ति के लिए भाषा और छन्द की पन्त ने तदनुरूप साधना की है। यह साधना चित्र और संगीत की साधना है। संगीत बचपन में ही 'गीत-से जीवन में लयमान' हो गया था, उसी से उनके भाव और चित्र में भी एक लय-सामंजस्य आ गया। लय-सामंजस्य ही तो सौन्दर्य्य है। वही तो संगीत में स्वर, चित्र में रूप, काव्य में भाव है। पन्त के सान्दर्य्य-बोध से ही उनकी भाषा में चित्रमयता, छन्दों में रागात्मकता, अन्त्यानुप्रासों में चित्र और राग की संवेगशीलता है। 'पल्लव' के 'प्रवेश' में उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता और विशदता से काव्य के कला-पक्ष का विवेचन कर दिया है।

रवीन्द्रनाथ और सरोजिनी नायडू के बाद 'पल्लव' के काव्य-काल (सन् १९१९ से १९२६) में पन्त ने उन रोमैन्टिक कवियों का भी कलानुदान लिया, जिनसे स्वयं सरोजिनी और रवीन्द्र प्रभावित थे। अपने संस्मरण ('साठ वर्ष') में पन्त जी लिखते हैं—"उन्नीसवीं शती के कवियों में कीट्स, शैली, वर्ड्सवर्थ तथा टेनिसन ने मुझे गम्भीर रूप से आकृष्ट किया। कीट्स के शिल्प-वैचित्र्य, शैली की सशक्त कल्पना, वड्सवर्थ के प्रांजल प्रकृति-प्रेम, कॉलरिज की अप-साधारणता ने मेरे कविता-सम्बन्धी रूपविधान के ज्ञान को अधिक पुष्ट, व्यापक तथा सूक्ष्म बनाया। काव्य-संगीत में व्यंजनों की योजना से शक्ति तथा चित्रात्मकता, और स्वरों की सहायता से सूक्ष्मता तथा मार्म्मिकता आती है, इसका ज्ञान मुझे अंग्रेजी कवियों के रूप-शिल्प के बोध से ही प्राप्त हुआ। रीतिकाव्य में अनियन्त्रित अनुप्रासों की पुनरुक्ति केवल एक शाब्दिक चमत्कार बन कर रह जाती है। अनुप्रासों के विशिष्ट संयमित प्रयोग से किस प्रकार भावनाओं की व्यंजना अधिक प्रेषणीय बन सकती है, यह मैंने अंग्रेजी काव्य के अध्ययन से ही सीखा।—मेरी सन् २६ तक की रचनाओं में—जिनमें 'उच्छ्वास', 'आँसू', 'बादल', 'अनंग', 'मौन निमन्त्रण', 'वीचि-विलास' तथा 'परि-वर्त्तन' आदि मुख्य हैं—उपर्युक्त कवियों का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है।"

क्या पन्त ने अंग्रेजी कवियों का प्रभाव ही ग्रहण किया, अपनी प्रतिभा का दान नहीं दिया ? यदि अन्तःकरण में अंकुरण और प्रस्फुटन की उर्व्वरा शक्ति (मूलशक्ति = प्रतिभा) नहीं हो तो बाहर के खाद-पानी से ही कैसे वह विकसित हो सकता है ? पन्त में स्वाध्याय के साथ स्वारस्य भी था, वही तो काव्य में उनका विरल व्यक्तित्व बन गया।

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-संस्कृत-बँगला और अंग्रेज़ी के वाङ्मय के अध्ययन से पन्त को काव्य-विकास का अवसर मिला, किन्तु 'पल्लव'-काल तक उन्हें जीवन के वास्तविक अध्ययन का सुयोग नहीं मिला। समतल भूमि से ऊपर वे हिमालय की ऊँचाई पर ही नहीं थे, सुसम्पन्न कुल के ऐश्वर्य्य के उच्च तल पर भी अवस्थित थे; फलतः राजपुरुष रवीन्द्रनाथ की तरह वे भी वस्तुजगत से दूर भावना और कल्पना के अपार्थिव लोक में स्वर्ग-विहार करते थे। सन् १९२९ की अस्वस्थता और उसके बाद पारिवारिक एवं आर्थिक विपन्नता ने उनकी मानसिक निश्चिन्तता को भंग कर दिया। जीवन की तात्विक समस्याओं ने उन्हें आच्छन्न कर लिया। 'पल्लव' के बाद 'गुंजन' में उस संक्रमण-काल की कुछ प्रतिध्वनि है। उसमें विश्ववेदना के प्रति संवेदना और जीवन के प्रति एक करुण दृष्टि का आविर्भाव हुआ। कवि ने कहा——

अपने मधु में लिपटा पर
कर सकता मधुप न गुंजन,
करुणा से भारी अन्तर
खो देता जीवन-कम्पन।

तथापि, कवि का मधुर काव्य-संस्कार लुप्त नहीं हो गया, तात्कालिक अस्वास्थ्य और अभाव ने उसके 'पल्लव'-कालीन भाव-स्वभाव और कला-लालित्य को सर्वथा सोख नहीं लिया।

'पल्लव' के 'परिवर्त्तन' में भी एक करुण दृष्टि थी, वह जीवन-मरण की समस्या (क्षण-भंगुरता की समस्या) का स्थायी समाधान पा जाने के लिए थी। उसकी वेदना आध्यात्मिक और पारलौकिक थी। 'गुंजन' में कवि यद्यपि लोकवेदना की ओर किंचित उन्मुख हो गया, तथापि 'परिवर्त्तन' में वह जिस आध्यात्मिक समस्या का समाधान नहीं पा सका था, मुख्यतः उसे ही व्यक्तिगत साधना से सुलझाने का प्रयत्न करने लगा। अध्यात्म और सौन्दर्य्य ही 'गुंजन' का भी मुख्य स्वर है।

'गुंजन' के 'विज्ञापन' में पन्त जी ने कहा है——"पल्लव ' की कविताओं में मुझे 'सा' के बाहुल्य ने लुभाया था, यथा——

अर्द्धनिद्रित-सा, विस्मृत-सा,
न जागृत-सा, न विमूर्च्छित-सा——इत्यादि।

'गुंजन' में 'रे' की पुनरुक्ति का मोह नहीं छोड़ सका। यथा——'तप रे मधुर-मधुर मन' इत्यादि। 'सा' से मेरी वाणी का सम्वादी स्वर एकदम 'रे' हो गया, यह उन्नति का क्रम संगीत-प्रेमी पाठकों को खटकेगा नहीं, ऐसा मुझे विश्वास है।"

'सा' में चित्रसादृश्य है, 'रे' में रागोद्रेक है।

'रे' के सम्बोधन से ज्ञात होता है कि 'वीणा' और 'पल्लव' का निःसंग कवि अब अपने साथ समाज को भी सम्बद्ध कर लेना चाहता है, किन्तु फिर भी वह 'गुंजन' में आत्मोन्मुख ही है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सन्ध्या-तारा' की तरह ही अपने 'असंग सुख' में विलीन है, अविचल चित्त से एकाकीपन का व्यथा-भार झेल रहा है। क्रमशः नये नक्षत्रों के समुदाय और साहचर्य्य से उसका निर्जन जीवन सुखद हो जाता है, उन्हीं के संघटन में वह भविष्य के उज्ज्वल सामाजिक जीवन को प्रत्यक्ष देख लेता है।

'पल्लव' में कवि को काव्य का काल्पनिक भाव-जगत मिल गया था, उसके साथ उसने चिरललित कला का लय-सामंजस्य कर लिया। किन्तु 'गुंजन' से उसे कला का ही नहीं, जीवन का भी नवीन संस्कार करना पड़ा, भावना से चिन्तन के क्षेत्र में आ जाना पड़ा। वस्तुजगत अथवा नित्य जीवन में जहाँ उसने पद-लालित्य से चिन्तन को ध्वनित करने का प्रयत्न किया वहाँ भाषा संगीत से सरस हो गयी, किन्तु जहाँ चिन्तन प्रवचन बन गया वहाँ भाषा शुष्क गद्य हो गयी। किन्तु यह भाषा द्विवेदी-युग के पद्योन्मुख गद्य की भाषा नहीं थी, माधुर्य्य के बाद छायावाद के ओज की आरम्भिक भाषा थी, स्वभावतः इसमें नये पगों की लड़खड़ाहट भी थी। यही भाषा सध कर 'गुंजन' की भावात्मक कविताओं में 'पल्लव' की अपेक्षा प्रौढ़ और सशक्त हो गयी।

'पल्लव' में सम्मिलित सन् १९१९ तक की कविताओं में द्विवेदी-युग की भाषा और छन्द का प्रभाव है, किन्तु उसी में ('पल्लव' में) छायावाद की भाषा का लालित्य और छन्दों की विविधता एवं नवीनता का संगीत भी है। 'गुंजन' के छन्दों में वैसी विविधता और नवीनता नहीं है, 'पल्लव' की अपेक्षा इसकी विशेषता भाषा और भाव में है।

'पल्लव' में 'वीणा'-काल की रचनाएँ भी सम्मिलित हैं जो भाव और शैली की दृष्टि से उससे भिन्न हैं, किन्तु उसकी अपेक्षा भाषा अधिक प्रांजल और छन्द अधिक संगीतमय हैं। 'गुंजन' में भी 'वीणा' और 'पल्लव'-काल की कुछ रचनाएँ सम्मिलित हैं (यथा 'भावी पत्नी')। उनमें 'गुंजन' की अपेक्षा अधिक तारल्य है। 'गुंजन' में भी तारल्य है, किन्तु वह द्रवित नहीं, संयमित है।

सन् १९२१ के असहयोग-आन्दोलन के समय पन्त जी महात्मा गान्धी के सार्वजनिक व्यक्तित्व से प्रभावित हो गये थे। किन्तु उन्होंने गान्धी जी को केवल नैतिक महत्व दिया, उनके कर्म्म-सूत्र खादी का व्रत नहीं लिया। जीवन में तो नहीं, 'पल्लव' के बाद 'गुंजन' की कला में खादी की सादगी आ गयी। यथा--

जग पीड़ित है अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से
मानव-जग में बँट जावें
दुख सुख से औ' सुख दुख से।

'पल्लव' की रेशमी कला में यन्त्र-युग की मसृणता थी, जिसका परिचय 'गुंजन' की 'चाँदनी' ('नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद-हासिनि') और 'अप्सरा' में मिलता है। 'गुंजन' की अपनी कला क्रमशः खद्दर की तरह खुरदुरी, खुरदुरी से खादी की तरह स्निग्ध, स्निग्ध से पौरुष की तरह सुपुष्ट हो गयी। 'एक तारा' और 'नौका-विहार' में 'गुंजन' का स्निग्ध ओज देखा जा सकता है।

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एक तारा' साद्यन्त भावात्मक मुक्तक है। फिर भी उसमें कहानी और नाटक की-सी कैसी आकस्मिक शिल्प-भंगिमा है। यह एक नवीन शैली का निबन्ध-काव्य है।

निबन्ध-काव्य का एक अन्य रूप 'नौका-विहार' में है, वह संक्षिप्त दृश्य-काव्य है। उसमें दैनिक जीवन के चित्रपट पर ही कवि ने उसमें कैसा मनोज्ञ भावात्मक चित्रण किया है। 'एक तारा' में आत्मदर्शन की परिणति सामाजिक दर्शन में हुई थी, 'नौका-विहार' में सामाजिक दर्शन की परिणति आत्मदर्शन में हुई है। एक आलोचक को इसके चित्रण की परिणति चिन्तन में असंगत जान पड़ी थी। किन्तु चित्रण में उपकरण जैसे स्थूल मात्र नहीं रह गये हैं वैसे ही चिन्तन में दर्शन बौद्धिक मात्र नहीं रह गया है। हाँ, दर्शन में चिरपरिचित पुरातनता है। कदाचित् नवीनता की दृष्टि से ही आलोचक को अतृप्ति हुई होगी।

पन्त जी चित्र-कुशल कवि हैं। 'गुंजन' के चित्र कितने दर्शनीय हैं! 'पल्लव' के चित्रों में सख्य भाव था, 'गुंजन' के चित्रों में प्रेक्ष्य भाव है। एक में आत्मीयता थी, दूसरे में तटस्थता है।

यद्यपि 'गुंजन' की संवेदना करुण है, तथापि उसमें कवि का चिरप्रसन्न स्वभाव ही जीवन्त है। उसके हृदय में कितना उल्लास है!

जीवन का उल्लास,--
यह सिहर, सिहर,
यह लहर, लहर,
यह फूह-फूह करता विलास!

प्रकृति के रसोल्लास का कवि 'गुंजन' में भी माधुर्य्य और सौन्दर्य्य से ही जीवन के विकास की प्रेरणा ग्रहण करता है, कहता है--

खिलतीं मधु की नव कलियाँ
खिल रे, खिल रे मेरे मन!
नव सुखमा की पंखड़ियाँ
फैला, फैला परिमल-धन!

इस माधुर्य्य और सौन्दर्य्य में ही 'ज्योतिर्म्मय' 'चिर-अव्यय', 'चिर नूतन' है।

'वीणा' के वात्सल्य, 'पल्लव' के लालित्य, 'गुंजन' के चिन्तन को पन्त ने अपने रूपनाट्य 'ज्योत्स्ना' में एकमेव कर दिया है। 'ज्योत्स्ना' छायावाद-युग के चित्र, संगीत और अन्तर्दर्शन का संपुंजन है। प्रकृति के कवि ने प्रकृति को ही इसमें सामाजिक रूप दिया है। इसमें कथानक नहीं, घटना का संकेत मात्र है। यह रागात्मक वृत्तियों का रूपक है। रूपक में स्वाभाविक सरसता है, किन्तु विचारों में बौद्धिक गरिष्ठता है। यदि भाव की तरह विचारों में भी रागात्मकता होती तो नाटकीय प्रवाह में बाधा नहीं पड़ती।

'ज्योत्स्ना' में पन्त के गद्य और गीत का पूर्ण विकास हुआ है। पन्त के गद्य का एक रूप 'पल्लव' के 'प्रवेश' में है, दूसरा रूप 'ज्योत्स्ना' में है। 'पल्लव' और 'गुंजन' की काव्यभाषा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालित्य और ओज का जितना अन्तर पड़ गया उतना ही 'पल्लव' के 'प्रवेश' के भाव-तरल गद्य और 'ज्योत्स्ना' के विचार-गूढ़ गद्य में। सम्प्रति इसी प्रौढ़ गद्य में पन्त जी अपने लेख लिखते हैं। संस्कारतः उनकी गद्यभाषा में छायावाद का चित्र-शिल्प भी है।

गद्य में पन्त जी 'पल्लव' के 'प्रवेश'-काल में फिर नहीं लौट सके, किन्तु 'ज्योत्स्ना' के सरस गीतों में 'पल्लव' के काव्य-संगीत को और भी प्रांजल और सजीव कर सके हैं। 'ज्योत्स्ना' के साथ ही 'पल्लव' का लालित्य विलीन हो जाता है, उसके बाद 'गुंजन' के गद्य-(चिन्तन) और चित्रगीत (भाव-संगीत) का युग-विकास होता है।

अपने संस्मरण में पन्त जी लिखते हैं—"पल्लव-काल तक की अपनी कविता को मैं द्विवेदी-युग की कविता का विस्तार नहीं तो विकास मानता आया हूँ।"

'पल्लव' ही नहीं 'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना' भी द्विवेदी-युग के मनोविकास हैं, क्योंकि इन सबमें एक ही मूल चेतना का पुनरुत्थान है।

छायावाद द्विवेदी-युग का ही विकास था, यह 'युगान्त' से स्पष्ट हो जाता है। उसके चित्र द्विवेदी-युग से भिन्न होते हुए भी भाषा और छन्द से उसी युग के पद्य की याद दिलाते हैं। ऐसा जान पड़ता है मानों छायावाद ने द्विवेदी-युग के कैशोर्य्य में पदार्पण् किया है। 'युगान्त' में द्विवेदी-युग का पद्य अधिक सरल प्रांजल हो गया है।

'वीणा' में कवि ने रीति-काल की कविता का आह्वान नये वसन्त (छायावाद के भाव-जगत) में आने के लिये किया था, 'युगान्त' में उसे छायावाद से भी उपराम हो गया, वह पुराना पड़ गया। कवि क्रान्तमुख हो गया। उसने मानों अपने 'पल्लव' से ही कहा—'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !'

'युगान्त' छायावाद का पतझड़ है। उसके साथ मध्ययुग से छाया-युग तक की अविच्छिन्न काव्य-परम्परा का समापन हो जाता है।

'युगवाणी' से पन्त जी प्रगतिशील युग का प्रारम्भ करते हैं। प्रारम्भिक होकर भी 'युगवाणी' भाषा, भाव, विचार, छन्द और शैली की दृष्टि से पूर्ण विकसित और परिपुष्ट रचना है। तथाकथित प्रगतिवादी दृष्टि से यही पन्त जी की एकमात्र प्रगतिशील रचना है और इसीमें उनकी युग-प्रेरणा का आदि और अन्त है। उन्होंने इसे 'गीत-गद्य' कहा है। गीत अर्थात् भाव, गद्य अर्थात् विचार। भाव और विचार ने 'युगवाणी' में स्वस्थ, सघन और सुदृढ़ कला का सर्वथा नवीन कलेवर धारण किया है। पन्त की रचनाओं में ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी-कविता में 'युगवाणी' अन्यतम है।

लोकजीवन की ओर उन्मुख होते हुए भी 'युगवाणी' साहित्य के उच्च स्तर पर है, उसमें काव्य का साधारणीकरण नहीं है। 'ग्राम्या' से भाव, भाषा, छन्द और शैली में स्वाभाविकता और सुबोधता आ गयी। यह कितनी सहज रचना है ! गीत-गद्य के बाद यह पद्य का सर्वसुगम काव्य-प्रयोग है। 'युगान्त' में छायावाद का झिलमिल पद्य था, 'ग्राम्या' में सर्वथा द्विवेदी-युग का सुगठित पद्य है। अन्तर दृश्य और दृष्टिकोण का है।

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' पन्त के छायायुगीन और उत्तर कालीन काव्य-शिल्प के मध्य-विन्दु हैं, जल-डमरू-मध्य हैं। अब 'स्वर्णकिरण' से 'कला और बूढ़ा चाँद' तक पन्त ने काव्य के कितने कलारूप धारण किये हैं! गीत-गद्य तो 'युगवाणी' में ही छूट गया, पद्य बना रहा। समग्रतः वातावरण, आलम्बन और अनुभूति के अनुरूप पन्त की रचनाओं में काव्य-कला के दो रूप मिलते हैं—उच्च रूप और सहज रूप।

एक ही कवि काव्य की कितनी विधाओं और कितनी विधियों का सिद्धहस्त शिल्पी हो सकता है, यह पन्त की 'वीणा' से अबतक की रचनाओं में देखा जा सकता है।

'ग्राम्या' में पन्त जी ने कहा था—

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार,
वाणी मेरी, चाहिये तुम्हें क्या अलंकार!

'अलंकार' से उनका अभिप्राय कदाचित् अतिरंजित कला अथवा कला की अतिरंजना से है। वे कला की सादगी और स्वाभाविकता चाहते थे। क्या इसीलिए उन्होंने 'कला और बूढ़ा चाँद' में 'छन्दों की पायलें' उतार दी हैं? क्या यह प्रयोगवादी रचना है? नहीं, यह तो 'गीत-गद्य' के बाद पन्त का 'गद्य-गीत' है। केवल छन्द-रहित होने के कारण यह गद्य है, वैसे यह भावना और कल्पना का गीतकाव्य है। इसमें उनकी वही अन्तर्मुखी चेतना नये रूपकों, प्रतीकों और बिम्बचित्रों में व्यक्त हुई है जो 'स्वर्ण-किरण' 'उत्तरा' और 'वाणी' इत्यादि में व्यंजित हुई थी। इसमें भी वही—

"शाश्वत वसन्त—
अनन्त तारुण्य—
अनिन्द्य सौन्दर्य्य—
पहरा देते हैं यहाँ।"

तो फिर पुस्तक के इस नामकरण ('कला और बूढ़ा चाँद') का अभिप्राय क्या है? संभवतः यह अन्तःसार-शून्य नवीनता के प्रति व्यंग्य है।

'ग्राम्या' में पन्त जी ने पुराने काल्पनिक प्रेम के प्रति भी एक व्यंग्य किया था। 'ग्राम-नारी' के लिए उन्होंने कहा था—'उद्दीप्त न करता उसे भाव-कल्पित मनोज।'

स्वाभाविकता की दृष्टि से पन्त जी कला और भाव में 'नैसर्गिक जीवन-संस्कारों' का वही प्राणोन्मेष चाहते थे जो गाँवों के श्रम और वहाँ के विश्राम (यथा लोकनृत्यों) में है। एक शब्द में, वे कला और भाव का निसर्गीकरण और समाजीकरण चाहते थे। 'युगवाणी' में उन्होंने समाजवादी युग का यही स्वप्न देखा था—

सुन्दर, शिव, सत्य
कला के कल्पित माप-मान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन गये स्थूल
जग-जीवन से हो एकप्राण।

किन्तु वड्सवर्थ जैसे अपने प्राकृतिक दर्शन और सहज अभिव्यंजन को अपनी कविता में साद्यन्त नहीं निभा सका, वैसे ही पन्त जी अपनी कृतियों में सर्वांशतः अनलंकृत और कल्पना-रहित नहीं रह सके। सम्प्रति वे जिस अतीन्द्रिय चेतना को सदेह करना चाहते हैं वह कला और भाव के विशिष्ट स्तर पर ही प्रतिफलित हो रही है। उनकी अनुभूति इतनी अनिवर्चनीय है कि साधारण-असाधारण कोई भी अभिव्यक्ति उनका साथ नहीं दे पाती है। 'कला और बूढ़ा चाँद' में वे कहते हैं —

शब्दों के कन्धों पर
छन्दों के बन्धों पर
नहीं आना चाहता!
वे बहुत बोलते हैं!

फिर भी वे अपनी अतीन्द्रिय चेतना को 'तत्त्व मात्र गात्र' नहीं हो जाने देना चाहते। उसे शब्दों से, भावों से, रूपों से, रंगों से, स्वप्नों से, स्नेह से साकार करने का प्रयत्न करते हैं। जहाँ वे भाव और कल्पना से अनूभूति को रूप-रंग देते हैं वहाँ कला में राग की अन्तर्व्यंजकता आ जाती है, कविता रसात्मक हो जाती है।

पन्त जी की कई कविताओं में रागात्मकता की कमी हो गयी थी। 'आत्मिका', 'जन्म-दिवस', 'कूर्मांचल', 'हिमाद्रि', 'हिमाद्रि और समुद्र' प्रायः वर्णनात्मक इतिवृत्त हैं; उनमें चित्र-भाषा है, चित्रराग नहीं है। 'अशोक वन' यद्यपि इतिवृत्त नहीं है तथापि वह 'तत्त्व मात्र गात्र' है। राग के बिना कविता में अन्तर्व्यञ्जकता नहीं आ सकती।

पन्त जी का कहना है कि राग पुराने हो गये हैं, नये राग अभी भविष्याधीन हैं। किन्तु राग न पुराने होते हैं, न नये होते हैं, वे शाश्वत हैं, चिरन्तन हैं। केवल आलम्बन और कलाभि-व्यंजन ही पुराना और नया होता है। हाँ, संगीत में राग के नये-नये प्रयोग हो सकते हैं, उसी से काव्य में भी राग की नवीनता आ जाती है।

क्या पन्त जी वृद्ध हो गये हैं? क्या 'पल्लव' और 'गुंजन' की उनकी श्लक्ष्ण कला-दृष्टि खो गयी? क्या 'बूढ़ा चाँद' उनकी वयोवृद्धता का ही प्रतीक है? उसमें तो स्वस्थ, शाद्वल और रस-गम्भीर तारुण्य है। जो कवि राग की नवीनता चाहता है वह तो चिरतरुण है, नित्य नवीन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर श्याममनोहर पांडेय

विनयचन्द्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चतुष्पदिका'

"नेमिनाथ चतुष्पदिका" अपभ्रंश में प्राप्त एक बारहमासा काव्य है जिसकी रचना १४वीं शताब्दी के पूर्व हुई बताई जाती है।[1] नायक जिन मुनि नेमिनाथ हैं और नायिका राजल है। इसमें राजल का विरह-वर्णन अत्यन्त मार्मिक है। प्रस्तुत पाठ और टीका डा० हरिवल्लभ चूनी लाल भायाणी द्वारा सम्पादित एक पाठ और उसकी गुजराती टीका को आधार बनाकर तैयार की गयी है।[2] और आशा है अपभ्रंश के कोई गंभीर अध्येता इस महत्वपूर्ण काव्य का और गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। मूल पाठ इस प्रकार है--

सोहग-सुंदरु घण-लायण्णु सुमरवि सामिउ सामल-वन्नु।
सखि-पति राजल-चडिउत्तरिय बारमास सुणि जिम वज्जरिय॥१॥

नेमि-कुमरु सुमरवि गिरनारि।
सिद्धी राजल-कन्न कुमारि॥

श्रावणि सरवणि कडुयं मेहु, गज्जइ, विरहि रि! झिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसिजेव, नेमिहि विणु सहि! सहियइ केम॥२॥
सखी भणइ सामिणि! मन झुरि दुज्जण-तणा म वंछित पूरि।
गयउ नेमि, तउ विणठउ काइ अछइ अनेरा बरह सयाइ॥३॥
बोलइ राजल तउ इहु वयणु नत्थी नेमि-समं वर रयणु।
धरइ तेजु गह-गण सवि ताव गयणि न उग्गइ दिणयह जाव॥४॥

भाद्रवि भरिया सर पिक्खेवि सकरुण रोअइ राजल देवि।
हा! एक लडी भइ निरधार किम ऊबेखिसि, करुणा-सार॥५॥
भणइ सखी 'राजल! मन रोइ नीठुरु नेमि न अप्पणु होइ।
सिंचिय तरुवर परि पलवंति गिरिवर पुण कड (?) डेरा हुंति॥६६॥

---

१. देखिये प्रस्तुत लेखक का लेख--बारहमासा की परम्परा और पद्मावत, सम्मेलन पत्रिका, भाग ४७, अंक १।

२. देखिये, थार्वस गुजराती सभा ग्रंथावलि ६१, बंबई ४ (सन् १९५५)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांचउँ, सखि ! वरि गिरि भिज्जंति, किमइ न भिज्जइ सामल-कंति।
घण वरिसंतइ सर फुट्टंति सायरु (?) पुणु घणु ओहडु (?) लिति ॥७॥

आसोमा सह अंसु-प्रवाह राजल मिल्हइ विणु नमि नाह।
दहइ-चंदु चंदण हिम-सीउ विणु भत्तारह सउ विवरीउ ॥८॥
सखि ! न विखोना नेमिहि रेसि मन आपणपउँ तउँ खयनेसि।
जिणि दिक्खाडिउ पहिलउँ छेहु न गणिउ अट्ठ भवन्तर नेहु ॥९॥
नेमि दयालू, सखि ! निरदोसु कीजइ उग्रसिण-ऊपरि रोसु।
पसुय (?) भराविउ मूकउ वाडु मुझप्रिय सरिसउ कियउ विहाडु ॥१०॥

कत्तिग क्षितिग ऊगइ संझ रजमति झिझि (?) उहुइ अति झंझ।
राति-दिवसु अछइ विलवन्त वलिवलि, दयकरि दयकरि कंत ॥११॥
नेमि-तणी, सखि ! मूकिन आस कायरु भग्गउ सो वरवास।
इभइ इसी सनेहलमारि जाइ कोइ छंडवि गिरनारि ॥१२॥
कायरु किम, सखि ! नेमिजिणंदु, जिणि रिणि जित्तउ लक्खु नरिंदु।
फुरइ सासु जा अग्गलिनास, ताप न मिल्हउँ नेमिहि आस ॥१३॥

मगसिरि मग्गु पलोअइ बाल इण परि पभणइ नयण-विसाल।
जो मइ मेलइ नेमिकुमार तसु णीबेल (?) वहउ सवि-वार ॥१४॥
एहु कहाग्रहु तउ सखि ! गिल्हि करिसि काइ तिणि नेमिहि, हिल्लि !
मंडि चडाविउ जो किर मालि, हे। हे। कुकरइ तोहण-कालि ? ॥१५॥
अठ भव सेविउ, सखि ! भइनेमि, तसु ऊमाहउ किम न करोमि ?
अवगन्नेसइ जइ मइ सामि लग्गी अछिसु तोइ तसु नामि ॥१६॥

पोसि रोस सवि छंडिवि नाह ! राखि राखि मइ मयणहपाह।
पड़इ सीउ, नवि रयणि विहाइ लहिय छिद्द सवि दुक्ख अमाइ ॥१७॥
नेमि ! नेमि ! तू करती मूढ्ढि ! जुव्वणु जाइ न जाणिसि सुद्धि।
पुरिस-रयण-भरियउ संसारु परणि अनेरउ कुइ भत्तारु ॥१८॥
भोली तउ, सखि ! खरी गमारि वरि अच्छं तइ नेमि-कुमारि।
अन्नु पुरिसु कुइ अप्पणु नडइ ? गइ (?) वरु लहिउ कुरासभि चड़इ ॥१९॥

माह मासि माचइ हिय-रासि देवि भजइ 'मइ प्रिय ! लइपासि।
तइ विणु, सामिय ! दहइ तुसारु नव-नव मारिहि मारइ मारु ॥२०॥
इहु, सखि ! रोइसि सहुअरन्नि, हत्थि कि जामइ धरणउ कन्नि।
तउ न पतीजसि, माहरी माइ ! सिद्धि-रमणि-रत्तउ-नमि जाइ ॥२१॥

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंति वसंतइ हियड़ा-माहि, वाति पहीजउँ किम हलसाइ (?)
सिद्धि जाइ तउ काइत वीह, सरसी जाउ त उग्रसेण-धीय ॥२२॥

फागुण ? वा-गुणि पन्न पंडति राजल-दुक्खि कि तरु रोयंति ?
गब्भि गलिवि हउँ काइ न मूय ? भणइ विहंगल धारणि-धूय ॥२३॥
अबिउ भणिउ करि, सखि ! विम्भासि अछइ भलावर नेमिहि पास ?
अनु, सखि ! मोदक जउनवि हुंति छुहिय सुहाली किन सच्चंति ॥२४॥
मणहपासि जइ वहिलउ होइ नेमिहि पासि ततलउ न कोइ।
जइ, सखि ! वरउँ त सामल-धीरु धणुविणु पियइ कि चातकुनीर ॥२५॥

चैत्र मासि वणसइ पंगुरइ वणिवणि कोयल टहका करइ।
पंचबाण करि धनुष धरेवि वेझइ मांडी राजल-देवि ॥२६॥
जुइ, सखि ! मातउ मासुवसंतु इणि खिलिज्जइ, जइजइ कंतु।
रभियइ नव नव करि सिणगारु लिज्जइ जीविय-जुव्वण-सारु ॥२७॥
सुणि, सखि ! मानिउ मुझु परिणयणु, नवि ऊवरि थिउ बंधव-वयणु।
जइ पडिवन्नइ चुक्कइ नेमि, जीविय जुव्वणु जलणि जलेमि ॥२८॥

वइसाहइ विहसियवणराइ मयण-मित्तु मलयानिलु वाइ।
फुट्टि, रि हियड़ा ! माझिवसंतु विलवइ राजल पिक्खिउ कंतु ॥२९॥
सखी दुक्ख बीसरिवा भणइ संभलि, भमरउ किम रुण झुणइः।
दीस पंच थिरु जोव्वणु होइ खाउ, पियउ, विलसउ सहु कोइ ॥३०॥
रमणि पसंसइ राजल-कन्न जीह कंतु वसि, ते पर धन्न।
जसु प्रिउ न करइकिमइ मुहाड़ि सा हउं इक्क ज भुंड-निलाडि ॥३१॥

जिट्ठ विरहु जिम तप्पइ सूरु घण-विओगि सुसियं नइ-पूरु।
पिक्खिउ फुल्लिउ चंपइ-विल्लि राजल मूछी गेह-गहिल्लि ॥३२॥
मूछी राणी, हा सखि ! धाउँ (?) पडियउ खंडइ (?) जेवडु घाउ।
हरिय मूछ चंदण-पवणेहिँ सखि आसासइ प्रिय-वयणेहिँ ॥३३॥
भणइ देवि विरती संसार पड़िखि पड़िखि मइ (?), जादव-सार ?
निय-पडिवन्नउँ, प्रभु ! संभारि भइ लइ सरिसी गढ़ि गिरिनारि ॥३४॥

आसाढ़ह दिढु हियउँ करेवि गज्जु विज्जु सवि अवगन्नेवि।
भणइ वयणु उग्रसेण्ह जाय करिसु धम्मु सेविसु प्रिय-पाय ॥३५॥
मिलिउ सखी राजल पभणंति चिणय जेम न मिरिय खज्जंति।
अउगी अच्छि सखि ! झखि मनआल तपु दोहिल्लउ, तउँ सुकुमाल ॥३६॥

[वर्ष ४७, संख्या २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अठभव विलसिउ प्रियह पसाइ किमइ जीवु सखि ! सुख [ह] न थ्राइ।
हिवप्रिय सरिसउँ जीविय-मरणु इण भवि पर-भवि निमिजु सरणु ॥३७॥

अधिकु मासु सवि मासहि फिरइ छह रितु-केरा गुण अणुहरइ।
मिलिवा प्रिय ऊबाहुलि हूय सउ मुकलाविउ उग्रसेण-धूय ॥३८॥
पंचसखी-सइ जसु परिवारि प्रिय-ऊमाही गइ गिरिनारि।
सखी-सहित राजल गुण-रासि लेइ दिक्ख परमेसर-पासि ॥३९॥
निम्भल केवल-नाणु लहेवि सिद्धी सामिणि राजल-देवि।
रयण सिंह-सूंरि पणमवि पाय बार-इ मास भणिया भइ, भाय ॥४०॥

नेमि-कुमरु सुमरवि गिरनारि।
सिद्धी राजल-कन्न कुमारि॥

नेमिनाथ चतुष्पदिका-अर्थ

सौभाग्य सुन्दर, परमरूपवान, लावण्यवान, श्यामवर्ण वाले स्वामी नेमिनाथ को स्मरण करके सखी को संबोधित करते हुए राजमती ने जिस तरह से उत्तर प्रत्युत्तर के रूप में बारहमासा कहा है उसे तू सुन।

नेमिकुमार को स्मरण करके कुमारी राजल कन्या गिरिनार में मुक्ति पा गई। सावन के मेघ कानों में कटु गर्जना कर रहे हैं। हे सखी, विरह से देह क्षीण हो रही है। बिजली राक्षसी के समान चमक रही है। हे सखी, बिना नेमिनाथ के मुझसे यह सब कैसे सहा जाय।

सखी कह रही है, हे स्वामिनी चिन्ता मत करो। दुर्जन लोगों से मनोवांछित फल की पूर्ति नहीं होती। नेमि गया तो क्या हो गया। दूसरे और सैकड़ों वर हैं। यह सुनकर राजल यह वचन बोलती है। नेमि के समान दूसरा वररत्न नहीं ही है। सारे नक्षत्र ग्रहगण तब तक ही प्रकाशवान रहते हैं जब तक गगन में दिनकर का उदय नहीं होता।

भादों में भरे हुए तालाबों को देखकर राजल देवी अति करुण रूप से रुदन कर रही है—आह ! मुझ अकेली को, निराधार को, हे करुणा सागर तू किस तरह से उपेक्षित कर रहा है। तब सखी कहती है—राजल रोओ मत। जो निष्ठुर ने है अपना नहीं है। पेड़ को अगर सींचा जाता है तो वह पुनः पल्लवित होता है परन्तु पहाड़ तो और कड़ा बन जाता है।

राजल कहती है—हे सखी तुम सत्य कहती हो, भले पहाड़ भींग जाये परन्तु श्याम-कान्तिवाला किसी भी तरह नहीं भिंगेगा। पानी बरसने लगता है तो तालाबों से पानी फूट निकलता है पर सागर में तो बहुत-सा पानी समा जाता है।

आश्विन मास में राजल नेमिनाथ के बिना अश्रु प्रवाहित कर रही है। हिमशीतल चन्द्रमा और चंदन दाहक लग रहे हैं। प्रिय बिना सब कुछ उलटा (विपरीत) लगता है।

सखी कहती है—हे सखी, तू अपना क्षय न कर। उस नेमि के लिए तू खिन्न न हो जिसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले तो स्नेह दिखलाया फिर उसने आठ (जन्म) भवान्तर के स्नेह का ख्याल नहीं किया।

राजल कहती है--नेमि तो दयालु और निर्दोष है। अगर रोष प्रकट करना हो तो उग्रसेन के ऊपर करो जिसने बाड़ा पशुओं से भर लिया और इस तरह से मेरे प्रिय के साथ झगड़ा किया।

कार्तिक की सांझ में कृत्तिका नक्षत्र उगता है। राजमती बहुत क्षीण और व्याकुल हो गई है। रात दिन वह विलाप करती रहती है--हे प्रिय वापस लौट आ। वापस लौट आ।

सखी कहती है--हे सखी, नेमि की आशा छोड़ दे। वह कायर गृहस्थाश्रम से भाग गया नहीं तो इस तरह से इतनी स्नेहशील नारी को छोड़कर कोई गिरनार जाता है?

राजल कहती है--हे सखी, जिसने रण में लाखों राजाओं को जीता वही नेमि जितेन्द्र कायर किस तरह से हो सकता है? जब तक नाक में से श्वास का स्फुरण हो रहा है तब तक मैं नेमि की आशा नहीं छोड़ूँगी।

अगहन में राजमती मार्ग की प्रतीक्षा कर रही है। वह विशालनयना इस प्रकार बोलती है--"जो मुझे नेमिकुमार से मिला देगा उसका उपकार मैं सदा वहन करूँगी।"

सखी कहती है--हे सखी, तू अपना यह दुराग्रह छोड़ दे।

राजल कहती है--हे सखी, मैंने नेमि की आठ जन्मों तक कामना की है। उसके लिए मैं उत्कंठित क्यों न होऊँ। यदि मेरा स्वामी मेरी अवमानना भी करेगा तब भी मैं उसके ही नाम से चिपकी रहूँगी।

राजल कहती है--हे नाथ, पूष में सारे रोष को छोड़कर कामदेव से मेरी रक्षा करो। रक्षा करो। रात को ठंड लगती है और किसी तरह से सबेरा नहीं होता। मौका मिलते ही सारे दुख आ घेरते हैं।

सखी कहती है--हे मुग्धा, नेमि नेमि करते तुझे इतनी भी सुधि नहीं है कि तेरा यौवन बीता जा रहा है। संसार पुरुष रत्नों से भरा हुआ है। अन्य किसी प्रिय से शादी कर लेना।

राजल कहती है--हे सखी, तू भोली है। सत्य यह है कि तूं गँवार है। नेमिकुमार वर के रहते हुए क्या कोई अन्य पुरुष के लिए अपने को दुखी कर सकती है? गजराज की सवारी करके क्या कोई गदहे की सवारी करता है।

माघ मास में हिम राशि मत्त बन जाती है। राजल देवी कहती हैं--'हे प्रिय, मुझे अपने नज़दीक ले। स्वामी तुम्हारे बिना तुषार जल रहा है। कामदेव नये-नये ढंग से मार रहा है।

सखी कहती है--हे सखी, जो तू रो रही है, यह सब अरण्य रुदन है। क्या हाथी को कान से पकड़कर कब्जे में किया जा सकता है? मेरी सखी, तू तो विश्वास ही नहीं करती है कि सिद्ध रमणी से अनुरक्त होकर नेमि चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजल कहती है—हे सखी, कान्त के हृदय में बसते हुए तेरी बात का मैं किस तरह विश्वास करूँ? नेमि यदि सिद्धि के पास जाये तो उसमें क्या बुरा है? मैं भी उसके साथ जाऊँ तभी तो मैं उग्रसेन की पुत्री होऊँगी।

फागुन में हवा के कारण पत्ते गिरते हैं—राजल अपने दुख में समझती है कि पेड़ भी रो रहे हैं। धरती की विह्वल पुत्री राजल कहती है—गर्भावस्था में ही मैं गलकर क्यों न मर गई?

सखी कहती है—हे सखी, अभी मेरा कहा कर। विचार कर। नेमि की अपेक्षा भी बहुत से अच्छे वर हैं। ऐ सखी क्या यदि लड्डू (मोदक) न हो तो क्या भूखे आदमी को सुहारी भी नहीं रुचती?

राजल कहती है—कोई यदि मन की अपेक्षा भी ज्यादा गतिवान हो, वह भी नेमि की अपेक्षा अच्छा नहीं है। सखी यदि मैं वरूँगी तो उसी श्यामल धीर पुरुष को। क्या चातक बादल के बिना पानी पीता है?

चैत्र मास में पेड़ पौधे फलने-फूलने लगते हैं। वन वन कोयल कूकने लगती है। कामदेव कर में धनुष लेकर राजल देवी को बेधने लगता है।

सखी कहती है—देख सखी, वसन्त मास मतवाला हो गया है इस समय यदि प्रिय पास हो तो, खिली उठाकर (पान खाकर)? नया नया शृंगार करके उसके साथ रमण किया जाय और जीवन और यौवन का सम्पूर्ण आनन्द उठाया जाय।

राजल कहती है—सखी सुन, मेरे साथ विवाह करने को उसने मान रखा है। दिये हुए वचन से वह कभी मुकरा नहीं है। यदि वचन देकर नेमि भूल जायगा तो मैं अपना जीवन तथा यौवन दोनों अग्नि में जला दूँगी।

वैसाख में वन-राजि विकास पाती है। कामदेव का मित्र मलयानिल चलने लगता है। हृदय में बसे हुए कंत को देखकर राजल विलाप करती है—"रे हृदय फट जा।"

दुख भुलवाने के लिए सखी कहती है—सुन भौंरा क्या गुनगुना रहा है—यौवन पाँच दिन के लिए ही स्थिर है तो सब कोई खाओ पीओ आनन्द करो।

राजल दूसरी रमणियों की प्रशंसा करती है—जिन लोगों के प्रिय उनके वश में हैं वह परमधन्य हैं और जिनको किसी कारणवश अपने प्रिय का मुंह दिखलाई नहीं पड़ता है वे और मैं एकही तरह दुखिनी (मुंडाकपाड़िनी) हैं।

ज्येष्ठ महीने में विरह सूर्य की भाँति तपता है, धनि के वियोग से नदी की बाढ़ सूख गई है। चम्पककली को फूली हुई देखकर राजल मूर्च्छित हो गई।

सखी कहती है—रानी मूर्च्छित हो गई है, अरे कोई सखी दौड़ो। तलवार की धार जैसे वह पड़ गई। चन्दन से सिक्त पवन ने उसकी मूर्च्छा हर ली।

सखी के प्रिय वचनों द्वारा वह आश्वस्त हुई। राजल देवी कहती है—यादव श्रेष्ठ प्रतीक्षा करते करते मैं संसार से विरक्त हो गई हूँ। प्रभु आप अपने वचनों को निभाइए और मुझे अपने साथ गिरिनार ले चलिए।

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आषाढ़ में हृदयों को दृढ़ करके और बिजली की गर्जना की अवहेलना करके उग्रसेन की पुत्री इस प्रकार कहती है कि अब मैं धर्म का आचरण करूँगी और अपने प्रिय के चरणों की सेवा करूँगी।

एकान्त में सखियों से मिलकर राजल से बोलती है--जिस प्रकार मरा हुआ चना खाया नहीं जाता और न वह उग ही सकता है उसी प्रकार इस व्यर्थ वाणी से तप नष्ट होता है और तू सुकुमार है।

राजल कहती है --प्रिय की कृपा से आठ प्रकार के सुखों का मैंने अनुभव कर लिया, तब सखी अब मेरे मन में किसी सुख की कमी नहीं रह गई है। अब तो मरना और जीना प्रिय के साथ ही है। इस संसार में और परलोक में मैं एक मात्र नेमि की शरण में ही हूँ।

अधिक मास सब महीनों में अधिक फलदायी होता है। वह छ : ऋतुओं के गुणों का अनुसरण करता है। उग्रसेन की पुत्री प्रिय से मिलने के लिए उत्कंठित हुई। उसने सबसे आज्ञा मांगी।

जिसके परिवार में ५ सौ सखियाँ हों, वह अपने प्रिय के लिए उत्कंठित होकर गिरनार चली गई और सखियों के साथ गुणमयी राजल नेमि से दीक्षा लेने जा रही है। स्वामिनी राजलदेवी तो केवल निर्मल ज्ञान को ही पाकर सिद्ध हो गई।

हे भाई, रत्नसेन सूरि के चरणों में नतमस्तक होकर मैंने यह बारहमासा गाया। नेमिकुमार को स्मरण कर के कुमारी राजलकन्या सिद्धि को प्राप्त हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर त्रिलोकीनारायण दीक्षित

रामायण एवं मानस में सांस्कृतिक चित्रण

संस्कृत व्याकरण के अनुसार संस्कृति शब्द सम (उत्तम) उपसर्गपूर्वक कृन् धातु से क्तिन 'प्रत्यय' होने पर निष्पन्न होता है। इसका सरलार्थ है उत्तम कृति अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि सम्यक चेष्टाएं। इनमें लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सभी प्रकार के अभ्युदय, उन्नति के अनुकूल चेष्टाएं आ जाती हैं। सामान्य तथा देहादि की समस्त उत्तम चेष्टाएं संस्कृति कही जाती हैं। धर्म एवं साहित्य से इसका घना सम्बन्ध है।

'संस्कृति' या संस्कार' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। ये उभय शब्द बहु शास्त्र प्रयुक्त हैं। संस्कृति शब्द इन दोनों शब्दों की तुलना में अपेक्षाकृत नवीन है। आज इस शब्द का प्रयोग आंग्ल भाषा के 'कल्चर' शब्द के लिए होने लगा है परन्तु तथ्य यह है कि 'कल्चर तथा संस्कृति' शब्दों का अर्थ एक ही नहीं है। हां, उनके भावार्थ में प्रचुर साम्य है। दोनों के शब्दार्थ की आत्मा में कुछ साम्य एवं सामंजस्य है। प्राकृतिक विधान के अनुरूप संस्कार की हुई पद्धति ही संस्कृति है। यह 'संस्कृति' शब्द आधुनिक युग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द है। पाश्चात्य विद्वानों के मत से संस्कृति उस सामाजिक देन को कहते हैं जिसके अनुसार मानव अपने जीवन को आधारित करता है और जिसकी नींव पर समाज सभ्यता की दिशा में अग्रसर होता है। मानव तथा समाज की शिल्प कलाएं, उसके वस्त्राभूषण, उसके अस्त्र-शस्त्र, धर्म, विश्वास, मान्यताएं, कला-कौशल, रीति-नीति ये समस्त संस्कृति के अन्तर्गत परिगणित होते हैं। इस देश के विद्वानों ने संस्कृति के आभ्यन्तरिक तत्वों की ओर अधिक ध्यान दिया है। इन विद्वानों के अनुसार संस्कारों के समाहार को संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति व्यक्तिगत भी होती है और समष्टिगत भी। किसी विशेष समाज, जाति या राष्ट्र के समस्त व्यक्तियों के उच्च उदात्त एवं दिव्य संस्कारों के पुंज का नाम ही उस समाज, जाति तथा राष्ट्र की संस्कृति है। सी० पी० रमण स्वामी अय्यर का मत है कि संस्कृति जीवन का एक दृष्टिकोण है। संस्कृति मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि है। संस्कृति सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है। संस्कृति किसी भी देश की आत्मा है। संस्कृति के माध्यम से ही सामूहिक या सामाजिक-जीवन के आदर्शों का निर्माण होता है। यह विशिष्ट मानव समूह के उन समस्त उदात्त गुणों को प्रकाशित करती है जो मानव-जाति में सर्वत्र उपलब्ध होने पर भी उस विशिष्ट समूह की विशेषता होती है। 'सभ्यता' वह वस्तु है जो हमारे पास है और 'संस्कृति' वह गुण है जो हममें व्याप्त है। सभ्यता की तुलना में संस्कृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घजीवी तथा महत्वपूर्ण होती है। अनेक शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस प्रकार खाते-पीते हैं, रहते-सहते हैं, पढ़ते-लिखते हैं, राजकार्य एवं धर्म का परिपालन करते हैं, उनमें संस्कृति स्वतः प्रतिबिंबित होती है। हमारे वस्त्राभूषण के धारण करने की विधि, आमोद-प्रमोद, हास्य, रुदन में संस्कृति की झलक रहती है। संस्कृति जीवन की एक शैली है, और यह शैली शताब्दियों से एकत्रित होकर समाज में निहित रहती है। संस्कृति, मानव जीवन के समस्त पक्षों को संस्कारित करती है। सभ्यता की तुलना में संस्कृति सूक्ष्म तत्व है। यह सभ्यता में उसी प्रकार परिव्याप्त है यथा पुष्पों में सुगन्ध।

भारतीय संस्कृति का मुख्याधार आध्यात्मिकता है। स्वतंत्र विचार-पद्धति तथा अभय मनोवृत्ति इसकी आधारभूत विशेषता है। सहिष्णुता तथा औदार्य इसकी द्वितीय विशेषता है। इस देश में हर प्रकार के विचारक समुत्पन्न हुए हैं। कोई ईश्वरवादी था तो कोई अनीश्वरवादी परन्तु स्वादर्शों की रक्षा के हेतु यहां कभी रक्तपात नहीं हुआ। भारतीय-संस्कृति की तृतीय विशेषता ऋतु है। अर्थात् घटनाएं अचानक नहीं घटित होती वरन् नियमानुसार एक व्यवस्था से अनुशासित होकर घटित होती हैं। आश्रम-भेद, वर्ण-भेद, कर्म-फल के सिद्धान्त इसी विशेषता के अन्तर्गत आते हैं। हिन्दू-संस्कृति ने अपने को धर्म, वाङमय, चित्रकला एवं मूर्तिकला के अनेक रूपों में व्यक्त किया है।

संस्कृति की शुद्धात्मा साहित्य के अन्तस से प्रतिबिंबित होती है। संस्कृति के प्रचार का सबसे सुन्दर साधन साहित्य है। साहित्य में सामाजिक परिस्थितियों, विचारों तथा प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति होने से, यदि वह समाज का दर्पण है तो संस्कृति संदेशों को जनता के हृदय तक पहुंचा कर विशाल जन-समूह को एकता के सूत्र में निबद्ध करती है। संस्कृत के ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति की अनुपम-गाथा प्रतिश्रुति होती है। त्याग तथा तपस्या से परिपालित होकर तपोवनों में विकसित भारतीय-संस्कृति के सुरम्य स्वरूप संस्कृत के ग्रन्थों में दृष्टिगत होते हैं। महर्षि वाल्मीकि एवं व्यास, कालिदास तथा भवभूति, वाण तथा दण्डी की सुन्दर रचनाओं में केवल कला, मौलिकता तथा रमणीयता ही नहीं है, वरन् उनमें भारतीय-संस्कृति के अनूठे चित्र भी अंकित हैं। संस्कृत साहित्य के तीन कालों--श्रुतिकाल (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एव उपनिषद्) स्मृति काल (रामायण, महाभारत, पुराण तथा वेदांग) तथा लौकिक साहित्य-काल की रचनाओं में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति समान रूप से उपलब्ध होती है।

'रामायण' तथा 'मानस' की रचना का लक्ष्य सामान्यतया एक ही रहा है। 'रघुनाथ गाथा' के लक्ष्य को लेकर वाल्मीकि और तुलसी दोनों ने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार इन श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना की। संस्कृति-चित्रण की दृष्टि से दोनों में अद्भुत सामंजस्य है। इन उभय ग्रन्थों में सांस्कृतिक वर्णन या चित्रण को स्पष्ट करने के लिए हम निम्नलिखित शीर्षकों में विषय का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

(क) 'रामायण' तथा मानस' में वर्णाश्रम व्यवस्था।

(ख) 'रामायण' तथा 'मानस' में पारिवारिक संस्कृति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) 'रामायण' तथा 'मानस' में संस्कार।
(घ) 'रामायण' तथा 'मानस' में यज्ञ-वर्णन।
(ङ) 'रामायण' तथा 'मानस' में ललित कलाएं।

रामायण कालीन सभ्यता के विकसित होने के साथ-साथ इस भारतवर्ष भर में वर्ण-व्यवस्था की स्थापना हो चुकी थी। इस देश की सामाजिक व्यवस्था-वर्ण आश्रम के आधार पर विद्यमान थीं। इस समय तक चतुर्वर्ण व्यवस्था समाज के निर्माण संगठन तथा अनुशासन की आधार बन चुकी थी। रामायण काल की वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में यहां पर यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि तत्कालीन व्यवस्था जन्मना और कर्मणा दोनों पर आधारित थी। जन्मना ब्राह्मण, कर्मणा क्षत्रिय और वैश्य के उदाहरण भी उस समय विद्यमान थे। ब्राह्मणों में भी कर्मों के अनुसार अनेक वर्ग थे। ब्राह्मण वर्ग के कतिपय व्यक्तियों को देव ब्राह्मण उपाधि सम्प्राप्त थी। इस वर्ग के व्यक्ति अपने सदाचार तथा आदर्श चरित के द्वारा इस सम्मान के पात्र बनते थे। राजा दशरथ के राज्य में इस कोटि के व्यक्ति समाज की सुशोभा तथा गौरव को संवर्धित करते हुए रामायण के अन्तर्गत व्यक्त किये गये हैं।

तामाग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां द्विजोत्तमैर्वेदषडङ्गपारगैः।
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्च केवलैः॥
(वाल्मीकि रामायण १।५।२३)

इसी प्रकार समाज से उदासीन और विरक्त ब्राह्मण ऋषि अथवा मुनि ब्राह्मण आदि सम्मान सूचक शब्दों से सुशोभित रहते थे। इस कोटि के ब्राह्मणों की सब से बड़ी विशेषता उनका तपोनिष्ठ तथा सदाचार से युक्त चरित्र था। ये सूक्ष्मदर्शी थे। रामायण में इनका अनुकरणीय चरित्र अनेक बार व्यक्त हुआ है।

वैखानसा वालखिल्या संप्रक्षाला मरीचिपाः।
अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः।
दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे।
गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः
मुनयः सलिलाहारा वायुभक्षास्तथापरे।
आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थण्डिलशायिनः।
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससः।
सजपाश्च तपोनिष्ठास्तथा पञ्चतपोन्वितः।
सर्वे ब्राह्मयाश्रियायुक्ता दृढ़योगसमाहितः॥
(वाल्मीकि रामायण ३।६।२,६)

रामायण काल में सभी व्यक्ति स्ववर्णानुसार कर्मों का परिपालन करते थे। प्रत्येक वर्ण स्वकर्म निरत था :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे।
वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः
कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रमसंयुताः।
क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः।
शूद्राः स्वकर्मनिरतांस्त्रीन्वर्णानुपचारिणः॥
(वाल्मीकि रामायण १।६।१३, १७, १९)

इतना होते हुए भी समाज में कुछ ऐसे ब्राह्मण अस्तित्व रखते थे जो क्षत्रियों के लक्षणों से युक्त होकर क्षत्रिय के दायित्व का निर्वाह करते थे। इस कोटि के ब्राह्मण क्षात्र-ब्राह्मण के नाम से अभिहित थे। पुरुषार्थ ही उनके जीवन का परम कर्तव्य था। परशुराम के चरित्र और व्यक्तित्व में जो उग्रता, जो तीव्रता तथा क्षत्रियत्व था उसका रामायण में सुन्दर शब्दों में उल्लेख मिलता है।

ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम्।
भार्गवं जामदग्नेयं राजा राजविमर्दनम्।
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः।
स्कन्धे चासज्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम्।
प्रगृह्य शरमुग्रंच त्रिपुध्नं यथा शिवम्।
(वाल्मीकि रामायण १।७४।१७, १९)

रामायण में वैश्य-वृत्ति को धारण किये हुए ब्राह्मणों का उल्लेख भी है और 'त्रिजट' नामक ब्राह्मण का उल्लेख इसी कोटि में हुआ है। वाल्मीकि रामायण (२।३२।३०–४४) में ब्राह्मण की भांति क्षत्रियों के भी उदाहरण मिलते हैं। उस युग में क्षत्रियों का परम कर्तव्य था, दुर्बल प्राणियों की रक्षा करना।

रामायण में भगवान राम का चरित्र आदर्श क्षत्रिय के व्यक्तित्व को युग-युग से भारतीय जनता के समक्ष उपस्थित करता आ रहा है।

रामायण में वैश्यगण और वैश्यों के समाज का भी उल्लेख मिलता है। ये वैश्य समाज के आर्थिक संगठन एवं व्यवसायी जीवन के लिये उत्तरदायी थे। वैश्यगण में भी अनेक सुसंगठित संस्थायें थीं। समाज में वे सबसे अधिक सम्पन्न, समृद्ध और कर्मठ प्राणी थे।

वर्ण-व्यवस्था में शूद्र सबसे अन्तिम श्रेणी में थे। समाज में इनका व्यापक उपयोग और स्थान था। ये मन, वचन और कर्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा में तत्पर रहते थे। सामाजिक जीवन में ये उपर्युक्त तीन वर्णों से पृथक और भिन्न नहीं थे, परन्तु धार्मिक क्षेत्रों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पर साधनात्मक दृष्टि से अनेक प्रतिबन्ध लगे थे। शम्भूक-वध (वाल्मीकि रामायण) इसका ज्वलंत उदाहरण है।

ब्राह्मण वर्ण के प्रति क्षत्रियों की सदैव सद्भावना रहती थी और समाज का सबसे महत्व-पूर्ण स्थान ग्रहण करने पर भी यह क्षत्रियों द्वारा रक्षित थे।

वर्ण-व्यवस्था के साथ ही रामायण-काल की आश्रम-व्यवस्था का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। यदि वर्ण-व्यवस्था समष्टि के लिये उपयोगी थी, तो आश्रम-व्यवस्था व्यष्टि के जीवन के लिये कल्याणकर एवं संतुलित करने वाली थी। रामायण में आश्रम-व्यवस्था का भी चित्रण किया गया है। कश्यप ऋषि के प्रपौत्र श्रृंग ब्रह्मचर्य आश्रम के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हुए रामायण में चित्रित किये गये हैं। गुरुकुल की व्यवस्था का संगठन ब्रह्मचर्य आश्रम की दृष्टि से ही किया जाता था।

स वने नित्य संमृद्धो मुनिर्वनचाः सदा।
नान्यं जानाति विप्रेन्द्रो नित्यं पित्रनुवर्तनात्।
द्वैविध्यं ब्रह्मचर्यस्य भविष्यति महात्मनः॥
(वाल्मीकि रामायण १।८।५,६)

गृहस्थाश्रम का आदर्श रूप दशरथ और जनक के व्यक्तित्व के साथ अंकित किया गया है। रामायण में गृहस्थाश्रम की महत्ता और श्रेष्ठता का भी उल्लेख है।

चतुवर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्।
(वा० रा० २।१०।२२)

इसी प्रकार रामायण के अरण्यकांड में ऋषि ब्राह्मणों अथवा वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में जीवन व्यतीत करने वाले मुनियों का भी उल्लेख हुआ है।

'मानस' की रचना के समय भारतवर्ष की परिस्थितियां रामायण-काल से भिन्न थीं। अतः उस समय की संस्कृति का चित्रण गोस्वामी तुलसीदास ने दो दृष्टियों से किया है। प्रथम 'यथार्थ परिस्थिति' द्वितीय 'आदर्श दृष्टिकोण'। गोस्वामी जी के समय तक वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था शिथिल हो गई थी। वे उन परिस्थितियों को देखकर बड़े क्षुब्ध हो उठते थे। काक-भुसुंडि के शब्दों में गोस्वामी जी का क्षोभ तथा दुःख प्रतिबिंबित होता है।

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥

भए वरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग।
करहि पाप पावहिं दुख भय रुज सोक वियोग॥
(मानस ७।९७।१,१०० दोहा तक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी जी के समय तक वर्णाश्रम धर्म पूर्ण-रूप से विकृत हो गया था। बौद्धों तथा जैनियों ने वैदिक संस्कृति पर भांति भांति से प्रहार किये। इतना सब संघटित होने पर भी वेदान्त मत के प्रचारकों ने अपने प्रयत्न द्वारा भारतीय संस्कृति की रक्षा करने का प्रयत्न किया। निर्गुण मत के प्रचारक कवियों तथा सूफी मत के प्रचारकों ने भी इस दिशा में बड़ा ध्वंसात्मक प्रयत्न किया। गोस्वामी जी की समन्वय भावना ने "श्रुति सम्मति हरि भक्ति पथ" के पथिक बनकर प्राचीन तथा अभिनव वर्णाश्रम व्यवस्था का समन्वय एवं संगठन किया। तुलसीदास ने जन्म तथा कर्म दोनों ही से वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार करके अपनी समन्वय प्रियता का परिचय दिया। गोस्वामी जी सामाजिक मर्यादा के पोषक थे, अतः वर्णाश्रम व्यवस्था उन्हें जन्मना भी स्वीकार थी। उनके कथन "साषत ताड़त परुष कहंता। विप्र पूज्य अस गावहिं संता" (मानस ३।३३।१) से स्पष्ट है कि वह ब्राह्मण वर्ण के प्रति पूज्यभाव रखते थे परन्तु भक्ति का समावेश हो जाने से उन्हें अन्य वर्ण भी मान्य थे। गोस्वामी की जी "विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी" पंक्तियों से स्पष्ट है कि निम्न दोषों से अभिशप्त ब्राह्मण को ब्राह्मण मानने के लिए उद्यत् नहीं थे ; राम-राज्य प्रसंग के अन्तर्गत उन्होंने आदर्श वर्णाश्रम-व्यवस्था का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में किया है।

बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। पलहिं स्व धर्म निरत श्रुति नीती।।

(मानस ७।३०।१,२१)

तुलसीदास ने वर्णाश्रम को भी समाज के लिए श्रेष्ठ माना है। विदेहराज जनक, भरत, वशिष्ठ आदि गृहस्थाश्रम की व्यवस्था के उज्ज्वल रत्न हैं। इनका चरित्र "जोग-भोग मंह राखेउ भोई" ही तुलसीदास के समय तक वानप्रस्थ आश्रम का ह्रास हो गया था और संन्यास की ओर लोगों की रुचि बढ़ती जा रही थी। 'मानस' में संन्यासाश्रम की कटु आलोचना है। यही प्रमाण है कि संन्यास आश्रम में विकार समाविष्ट हो गया था--

"नारि मुई घर संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ भये सन्यासी।।"

(मानस ७।९९।६)

पारिवारिक संस्कृति--रामायण में भारतीय गार्हस्थ्य जीवन का विस्तृत तथा सुन्दर उल्लेख उपलब्ध होता है। आदि कवि ने आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श पत्नी तथा आदर्श सेवक के शब्द-तूलिका के माध्यम से जो चित्र अंकित किए हैं वे सब अनुपम तथा गृह-धर्म-पट पर चित्रित किए गए हैं। भगवान राम तथा महारानी सीता के विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम का दिग्दर्शन कराना तथा जीवन के मर्यादा पूर्ण मानदण्डों की स्थापना करना ही आदि कवि का लक्ष्य था। रामायण में भारतीय सभ्यता को बड़े व्यापक रूप से अंकित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है और यह भूलना न चाहिए कि भारतीय सभ्यता की प्रतिष्ठा है "गृहस्थाश्रम"। अतएव यह कहना असंगत न होगा कि गार्हस्थ्य धर्म के चित्रण के हेतु भी आदि-कवि ने इस महाकाव्य की रचना की। रामायण-काल में संयुक्त परिवार की प्रथा विद्यमान थी। परिवार का प्रमुख गुरुजन निष्ठावान्, धार्मिक तथा संयमशील प्राणी होता था और उसकी अर्धांगिनी गृहस्वामिनी कहलाया करती थी। परिवार के संचालन का दायित्व इन्हीं दोनों पर था। ज्येष्ठ पुत्र पिता का उत्तराधिकारी बनता था। परिवार में मर्यादा तथा अनुशासन प्रधान था। उच्छृंखलता के लिये परिवार में कोई स्थान नहीं था। परिवार का प्रत्येक प्राणी स्नेहशील, श्रद्धा भावना से युक्त, धार्मिक, त्यागवान तथा सेवाधर्म से युक्त होता था। महाराज दशरथ का राज परिवार रामायण में आदर्श परिवार के रूप में व्यक्त हुआ है। इस परिवार के प्रांगण में हमें आदर्श पिता, आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श भृत्य, आदर्श भ्राता के भी दर्शन हो जाते हैं। इस भूमिका में कहीं, स्वार्थपरता, चतुरता, हीनता तथा संकुचित भावनाओं से अभिशप्त कोई व्यक्ति नहीं दृष्टिगत होता। (एक कैकई अपवाद है) इस महाकाव्य में पारिवारिक जीवन के उदात्त चित्र सम्प्राप्त होते हैं।

गोस्वामी जी के सभ्य में भारतीय पारिवारिक जीवन वैषम्य, स्वार्थ-परता तथा संकीर्णता से अभिशप्त हो चुका था। कहाँ रामायण-काल का वह आदर्श, अनुपम, उदात्त, पारिवारिक जीवन, कहाँ मुगल-काल में भारतीय पारिवारिक जीवन का स्वरूप, जहाँ पुत्र पिता का वध (राज्य हस्तगत करने के लिए) करने में तत्पर था,जहां भाई की लाश पर पग रख कर भाई अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति में संलग्न था। जहां विद्रोह, विघटन, विच्छेद जीवन की अनिवार्य प्रवृत्तियाँ बन चुकी थीं वहां पारिवारिक जीवन कहाँ तक अछूता बना रहता। परन्तु गोस्वामी जी ने भगवान् के आदर्श परिवार की कल्पना उपस्थित करके उसके महत्व एवं आदर्श को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। वाल्मीकि और तुलसी में यहीं पर अन्तर उपलब्ध होता है। वाल्मीकि ने रामायण में सामाजिक पारिवारिक स्थिति का चित्रण किया है और तुलसी ने युग की उच्छृंखलताओं से पीड़ित होकर भगवान राम के परिवार का चित्रण किया है। गोस्वामी जी ने भाई-भाई, पति-पत्नी, पिता-पुत्री, माता-पुत्र, स्वामी-सेवक आदि का तथा पशु-पक्षियों के सम्बन्धों और उनके निर्वाह का जो स्वरूप दिखाया है उसमें सम्मिलित परिवार का समर्थन मिलता है।

पारिवारिक-जीवन का चित्रण करते हुये गोस्वामी जी ने दो प्रमुख वर्गों का स्पष्ट निदर्शन किया है—भौतिकवादी तथा आध्यात्मवादी। भौतिकवादी में अशुभ, अकल्याणकारी प्रवृत्तियाँ विकास ग्रहण करती हैं और आध्यात्मवाद में शुभ प्रवृत्तियाँ। रावण प्रथम कोटि के परिवार में आता है और राम का परिवार द्वितीय कोटि में।

संस्कार—भारतीय-परिवारिक जीवन में संस्कारों का विशेष महत्व है। संस्कार भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। संस्कारों का महत्व शरीर के लिए तो होता ही है, साथ ही उसका महत्व आध्यात्म विकासार्थ भी होता है। गर्भाधान् सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, समावर्तन, विवाह, द्विरागमन तथा अन्त्येष्टि आदि संस्कार भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन तथा संस्कृति के आधार हैं। इन सबका सम्बन्ध धर्म से है। रामायण में अनेक संस्कारों का उल्लेख कथा-प्रसंग में हुआ है, जिनमें जात-कर्म का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया गया है—

प्रदेशयांश्च ददौ राजा सूतमागधबन्दिनाम्।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः॥
अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत्।
वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा।
ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजानपदानपि।
अददद् ब्राह्मणानां च रत्नौघममलं बहु।
तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्मायकारत॥
(वाल्मीकि रामायण १।१८।२०, २३)

गोस्वामी जी ने नंदी मुख श्राद्ध (नदीमुख सराध करि), जातकर्म (जातकरम सब कीन्ह), दान (हाटक धेनु बसन मनि नृप विप्रन्ह कहं दीन्ह, मा० १।१९३) नाम करता (धरे नाम गुर हृदय विचारी; मा० १।१९७।१), चुड़ाकर्म (चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन पुनि दछिना बहु पाई; मा० १।२०२।२), उपनयन (भये कुमार जबहिं सब भ्राता, दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता; मानस; १।२०३।३,) आदि संस्कारों का उल्लेख किया है।

पारिवारिक जीवन को स्थिरता प्रदान करने वाला प्रमुख तत्व है विवाह। इस संस्कार का उल्लेख दोनों महाकवियों ने किया है। रामायण में विवाह से पूर्व वरवधू का साक्षात्कार नहीं होता। यह बात सीता, शांता एवं मन्दोदरी आदि के प्रति सत्य है। इनका विवाह पिता द्वारा आयोजित है तथा विवाह के अनन्तर पारिवारिक जीवन की आधार-शिला संयम् तथा त्याग बनता है। पत्नी तथा पति क्रमशः पातिव्रत एवं पत्नी-व्रत धर्म में अनुरक्त होते हैं। मानस में रामायण से भिन्न शैली में राम तथा सीता का विवाह सम्पन्न होता है। रामायण में धनुर्भंग के अनन्तर राम लक्ष्मणादि का विवाह उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में सम्पन्न हुआ। विवाह संस्कार के वर्णन में भी दोनों ग्रन्थों में भेद है। रामायण में राजा जनक की प्रार्थना पर वशिष्ठ ने वेदी सज्जा की अग्नि स्थापना की तथा अग्नि को साक्षी बना कर पाणिग्रहण संपन्न कराया परन्तु 'मानस' में पुष्पवाटिका में साक्षात्कार की योजना की गई है। तदन्तर धनुर्भंग होता है और "टूटत ही धनु भयउ विवाहू"। तुलसी ने लौकिक विधियों (परछन मा० १।३१७), निछावरि (मा० १।३१९।४), समधी का समधी से मिलना (मा० १। ३१९।१,५), बरात का आगमन (मा० १।२९७,४ से ३००।२) का भी वर्णन किया है जो बाल्मीकि रामायण में नहीं वर्णित है। इसके अतिरिक्त 'मानस' में गणपति पूजन (१।३२२), पद प्रक्षालन (१।३२३), भाँवरी घूमना (१।३२४) सिंदूरदान (१।३२४।८) दहेज-दान (१।३२५), लहकौरि (१।३२६), जेवनार (१।३२७) वर्णित हैं।

तुलसी द्वारा वर्णित भगवान राम तथा सीता का पाणिग्रहण शास्त्र सम्मत, लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मत, लौकिक रीतियों से समर्थित है और वाल्मीकि का वर्णन वैदिक परम्परा से साम्य रखता है।

अब देखिये, उभय ग्रन्थों में वर्णित अंत्येष्टि क्रिया-संस्कार का वर्णन। मानव जीवन का यह उपसंहार रूपी संस्कार है। स्थूल शरीर के निःशेष हो जाने पर सूक्ष्म शरीर (जीव) को प्रेतावस्था से उन्मुक्ति दिलाने के हेतु या क्रिया शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित है। इस संस्कार का विस्तृत, उल्लेख दोनों ग्रन्थों में है। मानस की अपेक्षा वाल्मीकि रामायण में इसका विस्तृत वर्णन है। दशरथ-मरण, जटायु-शरीर त्याग, वालि-स्वर्गारोहरण तथा रावण-मृत्यु के प्रसंग में इसका उल्लेख मिलता है। रामायण में यह संस्कार अत्यन्त पवित्र माना गया है, इसीलिए दशरथ जी ने कहा है —

प्रियं चेद्भरतस्यैतद्रामप्रव्राजनं भवेत्।
मा स्म मे भरतः कार्षीत् प्रेतकृत्यं गतायुषः॥
(वा० रा० २।१२।९२)

शोक एवं क्षोभ से पीड़ित महाराज दशरथ ने इस पवित्र संस्कार को कैकेई या भरत द्वारा न किए जाने का भी आदेश दिया और राम से सम्पादित कराने की अभिलाषा व्यक्त की —

यस्ते मंत्रकृतः पाणिरग्नौ पापे मया धृतः।
संत्यजामि स्वतं चैव तव पुत्रं सह त्वया।
रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलं क्रियाम्॥
सपुत्रया त्वया नैव कर्त्तव्या सलिल क्रिया।
व्याहन्तास्यशुभाचारे यदि रामाभिषेचनम्॥
(वा० रा० २।१४।१४, १६)

परन्तु महाराज दशरथ के स्थूल शरीर का दाह संस्कार विधिवत् भरत ने ही किया। उनके शरीर को तेल की नौका से बाहर निकाल कर, सुसज्जित पालकी में रखा गया, चंदन तथा अन्य सुवासित पदार्थों से आच्छादित अयोध्या-नृप का पार्थिव मंत्र-पाठ के साथ अग्नि-दाह को प्राप्त हुआ। सामगान किया गया, सब लोगों ने चिता की प्रदक्षिणा की, जल-तर्पण हुआ। ग्यारहवें दिन शुद्धि-संस्कार, १२वें दिवस श्राद्ध तथा १३वें दिन प्रेत-संस्कार सम्पन्न हुआ। 'मानस' में यही अन्त्येष्ठि-क्रिया निम्नलिखित शब्दों में वर्णित है —

नृप तन वेद विहित अन्हवावा। परम विचित्र विमानु बनावा॥
गहि पद भरत मातु सब राखीं। रहीं रानि दरसन अभिलाषी॥
चन्दन अगर परम बहु आए। अमित अनेक सुगन्ध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥
एहि विधि दाहक्रिया सब कीन्हीं। विधिवत न्हाइ तिलांजलि दीन्हीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोधि सुमृति सब वेद पुराना । दीन्ह भरत दस गात विधाना ।।
जह जस मुनिवर आयसु दीन्हा । तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा ।।
भए विसुद्ध दिए सब दाना । धेनु बाजि गज वाहन नाना ।।
(मानस, २।१६९।१, २।१७० तक)

अन्त्येष्ठि-क्रिया का महत्व इसी बात से प्रतिभासित होता है कि वनवास जीवन का पालन करते हुए भगवान राम ने, महारानी सीता तथा लक्ष्मण सहित मंदाकिनी तट पर पहुंच कर इंगुदी तथा बेल के पिंड सहित, जल-अर्पण कर अपने हृदय की भावना प्रकट की।

गृद्धराज जटायु को भी भगवान राम ने पितृ समान माना। अतः उसके शरीर का परित्याग होने पर राम ने अन्त्येष्ठि विधिवत् की —

राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम महाशयाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः।।
(वा० रा० ३।६८।२६)

'मानस' में इस क्रिया का उल्लेख संक्षेप में हुआ है, "तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम" (मानस ३।३२)।

अन्त्येष्टि क्रिया का वर्णन केवल मनुष्य तथा पक्षियों (जटायु) तक ही नहीं सीमित है वरन् वानर जाति की भी अन्त्येष्टि क्रिया का वर्णन उभय ग्रन्थों में है। बालि की मृत्यु के अनन्तर सुग्रीव ने उसके अंतिम संस्कार किये। वाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन बड़े विस्तार में है। बालि को पालकी में रख कर वस्त्राभरण से अलंकृत किया गया। वानर रत्नादि लुटाते हुए पालकी के पीछे चलने लगे। स्त्रियां भी पालकी के पीछे चलीं। वालुका तट पर पहुँच कर उत्तम चिता प्रस्तुत की गई और अग्नि प्रदीप्त करके अपसव्य प्रदक्षिणा हुई (वा० रामायण ४।२५।३९,३८) 'मानस' में इस संस्कार का अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख है —

तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा।
मृतक कर्म विधिवत् सब कीन्हा।।
(मानस ४।१०।८)

इसी प्रकार राक्षस रावण की अन्त्येष्टि क्रिया भी शास्त्रोक्त शैली से सम्पादित हुई। भगवान् राम ने एतदर्थ विभीषण को आदेश दिया—

क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।
त्वत्सकाशान्महाबाहो संस्कारं विधिपूर्वकम्।।
(वा० रा० ६।१११।१००)

आज्ञा पाकर विभीषण ने अग्नि होम प्रज्ज्वलित किया। माल्यवान् के साथ शिविका में रावण का शरीर रेशमी वस्त्रों से आवृत होकर रखा गया। पीछे-पीछे ब्राह्मण, वाद्ययंत्र विशारद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा चारण चले। पताका तथा पुष्पों से शिविका अलंकृत था। स्त्रियां शिविका के पीछे थीं। चन्दन की चिता प्रस्तुत हुई। उस पर रावण का शिर रख कर दही एवं घृत भर कर सुवा से कंधे पर छोड़ा और पैरों पर शकर तथा जंघाओं पर उलूखल छोड़ा गया। गंधमाला, आभूषण तथा उत्तम वस्त्रों की वर्षा हुई (वा० रामायण ६।१११।१०४।१२२)

'मानस' में रावण के इस संस्कार का संक्षिप्त वर्णन मात्र है।

कृपा दृष्टि प्रभु ताहि विसोका । करहु क्रिया परिहरि सब सोका।।
कीन्ह क्रिया प्रभु आयसु मानी । विधिवत् देश काल जिय जानी।।
मन्दोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहिं।
भवन गई रघुपति गुन गन बरनत मन मांहिं।।
(मानस ६।१०४, ६, ७)

यज्ञ--भारतीय संस्कृति एवं पारिवारिक जीवन में 'यज्ञों' का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। संस्कारों के उल्लेख के साथ ही साथ पंच महायज्ञ, सप्त पाकयज्ञ, सप्त दविर्यज्ञ एवं सप्त सोमयज्ञों का भी विवरण भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। पंच महायज्ञों के अन्तर्गत ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ तथा मनुष्ययज्ञ का उल्लेख है। गृहस्थाश्रम में पांच प्रकार के पाप घटित होते हैं, उनके प्रायश्चित रूप में धर्मशास्त्र विशारदों ने पंचमहायज्ञ का विधान बताया है। सर्व प्रथम ब्रह्मयज्ञ लीजिए। इस संसार का संचालन दैवी सहयोग से होता है। दैवी जगत के संचालक ऋषि माने गए हैं। उनकी तुष्टि के हेतु यज्ञ करना आवश्यक है। यही 'ब्रह्म यज्ञ' है। वंश वृद्धि के हेतु पितृ-यज्ञ, जड़ एवं अर्थ चेतन के हेतु भूत-यज्ञ तथा चेतन मानव के हेतु नृयज्ञ का विधान है।

बाल्मीकि ने अयोध्या नगरी का वर्णन करते हुए 'यज्ञ-गृहों' का उल्लेख किया है। रामायण में राम का जन्म ही यज्ञ का परिणाम है। (वा० रा० १।१८)। कौशल्या का हवन करना (वा० रा० १।२०।१९) राम का वन में हवन करना (वा० रा०२।५६।३२) तथा ऋषियों द्वारा हवन सम्पन्न (वा० रा०३।१।५) का वर्णन रामायण में मिलता है। आर्यों के समान ही राक्षस भी 'यज्ञ' करते थे। (वा० रा०६।८४।१४)

मानस में रामायण की भांति 'ब्रह्म यज्ञ' का वर्णन नहीं है। मानस में विश्वामित्र का आश्रम यज्ञों का केन्द्रस्थल था—'विश्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहि विपिन सुभ आश्रम जानी। जेह जग जग्य जोग मुनि करहीं, (मा० १।२०५।२३)। रामायण में 'पितृयज्ञ 'का उल्लेख अन्त्येष्टि संस्कार के अन्तर्गत हो चुका है। यह अनिवार्य यज्ञ था (वा० रा०२।१०८।१२) आर्य, अनार्य, वानर, राक्षस सभी में यह यज्ञ प्रचलित था। पितृयज्ञ का मुख्याधार तर्पण तथा श्राद्ध है। महाराज भरत ने भी इसका महत्व स्वीकार किया है—

प्रियेण किल दतं हि पितु लोकेषु राघव।
अक्षये भवतीत्याहु।। (वा० रा०२।१०३।८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण में गया में श्राद्ध करने का विधान भी वर्णित है। (वा० रा०२।१०८।१३)। मानस में भी 'पितृ यज्ञ' का संक्षेप में वर्णन है "करि पितु क्रिया वेद जस बरनी। ते पुनीत पातक तम तरनी" (मा० २।२४७।१) 'रामायण' में देवयज्ञ का वर्णन भी है। यज्ञों में देवताओं एवं ऋषियों को 'हवि' अर्पित होती थी (वा० रा०१।१३।५।६) रामायण एवं मानस दोनों ही में इस यज्ञ का वर्णन है। महारानी कौशल्या जनार्दन पुरुष की अर्चना करती थीं। (वा० रा० २।४।३३)। राम, सीता द्वारा विष्णु उपासना का वर्णन भी रामायण में उपलब्ध होता है। (वा० रा०२।६।४)। हनुमान भी सीतान्वेषण के पूर्व देव नमाकार में प्रवृत्त चित्रित हुए हैं (वा० रा० ५।१३।५८)। 'मानस' के रचनाकाल तक यह यज्ञ लुप्त हो चुका था। परन्तु गोस्वामी जी ने 'देव यज्ञ' की प्रतिष्ठा की है। कौशल्या कुल देवता की अर्चना नित्य करती थीं (मानस १।२००।२,३)। इसी प्रकार जानकी गणेश-गौरी की आराधना में अनुरक्त थीं (मानस १।२३४।३)। भगवान राम ने स्वयं पार्थिव पूजन किया था (मा०२।१०२।१)। रामायण में 'भूत यज्ञ' का भी उल्लेख है। मानवेतर प्राणियों का वर्ग 'भूत-यज्ञ' का अधिकारी था। वह पूजा, तुलसी पूजा इसी यज्ञ में परिगणित होते हैं। रामायण में वट-पूजा का वर्णन है--

न्यग्रोधं समुपागम्य वैदेही चाभ्यवन्दत।
नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिर्व्रतम्॥
(वा० रा० २।५५।२४)

'मानस' में भी इस यज्ञ की ओर स्थान-स्थान पर संकेत किये गए हैं (मा० ७।२८।६) परन्तु उसका उतना क्रमबद्ध वर्णन नहीं है जैसा रामायण में हुआ है। मनुष्य-यज्ञ का महत्व भारतीय-संस्कृति में चिरकाल से रहा है। भोजन से पूर्व किसी वर्णन या आश्रम के मानव को देवतावत् मान कर उसका सत्कार करना मनुष्य यज्ञ है। इस यज्ञ के अन्तर्गत सर्वात्मवाद की भावना परिलक्षित होती है। राजा दशरथ के प्रासाद में इस प्रकार के यज्ञों का विधान हुआ ही करता था। रामायण से एक उद्धहरण यहां दिया जाता है, जिसमें नृयज्ञ वर्णन है--

उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन्।
यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके॥
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै।
प्रनष्टस्य यथालाभो यथा हर्षो महोदयः॥
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने॥
(वा० रा० १।१८।४९, ५१)

'रामायण काल' में मुनियों द्वारा नृयज्ञ सम्पादित होता था। भरद्वाज का आतिथ्य सत्कार प्रसिद्ध है (वा० रा०२।९१।१२,८४)। निषाद भी इस यज्ञ को सम्पन्न करते थे। (वा० रा०२। ८९।७)। रावण राक्षस होते हुए भी इस यज्ञ में अभिरुचि रखता था (वा० रा०३ ४६।३२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस' में अयोध्या के नृप (मा० १।२०६।२) तथा जनक का (मा०१।२१६।६,८) इस यज्ञ में अनुरक्त रहना वर्णित है। इसी प्रकार निषादराज, राम-लक्ष्मण तथा सीता का स्वागत करके यह यज्ञ सम्पन्न करते हैं (मानस २।८७।१,३) भारद्वाज मुनि ने राम, लक्ष्मण तथा सीता का आतिथ्य करके इस यज्ञ को सम्पन्न किया था (मा०२।११४)

रामायण में अन्य यज्ञों का भी वर्णन है। उदाहरण पाक-यज्ञ का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में सम्पन्न हुआ है—

नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवताः।
कृताग्रयणकाः काले सन्तो विगतकल्मषाः॥
(वा० रा० ३।१६।६)

भगवान राम ने वनवासी जीवन में भी पाक-यज्ञ को दैनिकचर्या का अंग बनाया था। चित्रकूट में पर्णशाला के विनिर्मित हो जाने पर भगवान ने लक्ष्मण से कहा "कर्तव्य वस्तुशमनं सौमित्रे चिर जीविभिः (वा० रा०२।५६।२३)। रामायण में उल्लेख है कि दण्डक वन में रहने वाले ऋषि वर्ग अग्निहोम तथा पर्वणियज्ञ किया करते थे—

होमकाले तु संप्राप्ते पर्वकालेषु चानघ।
घर्षयन्तिस्म दुर्धर्षा राक्षसाः पिशिताशनाः॥
(वा० रा० ३।१०।११)

रामायण में अश्वमेध यज्ञ का भी वर्णन है (वा० रा० ७।९२।१,१९)। इसी प्रकार राजसूय यज्ञ भी उस समय प्रचलित था (वा० रा० ७।८३।४)। मानस की रचना-काल में देश की परिस्थितियां बहुत कुछ विकृत हो चुकी थीं। मुगलों की नीति के फलतः सामाजिक तथा धार्मिक जीवन अत्यन्त विषम हो चला था। मंदिरों के ध्वंस करने के साथ जज़िया जैसे करों द्वारा भी हिन्दुओं को उत्पीड़ित करने की हर प्रकार से चेष्टा हो रही थी। वाल्मीकि का युग धार्मिकता तथा यज्ञों का युग था। परन्तु तुलसी के समय में भारतवर्ष की भूमि धार्मिक साधना का स्थल न रहकर स्वार्थसाधना, महत्वाकांक्षा साधना तथा अनाचार साधना का केन्द्र-विन्दु बन गई थी। अतः तुलसी ने अपने महान् ग्रन्थ में अनेक यज्ञों का वर्णन नहीं किया है। इसका कारण भी तुलसी से ही सुनिए—

त्रेता विविध जग्य नर करही। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरही॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलियुग केवल हरि गुन माना। गावत नर पावहिं गुन गाना॥
कलिजुग जोग न अन्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
(मा० ७।१०२, २, ५)

'मानस' में केवल पुत्रेष्टि (मा० १।८८८।५) तथा अश्वमेध यज्ञों (मा० ७।२३।१) का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित कलाएँ––ललित कलाएं भारतीय संस्कृति की प्रधान विशेषता है। रामायण तथा मानस में उनका व्यापक चित्रण है। ललित-कला के अन्तर्गत वास्तु कला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कलादि की गणना होती है। सर्वप्रथम वास्तु-कला लीजिए। रामायण-काल यज्ञ-यागों का काल था। अतः यज्ञ-मंडपों का निरन्तर निर्माण होता रहता था। रामायण में इन यज्ञ मंडपों का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है। इनके निर्माण के लिए विशेष शिल्पी नियुक्त होते थे––

तावन्तो बिल्वसहिताः पर्णिनश्च तथा परे।
श्लेष्मातकमयो दिष्टो देवदारुभयस्त्था।।
द्वावेव तत्र विहितो बाहु व्यस्तपरिग्रहो।
कारिताः सर्व एवैते शास्त्रज्ञैर्यज्ञकोविदैः।
शोभार्थं तस्य यज्ञस्य कांचनालंकृता भवन्।।
(वा० रा० १।१४।२२, २८)

जिस प्रकार यज्ञशाला के निर्माण का विस्तृत वर्णन रामायण में मिलता है उसी प्रकार भवन निर्माण का भी वर्णन मिलता है। अयोध्या के भवनों, सार्वजनिक स्थानों तथा उपवनों की शोभा तथा सुषमा शिल्पकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आज टाउनप्लानिंग हमारे लिए नई व्यवस्था प्रतीत होती है पर रामायण-युग में नगर-निर्माण-कला का जो रूप मिलता है वह अधिक उच्च तथा उपयोगी है––

आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा।।
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्त पुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः।।
(वा० रा० १।५।७, ८)

रामायण में राजप्रासाद भव्य, वृहदाकार तथा गगनस्पर्शी अंकित किए गए हैं। उनमें अनेक मंजिलें हुआ करती थीं (वा०रा०१।२५।३०)। उस युग में राज-प्रासाद वृहदाकार एवं परिधि में सुविशाल हुआ करते थे (वा०रा०२।५०)। किष्किंधा के वानरों के गृह भी नाना-रत्नों से शोभित रहते थे––

हर्म्यप्रासादसंबधां नानारत्नोपशोभिताम्।
एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम्।।
ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः।
पाण्डुराभ्रप्रकाशानि गन्धमाल्ययुतानि च।।
पाण्डुरेण तु शैलेन परिक्षिप्तं दुरासदम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम् ॥
शुक्लैः प्रासादशिखरैः कैलासशिखरोपमैः ॥
(वा० रा० ४।३३।१२–१५)

राक्षस रावण का गृह 'देवगृहोपम्' था (वा०रा०३।५५।६,-१२)। इसमें अनेक अटटालिकाएँ, अगणित कक्ष, चाँदी के स्तम्भ, स्वर्ण का सोपान मार्ग, और हाथी दांत के गवाक्ष थे।

रामायण तथा मानस में विविध कार्यों तथा उपयोगों के हेतु विनिर्मित प्रकोष्ठों का भी वर्णन है। शयनागार, कोप भवन, क्रीडागृह, (दिवस काल में) विनोद गृह, पान-भूमि, लता-गृह का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में है। इन दोनों ग्रन्थों में राज-मार्ग तथा जनपथों का भी वर्णन है। आदि कवि ने ग्रामीण शिल्प-कला का भी उल्लेख किया है। पंचवटी सुरम्यता तथा सुरक्षा की दृष्टि से आकर्षक स्थान था (वा०रा०२।८०)। मानस में भवनों तथा मंदिरों का जो वर्णन मिलता है, वह वास्तुकला का सुन्दर चित्र है (मानस ७।२६।३,४,७,८)।

रामायण तथा मानस में चित्रशाला का भी वर्णन है। रामायण में इस कला का विशेष वर्णन रावण के महलों के विवरण में उपलब्ध होता है (वा०रा०५।१२।१३)। तुलसी ने लिखा है––

चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।
रामचरित जे निरख मुनि ते मन लेंहि चोराइ॥
(मा० ७।२७)

संगीत कला का उल्लेख रामायण तथा 'मानस' दोनों में मिलता है। रामायण में दुन्दुभी, मृदंग, वीणा, पणवादी वाद्य यन्त्रों का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में हुआ है––

दुन्दुभीर्भिर्मृदंगैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा।
(वा० रा० १।५।१२)

लव कुश द्वारा रामायण गायन, (वा०रा०१।४।२६) तथा रामायण में गान की स्वर लहरी का उचित संकेत (वा०रा०२।९१।२७) इस बात का सूचक है कि उस समय गायन-शास्त्र का समुचित प्रचार था। गोस्वामी जी ने गायन वादन एवं नृत्य का संकेत अप्सराओं के प्रसंग में ही किया है (मा० ७।११।) मानस में केवल पणव, निसान तथा दुन्दुभी का उल्लेख है। (मा०१।२९८।२)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री अगरचंद नाहटा

प्राचीन जैन ग्रन्थों में कुल और गोत्र

भगवान महावीर की वाणी का संकलन जैनआगमों में हुआ है। प्राचीन भारतीय साहित्य, संस्कृति, समाज व्यवस्था आदि के संबंध में इन जैन आगमों का महत्व अत्यधिक है। पर अभी तक इनका अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत ही कम हुआ है। जैन धर्म जाति-व्यवस्था को महत्व नहीं देता। जातिवाद जिसमें जन्म के साथ उच्चता और नीचता का संबंध स्थापित है, जैन दर्शन विरोधी है। फिर भी लौकिक-दृष्टि से उच्चकुल और गोत्रों का उस समय जो महत्व था, उसकी झांकी हमें इन जैन-ग्रन्थों में मिल जाती है। प्रस्तुत लेख में जैन आगमादि प्राचीन ग्रन्थों में किनकिन कुलों एवं गोत्रों का उल्लेख पाया जाता है, इसका विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

भारत में किसी भी व्यक्ति की पहचान उसके जाति, कुल, गोत्र, एवं नाम के द्वारा ही की जाती रही है। "जाति" शब्द का उद्गम जन्म से है और उसका संबंध मातृ-पक्ष से माना गया है। जन्म से संबंधित होने के कारण यह शब्द अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होता है। जाति के बाद कुल और उसके बाद गोत्र, और तदनंतर संज्ञारूप नाम का स्थान है। जाति समुच्चयवादी है, कुल, गोत्र एवं नाम उसके क्रमशः छोटे-छोटे भेद-प्रभेद हैं। जाति का पश्चातवर्ती शब्द कुल है और उसको पितृ-पक्ष से संबंधित बतलाया गया है। मूलतः मानव सभी एक हैं इसलिए समुच्चय की दृष्टि से सभी मानवों की जाति एक मनुष्य जाति ही कही जा सकती है।

कुल की व्युत्पति जैनागमों के अनुसार सर्वप्रथम, प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से हुई। "वसुदेव हिंडी" नामक प्राचीन कथा-ग्रन्थ में भगवान ऋषभदेव का चरित्र वर्णित करते हुए कहा गया है कि जब ऋषभकुमार एक वर्ष के हुए तो इन्द्र वामन का रूप धारण कर ईक्षुओं का भार लेकर नाभि कुलकर के पास गये। ऋषभकुमार ने इक्षुदंड को लेने के लिए अपना दाहिना हाथ लम्बा किया। इससे इन्द्र ने उनकी इच्छा ईक्षु के खाने की जानकर उनके वंश का नाम इक्ष्वाकु रखा। फिर ऋषभदेव ने राज्य-प्राप्ति के समय अपने आत्मरक्षकों का कुल 'उग्र', भोग प्रेमी आदमियों का कुल 'भोग', समवयस्क मित्रों का कुल 'राजन्य' और आज्ञाकारी सेवकों का कुल 'नाग' इस प्रकार चार कुलों की स्थापना की।

आजकल जो पैशेवर सैकड़ों जातियाँ हैं उसके मूल शिल्पों की शिक्षा भी ऋषभदेव ने दी। इसका भी "वसुदेव हिंडी" में ज्ञातव्य विवरण मिलता है। जैनागमों के अनुसार भगवान ऋषभदेव के समय तक के लोक युगलिक (स्त्री-पुरुष युगल में) रूप में उत्पन्न होते थे। वयस्क होने पर उनमें पति-पत्नि संबंध हो जाता था। उनके आहार आदि की आवश्यकताएँ सभी वृक्षों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के द्वारा ही पूर्ण हो जाती थी। पर क्रमशः अवसर्पिणी (ह्रासमान) काल के प्रभाव से वृक्षों की फलदातृशक्ति कम होती गई व क्षुधा आदि आवश्यकताएँ बढ़ती गई। अतः अभाव, तृष्णा के कारण संघर्ष होने लगा। भगवान ऋषभदेव का समय युगसंक्रान्ति (परिवर्तन) काल था। अतः नई सभ्यता (वर्तमान सभ्यता की प्राचीन परम्परा) का उदय हुआ। धान्य एवं अग्नि की उत्पत्ति उसी समय हुई। बिना पका धान्य खाने से पचा नहीं; तब लोगों ने ऋषभदेव से इसका उपाय पूछा। परम कारुणिक भगवान ऋषभदेव ने पाक विधि बतलाई। मिट्टी के बर्तन बनाने बतलाये। वसुदेव हिंडी के अनुसार ऋषभदेव ने तत्कालीन आवश्यकता का अनुभव कर कई नये आविष्कार किये। आवश्यकता आविष्कार की जननी है।

उन्होंने (१) कुम्हार (२) लोहार (३) बुनकर (४) सूत्रकार (सुनार) और नापित कर्म, ये ५ मूल शिल्प सिखाये। इन पांच में से प्रत्येक के २०-२० भेद बतलाये हैं। इस तरह शिल्पों की संख्या १०० होती है। भगवान ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी को दाहिने व बायें हाथ से लिपि और गणित की शिक्षा दी। अपने पुत्र भरत (जिसके नाम से इस क्षेत्र का नाम भारत व भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ) को रूप कर्म और नाट्यशास्त्र का उपदेश दिया एवं बाहुबली को चित्रकर्म एवं स्त्री पुरुषों का लक्षणशास्त्र सिखाया। अन्य कुमारों को मणि, रत्न, मौक्तिक के आभूषणों की कला सिखायी, रोग चिकित्सा व वाणिज्य भी बतलाया। भगवान ऋषभदेव ने पुरुषों को ७२ व स्त्रियों को ६४ कलाएँ सिखाई, जिनके नामों की सूची जैनागमों में मिलती है। उपर्युक्त १०० शिल्पों के नामों की सूची किसी ग्रन्थ में हो, किन्तु मेरी जानकारी में नहीं है। इन शिल्पों-जीवन निर्वाह के धन्धों तथा कार्यों से भी जातियों की अनेकता प्रसिद्धि में आई।

जैनागम स्थानांग सूत्र के ६ ठें स्थान में ६ प्रकार के कुलों को आर्य बतलाया है, उग्र, भोग, राजन्य, ईक्ष्वाकु, ज्ञात और कौरव यथा—"छव्विहा कुलारिया मणुस्सा पन्नता तंजहा उग्गा, भोगा, राईन्ना, इक्खागा, नाया, कोरवा" (सूत्र ३५) इसी सूत्र में ६ प्रकार की जातियां आर्य बतलायी गयी हैं। अम्मबट्ठ, कलिंदा, विदेह, विदेहगाई, हरिता, चंचुणा ये ६ अन्य जातियां हैं।

"छव्विहा जाइ आरिया मणुस्सा पन्नत्ता तंजहा अबट्ठा, कलिंदा, विदेहा, वेदिहगाइया हरिया, चंचुणा भेद छव्विहा इंमजाइयो," (सूत्र ३४)

"वसुदेव हिंडी" में समुद्र विजय और उग्रसेन के पूर्वजों की परम्परा बतलाते हुए "हरिवंश" की उत्पति का प्रसंग संक्षेप में दिया है। उसके अनुसार हरिवंश क्षेत्र के युगलिक हरि और हरिणी को उनके शत्रु वीरक नामक देव ने चंपा नगरी के इक्ष्वाकुकुलीन राजा चंद्रकीर्ति के पुत्रहीन अवस्था में मर जाने से उनके उत्तराधिकारी रूप में स्थापित किया। उस हरि राजा की संतान "हरिवंशी" कहलाये।

"कल्पसूत्र" में २४ तीर्थंकरों के कुलों का उल्लेख करते हुए २१ तीर्थंकर ईक्ष्वाकु कुल में और काश्यप गोत्र में उत्पन्न हुए। दो तीर्थंकर हरिवंश कुल में और गौतम गोत्र में उत्पन्न हुए बतलाया गया है। तदनंतर भगवान महावीर स्वामी णाय (ज्ञात कुल) में उत्पन्न हुए। उनका गोत्र च्यवन (देवलोक की अपेक्षा) के समय उनके पिता ऋषभदत्त ब्राह्मण का कोडालश गोत्र और उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता देवानंद का जालंधर गोत्र बतलाया है। तदन्तर गर्भापहरण के प्रसंग में इन्द्र ने कहा है कि अरिहंत, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव, उग्र, भोग, राजन्य, इक्ष्वाकु, क्षत्रिय, हरिवंश इन कुलों में उत्पन्न हुआ करते हैं। क्योंकि वे विशुद्ध ज्ञाति, कुल, वंश माने गये हैं। वे अंतकुल, पंतकुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, भिक्षुकुल, कृपणकुल और ब्राह्मण कुलों में उत्पन्न नहीं होते।

उपर्युक्त २४ वें तीर्थंकरों के कुल के नामों के साथ उनके गोत्र का भी उल्लेख मिलता है। इससे उस समय "गोत्र" भी बहुत महत्व का स्थान पा गया था, स्पष्ट है। प्रभावशाली व्यक्ति विशेष की संतान का गोत्र उसके पूर्वज के नाम से प्रसिद्ध होता है। जैसे वशिष्ठ ऋषि की संतान को वाशिष्ठ गोत्र की संज्ञा। "स्थानांग" सूत्र के अनुसार मूल गोत्र सात थे। काश्यप, गोतम, वत्स, कुत्स, कौशिक, मंडप और वाशिष्ठ। फिर क्रमशः एक एक गोत्र में अनेक विशिष्ठ व्यक्ति हुए, जिनकी संतति का गोत्र उनके नाम से प्रसिद्ध हुआ। "स्थानांग" में उपर्युक्त सात गोत्रों में से प्रत्येक के सात सात भेद बतलाये हैं। मूल पाठ इस प्रकार है—

"सत्त मूल गोत्रा पन्नता। तं जहा :—कासवा, गोयमा, वत्था, कोत्था, ककेसिया, मंडवाअ, वशिष्ठा।"

१ "जे **कासवा** ते सत विहा पन्नता तं जहा—ते कासवा, ते संडेला, ते गोल्ला, ते वाला, ते मुंजतिणो, ते पव्वपेच्छतिणो, ते वरिसकण्हा"।

२ जे **गोयमा** ते सत विहा पन्नता तं जहाः—ते गोयमा, ते गग्गगा, ते भारद्दा, ते अंगिर, ते सकराम, ते भरूखरामा, ते उदगन्ताभा।

३ जे **वत्था** ते सत्तविहा पन्नता तं जहाः—ते वत्था, ते अग्गया, ते मितिया, ते सामिलिणी, ते सेलयया, ते अट्टिसेणा, ते बीयकण्हा।

४ जे **कुत्था** ते सतविहा पन्नता तं जहाः—ते कुत्था, ते मुग्गलायणा, ते पिगंलायणा, ते कोडीणा, ते मंडलीणो, ते हारिया, ते सोमिया।

५ जे **कोसिया** ते सत्तविहा पन्नता तं जहाः— ते कोसिया, के कच्चायणा, ते सालंकायणा, ते गोलि-कायणा, ते पख्खीकायणा, ते अग्गिच्चा, ते लोहिचा।

६ जे **मंडवाते** सत्तविहा पन्नता तं जहाः— ते मंडवा, ते अरिठ्ठा, ते समुत्ता, ते तेला, ते एल्ला-वच्चा, ते कंडिला, ते करूखायणा।

७ जे **वासिष्ठा** ते सत्तविहा पन्नता तं जहाः—ते वासिष्ठा, ते उज्जायणा, ते जारूकण्हा, ते वग्गावच्चा, ते कोडिन्ना, ते सण्णि, ते पारासरा।

अर्थात मूल गोत्र ७ हैं। काश्यप, गोतम, वत्स, कुत्स, कौशिक, मंडप, और वसिष्ठ।

काश्यप के ७ भेद हैं। काश्यप, सांडिल्य, गोल, वाल, मुंज, पर्वत, वरिस, कृष्ण।

गोतम गोत्र के ७ भेद हैं। गोतम, गर्ग, भारद्वाज, अंगिरस, सर्कराम, भाष्कराम उद्न्नाभा।

वत्स गोत्र के ७ भेद हैं—कुत्स, मौद्गलायन, पिंतगण, कोडिन्न, मलिक, हरित, सोमक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशिक के ७ भेद हैं—कौशिक, कात्यायन, सालंकायन, गोलिंकायन, परिकंकायन, अगतया, लोहित्य।

मंडप गोत्र के ७ भेद हैं। मंडप, आरिष्ठ, समंत, मेला, ऐलापत्य, कंतेल, खामण।

वाशिष्ठ गोत्र के ७ भेद हैं—वाशिष्ठ, उजायन, जारूकृष्ण, वयाघ्रापत्य, कौडिन्य, सत्ति पारासर।

इनमें से कुछ तो बहुत प्रसिद्ध रहे हैं और उन गोत्र वाले व्यक्तियों की उल्लेख 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली और जंबूद्वीप पन्नति में मिल जाता है। पर कुछ गोत्र वाले व्यक्तियों का उल्लेख नहीं मिलता। अतः वे कम ही प्रसिद्ध रहे मालूम होते हैं। जैनेत्तर ग्रन्थों में भी इन गोत्रों और उनसे निसृत शाखा और प्रवरों संबंधी साहित्य बहुत विशाल है। महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी गोत्रों के नाम मिलते हैं। अतः ऊपर दी हुई सूची में जो नाम अस्पष्ट हैं, उनके शुद्ध नामों की प्राप्ति जैनेत्तर साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से हो सकती है।

कल्पसूत्र में २४ तीर्थंकरों के कुलों के साथ जो गोत्रों के नाम दिये हैं उनसे एक महत्व-पूर्ण वैदिक प्रवाद का समर्थन होता है। तीर्थंकर सभी क्षत्रियवंश में हुये पर उनके गोत्र ब्राह्मण ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हुए मिलते हैं अर्थात् जो ब्राह्मण गुरू जिस के गोत्र थे, वे ही गोत्र उनके यजमान क्षत्रियों के भी थे। इससे राजाओं के मान्य गुरुओं ऋषियों के नामों से ही इनका गोत्र भी प्रसिद्ध हुआ, ज्ञात होता है।

जैसा कि पहले कहा गया है भारतवर्ष में प्राचीन काल से गोत्रों का बड़ा भारी महत्व चला आता है। जैनागमों से इसकी भली भांति पुष्टि हो जाती है। "जंबू द्वीप पन्नती" सूत्र से इन गोत्रों के महत्व का एक महत्वपूर्ण निर्देश मिल जाता है। उसमें २८ नक्षत्रों के भी भिन्न-भिन्न गोत्रों का उल्लेख है, जैसे—

नक्षत्र नाम	गोत्र नाम	नक्षत्र नाम	गोत्र नाम
१. अभिजित	मोद्गल्यायन	१२. मृगसिर	भारद्वाज
२. श्रवण	सांख्यायन	१३. आर्द्रा	लौहित्यायन
३. धनिष्ठा	अग्रभाव	१४. पुनर्वसु	वशिष्ठ
४. शतभिषक्	कण्णिलायन	१५. पुष्यका	अवमज्जायन
५. पूर्वा भाद्रपद	जातु करण	१६. आश्लेषा	मांडव्यायन
६. उत्तरा भाद्रपद	धनंजय	१७. मघा	पिंगायन
७. रेवती	पुष्पायन	१८. पूर्वा फाल्गुनी	गोवल्लायन
८. अश्विनी	आश्वायन	१९. उत्तरा फाल्गुनी	काश्यप
९. भरणी	भार्गवेश	२०. हस्त	कौशिक
१०. कृतिका	अग्निवेश	२१. चित्रा	दाभयिन
११. रोहिणी	गोतम	२२. स्वाति	चाभरद्वायन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्र नाम	गोत्र नाम	नक्षत्र नाम	गोत्र नाम
२३. बिशाखा	शृंगायन	२६. मूला	कात्यायन
२४. अनुराधा	गोवल्यायन	२७. पूर्वाषाढ़ा	बाभ्रव्यायन
२५. ज्येष्ठा	चिकित्सायन	२८. उत्तराषाढ़ा	व्याघ्रापत्य

(नक्षत्राधिकार)

उपर्युक्त सूची में कुछ गोत्रों के नाम तो वे ही हैं जो "स्थानांगसूत्र" के सातवें अध्ययन में आये हैं और कुछ नाम ऐसे भी हैं जो वहां दी गई ४९ गोत्रों की नामावली में नहीं आये हैं। इससे गोत्रों की विपुलता का पता चलता है।

गोत्रों का महत्व उस काल में अधिक था। यह बात जैनसूत्रों के अन्य उल्लेखों से भी अत्यंत स्पष्ट है। "आवश्यक निर्युक्ति" की ३८१ गाथा में लिखा है कि चौबीस तीर्थंकरों में से मुनिसुव्रत और अरिष्ट नेमि गोतम गोत्र के थे। वासुदेव और बलदेवों में ८ गोतम गोत्र के थे। केवल राम और लक्ष्मण काश्यप गोत्र के थे। अर्थात् महापुरुषों के गोत्रों का भी उल्लेख करना सूत्रकार ने आवश्यक समझा है।

वीर निर्वाण के ९८० वर्ष में जैनागम लिपिबद्ध हुए हैं। उस समय तक के युगप्रधान आचार्यों एवं स्थविरों के नामों के साथ गोत्रों का उल्लेख किया जाना तत्कालीन गोत्रों के महत्व को और भी स्पष्ट करता है। ६ठी शताब्दी तक तो इन प्राचीन गोत्रों का ही व्यवहार होता रहा है। "कल्पसूत्र" की स्थविरावली से यह भली भांति सिद्ध हो जाता है। स्थविरावली में पाये जाने वाले गोत्रों के नाम उन गोत्रों में होने वाले आचार्यों के विवरण नीचे दिये जा रहे हैं:—

गोत्रों के नाम	आचार्यों के नाम
१. गौतम	इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, अकंप, स्थूलिभद्र, आर्यदिन्न, वज्र, फालगुमित्र, नाग, कालाक, संपिल, भद्रवृद्ध, संगवाली आदि।
२. भारद्वाज	व्यक्त और भद्रयश।
३. अग्निवेश्यायन	सौधर्म।
४. वशिष्ठ	मंडित, आर्यसुहस्ति, धनगिरि, जेहिल, गोदास।
५. काश्यप	मौर्यपुत्र, जंबू, सोमदत्त, रोहण ऋषिगुप्त, विद्याधर गोपाल, आर्यभद्र, आर्यनक्षत्र, रक्ष, हस्ति, सिंह, धर्म, देवरधी, नंदनी पिता।
६. हरितायन	अचलभ्राता कौडियन, मैतार्य और प्रभास।
७. कात्यायन	प्रभव।
८. वत्स	शय्यंभव, आर्यरथ।
९. तुंगियायन	यशोभद्र।
१०. माढ़र	संभूति विजय, आर्य शांति, विष्ण, देशीगण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोत्रों के नाम	आचार्यों के नाम
११. प्राचीन	भद्रबाहु।
१२. ऐलापत्य	आर्य महागिरि।
१३. व्याघ्रापत्य	सुस्थित, सुप्रतिबद्ध।
१४. कुल्स	शिवभूति।
१५. कौशिक	आर्य, इन्द्र-दिन्न, सिंहगिरि, रोहगुप्त।
१६. कौडाल	कार्मार्ध।
१७. उत्कौशिक	वज्रसेन।
१८. सुव्रत या श्रावक	आर्य-धर्म।
१९. हारित	श्री गुप्त।
२०. स्वाति•	सायिसामंज्रम् (नंदी सूत्र)
२१. सांडिल्य	आर्य जीतधर (नन्दि-स्थविरावली गाथा २६)

अंगविद्या आदि ग्रन्थों में भी गोत्रों के नाम आये हैं। उन पर फिर कभी विशेष प्रकाश डाला जायगा। उपर्युक्त उल्लेख सभी श्वेताम्बर प्राचीन ग्रन्थों के हैं जो ६ठी शती तक तैयार हो चुके थे। दिगम्बर प्राचीन ग्रन्थों में भी प्राचीन भारतीय जातियां, वंश, जात, गोत्रादि संबंधी जो उल्लेख प्राप्त हो चुके हों उन्हें प्रकाश में रखने का दिगम्बर विद्वानों से अनुरोध किया जाता है।

इन उल्लेखों से एक तथ्य अत्यन्त स्पष्ट है कि ६ठी शती तक आजकल की जैन जाति, वंश, गोत्रों के कोई भी नाम प्रसिद्धि में नहीं आये थे। अतः वर्तमान जैन जातियों की उत्पत्ति पीछे हुई सिद्ध होती है; इस संबंध में विशेष प्रकाश किसी स्वतन्त्र लेख द्वारा डाला जायेगा।

जैनेतर ग्रन्थों में गोत्र, प्रवर, निर्णय, जातिभास्कर आदि अनेक ग्रन्थ हैं जिनसे भारत के प्राचीन कुलों और गोत्रों के सम्बन्ध में तुलनात्मक अध्ययन करने में उपरोक्त जैनग्रंथों की सामग्री उपयोगी सिद्ध होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर श्याम परमार

घुमन्तु बनजारों के लोकगीत

बनजारा भारतवर्ष की एक ऐसी घुमन्तु जाति है जिसका सम्बन्ध मध्यकालीन इतिहास के सूत्रों से बँधा है। अपनी अनोखी वेशभूषा और रंगरूप के कारण आज भी बनजारे अपने अस्तित्व को अनेक जातियों से पृथक् घोषित करते हैं। भारतीय लोकगीत और लोक-कथाओं में बनजारा अपने बैलों पर दूर-दूर तक सामान लादकर ले जाने वाला पात्र एवं चतुर व्यक्तित्व धारण किये हुए हैं। बुन्देलखण्ड की एक लोक कहानी में बुन्देला ठाकुर की दी हुई भेंट एक बनजारा सिंहल के राजा और काबुल के बादशाह तक ले जाता है।[1] यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि बनजारों के दल व्यापारार्थ इतनी लम्बी लम्बी उड़ान भरते थे। "बनजारा" शब्द के साथ ही व्यापार का अर्थ सन्निद्ध है। "बणज" या बनज का तात्पर्य वाणिज्य ही है। एक भोजपुरी लोकगीत में "बनिजरिया" शब्द तो वाणिज्य के अर्थ में ही प्रयुक्त होता आया है।

"पियवा जे चलेला उतर,
बनिजरिया कि केई रे छइहें ना।
मोरा उजड़ल बँगलवा
कि केई रे छइहें ना।"

"पति उत्तर देश को वाणिज्य कर्म अर्थात् व्यापार करने जा रहा है, मेरे उजड़े हुए बंगले की कौन मरम्मत करेगा?"[2]

एक दूसरे गीत में बनजारा के साथ किसी वियोगिनी का पति बारह वर्ष के पश्चात् लौटा है और वह उसी के ग्राम में एक वटवृक्ष के नीचे आकर ठहरा है —

बारह बरीसवा पर लवटल बनीजरिवा,
राम की बारावाँ[3] तरावा[4] ना

---

१. शिवसहाय चतुर्वेदी लिखित "गौने की विदा" संग्रह की "बुन्देला ठाकुर" शीर्षक कहानी।

२. भोजपुरी ग्रामगीत, पृ० १६६–२७९।

३. वटवृक्ष।

४. नीचे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालवी गीतों में बनजारा अपनी "मोट" के लिए प्रसिद्ध है। मोट बड़े प्रमाण में लाए हुए माल को कहते हैं। "हल्दी" के नाम से विख्यात एक गीत की प्रथम पंक्ति है—

आई बणजारा री मोट उतरी बड़तले
मोलावे लाड़ला लाड़ा रा काकाजी

बनजारे की मोट आकर वटवृक्ष के नीचे उतरी है। लाड़ले दूल्हे के काका उनसे मोल भाव कर रहे हैं।

राजस्थानी गीतों में बनजारों का बहुत उल्लेख आया है। पहले मालवा से असल तम्बाकू ले जाकर बनजारे राजस्थान में महँगे भाव से बेचा करते थे। "बड़ोड़ी तमाकू" नामक गीत की कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं—

"बड़ले उतारां ढोला बणजारे री मोट,
चोवटे उतारो रे मांजो सौदागिर जो बाणियो रे
मांहारा राज।
कहे रे बणजारा त्हारी तम्बाकू रो मोल
रुपए री लेंसा रे असल तम्बाकू मालवी रे,
मांहारा राज।
देसां रे देसां गोरी रूपे री अघ टाँक,
मोहोर री देसां रे मांजो, गाढ़ा रे मारू छक पीय रे,
मांहारा राज।

मालवा प्रान्त के बनजारे तीन प्रकार के हैं। १. लबाना, २. बामनिया, ३. राजपूत बनजारा। इन बनजारों में कछवाह, राठौर, चौहान आदि राजपूतों के गोत्र पाये जाते हैं जो निस्सन्देह बनजारों के पूर्वकालीन राजपूतों के रक्त सम्बन्ध को प्रमाणित करते हैं। बामनिया बनजारों में उनकी उत्पत्ति के विषय में एक कथा प्रचलित है।

"मुगलों की सेना में दो राजपूत नौकर थे। उन्होंने किसी मुसलमान स्त्री के साथ काम-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था; इसलिये ज्ञात होने पर मुगलों के भय से वे राजपूताना के जंगल में चले गये और रहने लगे। सौभाग्य से एक दिन शिकार खेलते हुए उदयपुर के राणा उधर आ निकले। उन्हें बड़ी प्यास लगी। सेवक दौड़ाये गये। शीघ्र ही पानी की तलाश करता हुआ एक चाकर इनके निकट पहुंचा और यह जान कर कि वे राजपूत हैं, पानी माँग लाया। राणा ने तृप्त होकर चाकर से पूछा कि ऐसा ठंडा जल कहां से प्राप्त हुआ। चाकर से जानकारी प्राप्त कर राणा दोनों राजपूतों के पास आये। राणा ने उनसे पूछा "तुम कौन हो?" दोनों राणा के आगमन से भय-भीत हो गये थे। अतएव डरते हुए उन्होंने अपने को राजपूत बताने की अपेक्षा भाट बताया ताकि राणा उन्हें अपनी शरण में लेकर रक्षा करें। भाट सदैव ही राजपूतों द्वारा रक्षित होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आए हैं। राणा ने उन्हें भाट समझ कर आश्रय दिया। वे उन्हें अपनी राजधानी में ले आये और बामनिया नामक गांव जागीर में प्रदान कर दिया। अपने को भाट बताने के परिणामस्वरूप उन्हें राजपूतों से अलग हो जाना पड़ा।"[१]

बनजारों में यही कहानी अनेक रूपों में मिलती है। शाजापुर जिला (मध्य-प्रदेश) के बनाजारे उन दो राजपूतों के नाम गोपीजी और पिछानजी बताया करते हैं। उनका सम्बन्ध मुसलमान स्त्री की अपेक्षा लाली नामक एक नाई की स्त्री से हो गया था। बात खुल जाने से दोनों देहली छोड़कर भाग गये। मार्ग में उन्हें एक स्त्री मिली तो सती होना चाहती थी, पर उसके सम्बन्धी उसे इस काम से रोक रहे थे। दोनों ने उसकी मदद की। सती होते समय स्त्री ने उन्हें वरदान दिया कि दोनों में एक राजा बनेगा और दूसरा घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करेगा। दोनों आगे बढ़े। वे लोग मुरैना के श्योपुर नामक स्थान पर आये। श्योपुर के राणा की एक लड़की थी। उसने विवाह करने के लिये एक शर्त रखी थी। एक पत्थर का हाथी बनाकर शहर के प्रवेश द्वार पर रखा गया था। जो कोई उस हाथी के शरीर में, भाला भोंकने में सफल होगा उसी से राजकुमारी विवाह करेगी। इस घोषणा से सभी परिचित थे। एक दिन दोनों राजपूतों ने उस हाथी को देखा। सहज भाव से एक ने उसके पेट में अपना भाला भोंक दिया और बिना जताये वहां से चला गया। जब राजकुमारी को यह ज्ञात हुआ तो उसने दोनों को बुलवाया। दोनों ही हाथ आये, अवसर को खोना नहीं चाहते थे। राजकुमारी के सम्मुख दोनों स्वयं को विजेता बता रहे थे। राजकुमारी ने कहा कि जिसने भी भाला मारा है वह उसे हाथी के शरीर से निकाल लाये। अन्त में एक की विजय हुई। राजकुमारी ने उससे विवाह कर लिया। आगे चलकर वही राजा बना।

दूसरा व्यक्ति राजस्थान चला गया। उदयपुर के राणा से उसकी भेंट जंगल में हुई, जहां उसने स्वयं को भाट बताया। पर राणा से यह बात छिपी नहीं। उस राजपूत को उन्होंने अपनी साली ब्याह दी और बारह गाँव जागीर में दिये।

इन्हीं में आगे चल कर रूपा नायक नामक व्यक्ति ने लूटपाट आरम्भ की, जिससे बामनिया की जागीर छीन ली गई। इस तरह स्थान भ्रष्ट होकर ये लोग व्यापार करने लगे। कहते हैं प्रारम्भ में पंचभद्रा से नमक ले जाकर ये लोग हिन्दुस्थान के भिन्न-भिन्न भागों में बेचा करते थे। राजस्थान और मालवा में इनका सामान लादकर ले जाने वाला कारवां "बालद" कहलाता है। "बलद्यन" मालवी में बैल को कहते हैं और चूंकि बैलों पर ये माल लादते हैं, अतः बैलों का कारवां—"बालद" कहलाता है।

बामनिया में रूपा नायक की छतरी है। रूपा के वंशज बामनिया बनजारों का आज भी नेतृत्व करते हैं। सैकड़ों गीतों में रूपा की महिमा गाई गई है। प्रतिवर्ष अनेक बनजारे बामनिया की यात्रा करते हैं।

---

१. रिपोर्ट आन दी सेन्सस आफ सेण्ट्रल इण्डिया, १९३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैदराबाद के लम्बाड़े (बनजारे) स्वयं को राजस्थान और मालवा के बनजारों से सम्बन्धित घोषित करते हैं। लम्बाड़ी किंवदन्तियों के अनुसार बनजारों की एक शाखा सन् १९३० के लगभग आसफखां के शासन काल में हैदराबाद पहुंची थी। आसफखां के द्वारा किये गये एक ताम्रपत्र में जंगी और मंगी नामक बनजारों का जिक्र आया है। कहते हैं कि हैदराबाद के निकट एक पहाड़ी पर जंगी और मंगी सबसे पहले आकर बसे थे। आज भी उस पहाड़ी को बनजारी पहाड़ी कहा जाता है।[1]

मध्यकालीन परम्परा के साथ जातियों के इतिहास में बनजारों का सम्बन्ध रोमानी है। पुरुषों का पहरावा यद्यपि इतना आकर्षक नहीं है, पर स्त्रियों का रंग-बिरंगा पहनावा अवश्य ही उनके रंगीले इतिहास का परिचायक है। पुरुष अपने ऊंचे श्वेत साफे में लाल "धजीरा" बांधकर अपने रंगों के प्रति प्रेम का सबूत देते हैं। आभूषणों से भी पुरुषों को प्रेम है, हाथ में चांदी का कड़ा, कमर में कन्दोरा, कानों में मुरकियां, बटुए, नौलियां आदि। स्त्रियों ने सदैव ही चित्रकारों को आकर्षित किया है। रंगों के प्रति उनका लगाव स्वाभाविक है। ध्वनि प्रधान आभूषण, कलाइयों में हाथीदांत की "उतरेड़" माथे पर ऊंचाई को छूती हुई "राखड़ी", पीतल या कांसे की वज़नदार पैंजनियां, गाढ़े रंग की ओढ़नी, जिसकी किनार पर चांदी के घुंघरू और झूमर का झोल, यही कुछ स्त्रियों की शोभा के उपकरण हैं।

बनजारों का उल्लेख संस्कृत साहित्य में भी मिलता है। गुप्तों के समय भी उनका अस्तित्व स्वीकार किया गया है। उत्तर भारत में मुसलमानी बनजारों की एक शाखा और है। वह अपना सम्बन्ध मुसलमानों से बताती है। इस शाखा के बनजारों का कहना है कि पहले वे मुलतान (पंजाब) में रहा करते थे और जाति के सरावगी बनिये थे। मुसलमानी धर्म ग्रहण करने के कारण हिन्दुओं से भिन्न हो गये। यों तो वे कई हिन्दू देवी-देवताओं के साथ पीर साहब की भी पूजा करते हैं। काजी उनमें विवाह-सम्बन्ध कायम करता है। दक्षिण के कुछ बनजारों के अनुसार गुरु नानक (सिख धर्म के प्रवर्तक) उनके अध्यात्म गुरु हैं। कृष्ण को भी वे बालरूप में पूजते हैं। तुलजापुर की भवानी तुलजा देवी और "बालाजी" भी उनके पूज्य हैं। लम्बाड़ों में हिंगलाज, मिट्ठू भूकिया[2] हामूभूकिया और काली पूजी जाती हैं। खानदेश के बनजारे जनेऊ पहनते हैं। ये भी बालाजी की पूजा करते हैं। खंडोबा, भाई रोबा, हनुमान और गणेश भी उन्हें मान्य हैं। छत्तीसगढ़ में उनकी आराध्य "बंजारी" देवी हैं। हरदौललाल उनके हैजे आदि रोगों का परिहार करने वाले देव हैं। बनजारों में रामेश्वर गद्दी वाले गुरु नानक सबसे अधिक माने जाते हैं। कहते हैं इन्हीं की कृपा से बनजारों ने वाणिज्य ग्रहण किया और बाणज्यारे (बनजारे) कहलाये।

---

१. वन्यजाति, खण्ड १, अंक ४, पृ० ९३।

२. मिट्ठू भूकिया आक्रमण के समय सहायक सिद्ध होने वाली दैवी शक्ति है। उसकी आराधना अलग झोपड़े में की जाती है। वहाँ सफेद ध्वजा फहरा दी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यवर्ती भारत में बनजारों के गीतों में राजस्थानी गीतों की अधिकांश प्रवृत्तियों के साथ घुमन्तु प्रवृत्ति के अनेक लक्षण मिलते हैं। मानव के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति इनमें सहज हुई है। एक बिदाई गीत देखिये—

रासतुड़ावण

रास[1] तोड़ करे रे कुरिया[2] भागी जा
तू सूँ छूटे रे कुरिया बालदा[3]
मो सूँ छूटे माय - बाप
सोना रे मड़ा दूँ कुरिया त्हारा सींगड़ा
रूपाया[4] रे मड़ा दूँ त्हारा पाँव
चालता रे चमके नन्द्या[5] त्हारी सींगड़ी
उड़ता रे आबे पूँछ...

बनजारों में लड़की को विवाह के पश्चात् बैल पर बैठाकर पति के साथ बिदा किया जाता है। इसीलिये वह बैल से प्रार्थना करती है कि तू रास (रस्सी) तुड़ाकर भाग जा। तुझसे तो केवल "बालद" छूटेगी, पर मुझसे तो (तेरे न रुकने पर) मेरे माँ-बाप छूट जायेंगे। मैं तेरे सींग सोने से और पांव चांदी से मढ़ा दूंगी। जब तू चलेगा तो हे बैल, पेरे सींग चमकेंगे और पूँछ उड़ेगी। तू भाग जा.....बैलों का बनजारों में बहुत महत्व है।

मध्य भारत के बनजारे बैल की पूजा करते हैं। बालाजी की सेवा में किसी एक बैल को चुनकर समर्पित घोषित किया जाता है। उस पर कोई भार नहीं लादते। वह घंटियों और झूल से अलंकृत किया जाता है। कौड़ियों की झालर उसके गले में बाँधी जाती है। वह सजा सजाया सब जगह ले जाया जाता है। और हर जगह बनजारे उसे पूजते हैं।

"ढावला" नामक गीत में बनजारों की व्यापारी वृत्ति परिलक्षित हुई है—

"डुंवा दी[6] डाँडी जस[7] घूँघरा
मेरा डुँवा लेग्यो समदी चोर
डुँवा रखी दे रे...
दोरी[8] आई बिकऊ झाजा पावणी[9]
कर लो मोल
हम छ पावणा—
दोरी आटे के पाटे छ रूपया साठ

---

१. बैल बाँधने की रस्सी। २. बैल। ३. कारवां। ४. चाँदी। ५. बैल (नन्दी)। ६. कड़छी। ७. जैसे। ८. टोकरी। ९. सुन्दर पाहुनी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लो व्याई मोल
हम छ पावणा--

तात्पर्य है "कड़छी की डण्डी घुँघरू के अनुरूप है। मेरी कड़छी को समधी चोर ले गया। कड़छी रख दे रे....."

"टोकरी बिकने आई है। हे सुन्दर पाहुनी, इसका मोल कर ले।"

"हम तो अतिथि हैं।"

"टोकरी का कुल मिलाकर मूल्य साठ रुपया है, हे व्याई मोल कर ले।"

"हम तो अतिथि हैं।"

"मालाफेर" नामक गीत में वैरागण की स्त्री का चित्र है। वह वस्तुतः विरहिन है जिसका पति परदेश गया है। वह अस्त-व्यस्त और चिंतातुर है, पर उसके निष्ठुर पति को उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं। गीत है:--

उजड़ खेड़ी की भीत[1] वेरागणवाली क्यूं खेड़ी[2]
म्हेरा झेणामारूँ[3] क्या परदेस
वेरागणवाली क्यूं खेड़ी
म्हेरा सतगुरू ग्या परदेस
धुजारण[4] वाली क्यूं खेड़ी
कीकूं रे[5] मूरख ढोल गिंवार
त्हेरे को म्हेरी क्या पेड़ी[6]

गालियों से भरे गीतों को बनजारे "निवाली" कहते हैं। मालवी और राजस्थानी में ये "गाल" के नाम से पुकारे जाते हैं। देवी-देवताओं के गीत भी बनजारों में बहुत हैं। इसी प्रकार मृत्यु के अवसर पर स्त्रियां रोते हुए मृत्युगीत गाती हैं। उदाहरणार्थ एक गीत लीजिए:--

छूट चली नायकण चाड़ी[7]
याँ-अँ-अँ-हाँ-हाँ-(रोने की ध्वनि)
सूतो के जाग्यो रे बस्ती का नायक
त्हारी बस्ती में आँवा बोरी[8]
कयल कल ल - ल - ल
याँ-अँ-अँ-हाँ-हाँ
नायकन हम से छूट चली है--(रोना)
हे बस्ती के नायक (पटेल)

---

१. दीवार। २. खड़ी। ३. पति। ४. फटे वस्त्रों वाली।
५. क्या कहूँ। ६. तुझे मेरी क्या पड़ी? ७. नायकन। ८. कुहराम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू सो रहा है या जाग रहा है?
तेरी बस्ती में कुहराम मचा है...(रोना)

नृत्य के अवसर पर स्त्रियां गोलाई में खड़ी होकर रास या गरबे के ढंग पर सामूहिक नृत्य करती हैं। स्वतंत्र रूप से वही नृत्य किये जाते हैं जिनमें गति का निर्वाह हो सके। पुरुषों के नृत्य की गति आरम्भ में धीमी होती है। "तलवार रमण्या' और अन्ट्या रमण्या" नृत्य क्रमशः तलवार और डण्डों के साथ किये जाते हैं। पैरों की गति के साथ हाथ की गति पुरुषों के नृत्यों में देखने योग्य होती है। नृत्य के साथ स्त्रियों की भाँति पुरुष गीत गाते हैं जो अधिकांश में "श्री म्हाराज री बेल" के अंश होते हैं। इसी बेल में बनजारों का ऐतिहासिक वैभव भरा है। राजपूतों के शौर्य की कहानी बनजारों की अपनी कहानी बन गई है। तंवर वंश के सम्बन्ध में और पृथ्वीराज चौहान की गज़नवी से जो लड़ाई हुई उसके संकेत बेल में अनेक स्थानों पर आए हैं। "श्री म्हाराज री बेल" एक सम्पूर्ण प्रबन्ध काव्य है जिसे इन पंक्तियों के लेखक ने ऊन, (निमाड़) के निकट घोट्या ग्राम के बनजारे नायक से सुनकर लिपिबद्ध किया है। उसमें से नीचे दो छन्द दिये जा रहे हैं।

रे...काठी बाँदो रे पिथला पागड़ी
अे...वरली छोड़ो रे लगाम
ऐसो मारो रे हमने ताजणो
जेरी मस्कत घर दूँ पाँव...
रे...कहो करोनी मनड़ा लोऊ जड़िया
ऐ..माथो रे लेतो तोड़
माथो चढ़ा दूँ मोती मेल में
जिन घड़ धरती रे माय...

श्रावण के दिनों में बनजारे इस बेल को ढप के साथ नाच कर और बैठकर भी गाते हैं। रे....की धुन दूर तक खिंचती चली जाती है। इसी की उठान पर आगामी चार पंक्तियाँ मय धुन के दौड़ती हैं।

"जंगल ट्राइब्स ऑफ मालवा" के लेखक कर्नल लुअर्ड ने आज से कोई पचास वर्ष पूर्व बनजारों के विषय में कुछ सामग्री प्रस्तुत की थी। विवाह के समय "पेरावनी" नामक एक रस्म की पूरी की जाती है। "थानक खंब" के आसपास सात विवाहित व्यक्ति "पेरावनी" की सांझ को एकत्र होते हैं। उनके पास लकड़ी का जल से भरा हुआ पात्र और धातु की थाली (खाली) होती है। घी और चावल अन्य बर्तन में लाकर रखे जाते हैं। सातों व्यक्ति चावल के गोले बनाते हैं और उन्हें अपनी-अपनी थाली में रखने के बाद हथेलियों को नीचे की ओर झुकाकर कहते हैं—

कुंडा कण्डा कण्डारा कुण्डे बेठ्या सत जान्या
जे कुंडा की करे भराँ, जे की सज्जा जे की लार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातों में से एक व्यक्ति वर-वधू को चावल का लोन्दा देता है जिसका अर्थ यही होता है कि अब उसका भाई बहन का सम्बन्ध भंग होता है। इस अनुष्ठान के बाद से चावल खाते हैं। बचा हुआ अंश सातों खाते हैं और लकड़ी के पात्र में हाथ धोकर हथेलियाँ ऊपर की ओर करके कहते हैं—

लिंबो लिंबो लीमट लाई
लिंबे बाँदी पाल।
सतकर हात पसारिया
जांबू दीण जवार।।

इसके बाद जिस पात्र में हाथ धोया जाता है उस पानी को सातों पी जाते हैं। लुअर्ड ने यह जानकारी बामणिया भाट बनजारों के सम्बन्ध में दी थी। पता नहीं आज भी यह प्रथा प्रचलित है अथवा लुप्त हो गई है ?

हैदराबाद के लम्बाड़े कर्णछेदन के बाद भुजा पर सुई से पांच चिह्न बनाया करते हैं। उस समय की परम्परागत पंक्तियाँ हैं।

कोली आव कोली जाव
घोलो घोड़ो हांस लो
मुम्मर की तलवार छ
पातलिया सवार छ।

बनजारों की अनेक प्रथाएं उल्लेखनीय हैं। विवाह के समय दो—विवाहिताएं—एक वरपक्ष और दूसरी वधुपक्ष का प्रतिनिधित्व करती हैं। दोनों पूरे दिन उपवास करती हैं। रात्रि को चावल रांधते समय अपने मुंह को ढंक लेती हैं क्योंकि धुएँ का स्पर्श जोड़ी के लिये अशुभ होता है। भोजन पुरुषों को खिलाया जाता है और बचा हुआ भाग गाय को अथवा नदी में डाल देते हैं। किसी अन्य को उसका दिया जाना परिवार के लिये आपत्ति का आमन्त्रण माना जाता है। इस अनुष्ठान के पीछे समृद्धि के देवता की आराधना निहित है।

बनजारों की पंचायतें बिना निर्णय के समाप्त नहीं होती। नायक के नेतृत्व में इसका आयोजन होता है जहाँ हर "टांडे" के लोग आ जुटते हैं। नायक की अनुमति के बिना कोई बोलता नहीं। जब कभी दो दलों में झगड़ा होता है और उसके रुकने की स्थिति सन्देहास्पद हो जाती है, तब किसी एक दल का वृद्ध अपना साफा निकाल कर बीच में फेंक देता है। वही सुलह का संकेत मान लिया जाता है।

अपनी विचित्र प्रथाओं का पालन करते हुए बनजारे, मुख्य रूप से मध्यवर्ती भारत के निवासी जो गीत गाते हैं, उनमें राजस्थान का सम्बन्ध बराबर व्यक्त होता है। आल्हाऊदल, पृथ्वीराज चौहान और अनेक वीर पुरुषों की ख्यालें इनमें प्रचलित हैं। अन्त में मालवा के बनजारों में प्रचलित एक "केरूवा फाग" का उदाहरण प्रस्तुत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो - रे कुलजुग[1] में अवतारी रामो परगटियो
कावो[2] चड़ावे लोग जातरू[3] कावो चड़ावे राणा उदेपुर को
चतर चड़ावे लोग जातरू च दुवो चड़ावे राणा उदेपुर को
हो - रे कुलजुग में धजा[4] को घणी परगटियो
काओ माँगे लोग जातरू, काओ मागे राणा उदेपुर को
अनर्धन मागे लोग जातरू, पुत्तर मागे राणा उदेपुर को।

---

१. कलयुग। २. क्या। ३. यात्रा। ४. ध्वजा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नवाबसिंह चौहान एम० पी०

परिवहन तथा संचार मंत्रालय में हिन्दी

भारत को स्वतन्त्र हुए लगभग १४ वर्ष हो चुके हैं। स्वतन्त्र देश में प्रशासन की भाषा जनसाधारण की भाषा होनी चाहिए। जन-भाषा के अतिरिक्त यदि किसी अन्य भाषा के माध्यम और विशेषतः विदेशी भाषा के माध्यम से प्रशासन चलाया जाता है तो जनता उस प्रशासन को किसी विदेशी सत्ता का प्रतिनिधि मात्र ही समझती है।

परिवहन तथा संचार मन्त्रालय एक ऐसा मन्त्रालय है जिसे जनसम्पर्क या सर्वसाधारण के उपयोग का मन्त्रालय कह सकते हैं। प्रत्येक नागरिक को इस मन्त्रालयों से प्रति-दिन किसी न किसी रूप में काम पड़ता है। ग्रामीण भी इसके सम्पर्क में आये बिना नहीं रह सकता। डाक तो उनके पास भी पहुँचती है। ऐसे जनउपयोगी महत्वपूर्ण मन्त्रालय से इस बात की विशेष रूप से आशा की जाती है कि वहाँ के काम-काज में हिन्दी का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ाया जाये परन्तु वहाँ हिन्दी की जो उपेक्षा की जाती है वह देखने योग्य है।

संविधान चालू होने के ११ वर्ष उपरान्त भी यह मन्त्रालय यह न कर सका है कि उसमें जनता की ओर से जो पत्र हिन्दी में लिखे प्राप्त हों उन सभी का उत्तर हिन्दी में दिया जाये। मन्त्री महोदय हिन्दी पत्रों का उत्तर अंग्रेज़ी में देना पसन्द करते हैं। अन्य अधिकारियों की स्थिति यह है कि सन् १९६० की प्रथम छमाही में हिन्दी के २९५२ पत्र इस मन्त्रालय में प्राप्त हुए। इनमें से केवल १५०१ का उत्तर हिन्दी में दिया गया और ४३० का उत्तर अंग्रेज़ी में। यह स्थिति तब है जब कि गृह मन्त्रालय ने सन् १९५५ में सब मन्त्रालयों को यह परामर्श दिया था कि हिन्दी पत्रों के उत्तर हिन्दी में ही दिये जाने चाहिए।

उपरोक्त कमी के बारे में एक मज़ेदार दलील मन्त्रालय की ओर से यह दी गई है कि कार्यालय सम्बन्धी पारिभाषिक हिन्दी शब्दावली से परिचित कर्मचारी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध नहीं हैं तथा हिन्दी में उत्तर का मसौदा तैयार करने के समुचित प्रबन्ध नहीं है। इस दलील में कहाँ तक तथ्य है इसका निर्णय निम्नलिखित विवरण से किया जा सकता है :—

परिवहन तथा संचार मन्त्रालय में हिन्दी जानने वाले कर्मचारियों की संख्या इस प्रकार है :—

	कुल संख्या	हिन्दी जाननेवालों की संख्या	
प्रथम श्रेणी	१२२	५५	मैट्रिक से ऊपर योग्यता वालों की संख्या ३४१ है।
द्वितीय श्रेणी	२६८	९३	
तृतीय श्रेणी	३८९	२४०	
चतुर्थ श्रेणी	२८१	२२३	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक युग में टाइपराइटर प्रत्येक कार्यालय का एक अनिवार्य अंग बन गया है। शायद ही कोई विभाग ऐसा हो जो टाइपराइटर बिना अपना काम चला सके। जब जल्दी ही हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ग्रहण करने वाली है तब परिवहन तथा संचार मन्त्रालय में हिन्दी टाइप-राइटर उचित संख्या में मँगाये जाने चाहिए। इस मन्त्रालय में कुल २५४ टाइपराइटरों में से ९ हिन्दी के टाइपराइटर हैं और बाकी अंग्रेज़ी के।

यद्यपि मन्त्रालय ने हिन्दी टाइपराइटिंग का प्रशिक्षण ८५ कर्मचारियों को दिलाया है लेकिन हिन्दी टाइप का काम किसी से भी नहीं लिया जाता। इसका फल यह हो रहा है कि कुछ समय उपरान्त वे सब हिन्दी टाइप करना भूल जायेंगे। और इस प्रकार उनके प्रशिक्षण पर हुआ व्यय व्यर्थ ही जाएगा। यह स्थिति जब मन्त्रालय में है तब आधीनस्थ कार्यालयों में स्थिति इससे अधिक शोचनीय हो सकती है।

अधिकारी और कर्मचारीगण क्रमशः हिन्दी से अधिकाधिक परिचित हो सकें इसके लिए यह अत्यावश्यक है कि मन्त्रालय और संलग्न विभागों के पुस्तकालयों में हिन्दी पुस्तकों, हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों को एक निश्चित योजना के अनुसार मँगवाने की व्यवस्था की जाए लेकिन अभी इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। इस समय इस मन्त्रालय में हिन्दी प्रकाशनों को मँगवाने की जो स्थिति है वह इस प्रकार है :—

मंत्रालय के पुस्तकालय में कुल पुस्तकों की संख्या	मन्त्रालय में हिन्दी पुस्तकों की संख्या	पुस्तकालय में नियमित रूप से मंगाई जाने वाली पत्र-पत्रिकाओं की कुल संख्या	पुस्तकालय में मंगाई जाने वाली हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की कुल संख्या
१६,७१५	४६	१०८	एक भी नहीं

इतना ही नहीं हिन्दी की पुस्तकों आदि की संख्या बढ़ाने की कोई योजना भी नहीं है।

हिन्दी को प्रमुख राजभाषा के रूप में प्रयोग करने और सरकार की भाषा सम्बन्धी नीति को सही रूप से कार्यान्वित करने के लिए सभी अधिकारियों तथा सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी जानना आवश्यक है। गृह मन्त्रालय के तारीख ३०।७।६० के एक ज्ञापन द्वारा ४५ वर्ष से कम आयु के समस्त केन्द्रीय कर्मचारियों के लिए हिन्दी जानना आवश्यक भी कर दिया गया है। इस मन्त्रालय में अभी हिन्दी न जानने वाले कर्मचारियों की काफी वर्ग संख्या है परन्तु अब तक हिन्दी कक्षाओं में सम्मिलित होकर उनमें से केवल १५ ने "प्राज्ञ" परीक्षा पास की है। वे भी कार्यालय में हिन्दी के माध्यम से कार्य करने का अवसर न मिल सकने के कारण कुछ समय बाद सीखी हिन्दी को भूल जाएंगे, जिसके कारण इस दिशा में हुआ श्रम और धन व्यर्थ जाएगा।

सचिवालय के अधिकांश चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी अंग्रेज़ी नहीं जानते। इनकी बड़ी संख्या अपने दैनिक व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करती है। सम्भवतः इस बात को ध्यान में रखते हुए कुछ समय पूर्व सरकार ने उनके सम्बन्ध में निकलने वाले परिपत्रों आदि को हिन्दी में निकालने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्णय किया था। उस निर्णय की उपेक्षा की झलक इस बात से मिलती है कि १९५९ में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के लिए जारी किये गये १७,९०६ आदेश, परिपत्र, अधिसूचना आदि में से २,३७६ हिन्दी में जारी किये गये। इस वर्ष १९६१ की प्रथम छमाही में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के लिए ४४ अनुदेशात्मक आदेश जारी किये गये, इनमें से केवल एक हिन्दी में जारी किया गया। इन कर्मचारियों से जो आवेदन, याचिकायें आदि हिन्दी में प्राप्त होती हैं उनमें से किसी का भी जवाब हिन्दी में न दिया जाकर या तो अंग्रेज़ी में दिया जाता है या उन पर हुए निर्णय मौखिक रूप से बताये जाते हैं।

बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश जैसे हिन्दीभाषी प्रान्तों को १।१।१९६० से ३१।८।६० तक सड़कों और मोटर गाड़ियों के बारे में भेजे पत्रों की संख्या इस प्रकार थी :—

	सड़कों के बारे में भेजे गये पत्रों की संख्या	मोटर गाड़ियों के बारे में भेजे गये पत्रों की संख्या
बिहार	३४५	१०९
राजस्थान	२९२	१३६
उत्तर प्रदेश	४९१	१४०
मध्य प्रदेश	४०८	१४०

उपरोक्त सभी पत्र अंग्रेज़ी में भेजे गये। इनमें से किसी को भी हिन्दी में अथवा हिन्दी अनुवाद के साथ नहीं भेजा गया, यद्यपि गृह मन्त्रालय के दिसम्बर १९५५ के आदेशों के अनुसार ऐसा कभी से किया जाना चाहिए था। इस वर्ष भी अवस्था में विशेष सुधार नहीं है। १९६१ की प्रथम छमाही में उपरोक्त राज्यों को भेजे गये कुल २०७२ पत्रों में से केवल १२९ हिन्दी में भेजे गये।

डाक जीवन बीमा का क्षेत्र विस्तृत हो सकता है, यदि उसका काम हिन्दी के माध्यम से किया जाने लगे। परन्तु अभी तो इस मन्त्रालय ने डाक विभाग के जीवन सम्बन्धी फार्मों को हिन्दी में अनुवादित कराने की भी कोई व्यवस्था नहीं की है।

मन्त्रालय में प्रयुक्त होने वाले फार्मों को यदि हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में छापा जाए तो कर्मचारियों को हिन्दी पर्यायों से शीघ्र ही जानकारी हो जाए। लेकिन परिवहन और संचार मन्त्रालय में प्रयुक्त होने वाले समस्त फार्मों में से केवल एक का ही हिन्दी में अनुवाद कराया गया है और उसे भी उस रूप में छपवाया नहीं गया है। इस मन्त्रालय में काम में आने वाले फार्मों की संख्या हज़ारों में होगी। यह विचारणीय है कि यह कार्य कब आरम्भ होगा और जब इसका आरम्भ ही नहीं हुआ तब किस प्रकार सन् १९६५ अथवा इसके बाद भी राज-काज में हिन्दी का प्रयोग सम्भव हो सकेगा?

संसद सदस्यों द्वारा आपत्ति उठाये जाने के डर से परिवहन तथा संचार मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट तो अवश्य अंग्रेज़ी के साथ हिन्दी में प्रस्तुत की जा रही है किन्तु पी० एण्ड टी० विभाग की वार्षिक रिपोर्ट अभी तक भी अंग्रेज़ी में ही छप रही है। सार्वजनिक उपयोग के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रालय के कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं। वे सब अंग्रेज़ी में प्रकाशित होते हैं। वे न तो हिन्दी में प्रकाशित किये जाते हैं और न इन्हें हिन्दी में प्रकाशित करने का इस मन्त्रालय का कोई विचार है। वे प्रकाशन निम्नलिखित हैं :—

अंग्रेज़ी में प्रकाशित	हिन्दी में प्रकाशित	क्या हिन्दी में प्रकाशित करने का विचार है ?
१. बेसिक रोड स्टैटिस्क्सि आफ इण्डिया	नहीं	नहीं
२. ट्रेफिक सर्वे अण्डर इण्डियन कण्डीशन्स	नहीं	नहीं
३. रोड ऐक्सीडेन्स इन डेल्ही	नहीं	नहीं
४. न्यू डेल्ही ट्रेवल सर्वे १९५४	नहीं	नहीं
५. रिपोर्ट आन टूरिस्ट ट्रेफिक	नहीं	नहीं
६. रोड फैक्टर्स इण्डिया १९५६	नहीं	नहीं
७. गुड्स ट्रेफिक सर्वे डेल्ही १९५७	नहीं	नहीं
८. रिपोर्ट आफ चीफ इंजीनियर्स आन रोड डेवलपमेंट प्लान फार इण्डिया	नहीं	नहीं
९. ए स्टडी आफ दि सीज़नल पैटर्नस आफ टूरिस्ट ट्रेफिक इन इण्डिया	नहीं	नहीं
१०. कांडला फ़्री ट्रेड ज़ोन नामक दो पैम्फलेट	नहीं	नहीं
११. मंथली न्यूज लैटर्स	नहीं	नहीं
१२. ट्रंक काल रेट लिस्ट्स	नहीं	नहीं
१३. दी इण्डियन डेली रिपोर्ट	नहीं	नहीं
१४. दी वीकली वेदर रिपोर्ट	नहीं	नहीं
१५. दी मंथली वेदर रिपोर्ट	नहीं	नहीं
१६. दी इण्डियन वेदर रिव्यू एनुअल समरी	नहीं	नहीं
१७. डेली रेनफाल आफ इण्डिया	नहीं	नहीं
१८. दी मंथली एण्ड एनुअल रेनफाल आफ इण्डिया (एनुअल)	नहीं	नहीं
१९. सीज़नल फोरकास्ट्स	नहीं	नहीं
२०. इण्डियन जनरल आफ मीटिओरोलोजी एण्ड जिओफिजिकल	नहीं	नहीं

ऊपर दी हुई सूची से यह स्पष्ट होता है कि इस मन्त्रालय में इस गति से सन् १९६५ से अधिकांश तो क्या अल्पांश भी काम हिन्दी में नहीं हो सकेगा। यह माना कि अन्य कई मन्त्रालयों में भी कुछ ऐसी ही स्थिति है, परन्तु उसमें सुधार करने की आवश्यकता है। कई वर्ष निष्कर्मण्यता में बीत चुके हैं, परन्तु पीछे की कमी को पूरा करने के लिए अभी भी समय है। प्रशासनिक कार्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए भारतीय भाषाओं का प्रयोग देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। अंग्रेज़ी के स्थान पर भारतीय भाषाओं को लाने में देर करना देश की करोड़ों जनता की भावना को ठेस पहुँचाना है। देश का शासन सचमुच जनता के लिए है, अतः जनता की भाषाओं में ही होना चाहिए। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ब्रिटिश सरकार के भरसक प्रयत्न करने पर भी भारत के ०'५ प्रतिशत नागरिक अंग्रेज़ी भलीभाँति नहीं जानते हैं। ऐसे लोग और भी कम संख्या में हैं जो सरकार तक अपनी बातें पहुँचाने के लिए अंग्रेज़ी का सही उपयोग कर सकें। अब तो सचिवालय में भी यह हालत है कि कई उच्च अधिकारी अपने आशुलिपिकों को धारावाहिक अंग्रेज़ी में डिक्टेशन नहीं दे सकते। यह भय निराधार है कि हिन्दी के माध्यम से कार्यालय का काम करना कठिन होगा या उससे कार्य क्षमता किसी तरह घट जायगी। भूतपूर्व सेन्ट्रल प्रोविन्स में जब हिन्दी राज-भाषा बनी तो कर्मचारियों और अधिकारियों की कार्यक्षमता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गई थी। इसी कारण भूतपूर्व ग्वालियर राज्य का सारा प्रशासनिक कार्य हिन्दी के माध्यम से सुचारु रूप से चल रहा था।

कुछ भी हो जब तक कि देश का प्रशासन जनता की समझ में आने वाली भाषा के माध्यम से नहीं होता तब तक सही अर्थ में स्वतन्त्रता का जनता के लिए कोई मूल्य नहीं है। स्वतन्त्र होने के १४ वर्ष पश्चात् भी विदेशी भाषा का मोह न छोड़ना एक प्रकार से मानसिक गुलामी की पराकाष्ठा है। जिन लोगों के हृदय में राष्ट्रीय स्वाभिमान है और जो स्वतन्त्रता का सच्चा महत्व समझते हैं वे किसी भी प्रान्त के होते हुए हिन्दी सीखने और उसको उचित रूप से व्यवहार में लाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

परिवहन तथा संचार मन्त्रालय के अंग्रेज़ी के प्रति मोह का एक और ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने है। कुछ समय पूर्व गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की स्मृति में जो डाक टिकट उनके चित्र के साथ निकाला गया वह ऐसा चुना गया जिस पर उनके हस्ताक्षर अंग्रेज़ी में हैं। क्या डाक तार विभाग को ऐसा चित्र नहीं मिल सकता था जिस पर कि गुरुदेव के हस्ताक्षर बंगला में होते?

जो बातें ऊपर कही गई हैं वह सरकार की नीति की परिधि में रहते हुए ही कही गई हैं। हमारा स्पष्ट मत है कि हिन्दी के प्रसार में हमें अहिन्दी भाषी लोगों की सुविधा का समुचित ध्यान रखना चाहिए। जहाँ एक ओर यह आवश्यक है तो दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि लोग इस बात की आड़ में अपनी हिन्दी विरोधी दूषित मनोवृत्ति को कार्यान्वित करने में सफलता प्राप्त न कर सकें, इसे जागरूक होकर देखते रहना चाहिए। हम कभी नहीं कहते कि हिन्दी अन्धाधुन्ध कर्मचारियों पर थोप दी जाय, किन्तु हमें यह भी देखना है कि हिन्दी जानने वाले कर्मचारियों को हिन्दी में काम करने की सुविधा तो हो। गृह मन्त्रालय हिन्दी के सम्बन्ध में जो नीति अपना रहा है वह सहिष्णुतापूर्ण और अति उदार है, किन्तु यह देख कर दुःख होता है कि इस पर भी अमल नहीं किया जाता। आज तक ११ वर्ष में सरकारी आदेश होते हुए भी हिन्दी पत्रों का उत्तर हिन्दी में नहीं दिया जा सका है। क्या फिर भी हमारे अंग्रेज़ी प्रेमी तथा हिन्दी विरोधी मित्र यह कहने का साहस करते हैं कि हिन्दी को थोपा जा रहा है?

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब हम हिन्दी की बात करते हैं तो उसमें सभी भारतीय राष्ट्रीय भाषाओं का प्रश्न आ जाता है। हिन्दी अन्य भारतीय भाषाओं का स्थान न लेकर धीरे-धीरे सुविधानुसार अंग्रेज़ी का स्थान लेना चाहती है। वास्तव में आज तो एक मुट्ठी भर अंग्रेज़ी पढ़े लिखों का निहित स्वार्थ भारतीय भाषाओं के मार्ग को अवरुद्ध करना है। वह इस प्रकार सभी अवसरों को अपने लिये सुरक्षित रखकर साधारण जनता के लोगों को वहाँ से दूर रखना चाहते हैं।

आज जो भाषा के नाम पर कुछ झगड़े देश में दीख पड़ते हैं उनकी जिम्मेदारी बहुत कुछ अंग्रेज़ी प्रेमियों पर है क्योंकि उन्होंने अंग्रेज़ी को बनाये रखने के लिए राष्ट्रीय एकता की मुख्य बुनियाद क्षेत्रीय या संघीय राष्ट्रभाषा के विचार को पनपने ही नहीं दिया। जन संख्या के एक प्रतिशत से भी कम इन अंग्रेज़ी जानने वालों के हृदयों में अंग्रेज़ी ने ऐसा एकाधिपत्य जमा लिया है कि इन्हें सारे संसार के ज्ञान-विज्ञान का भण्डार केवल अंग्रेज़ी में ही दीखता है। क्या जापान, रूस, जर्मनी और फ्रांस इत्यादि अंग्रेज़ी के अभाव में इस ज्ञान से वंचित हैं?

आज भारत में प्रजातन्त्र है अतः जनता की भाषाओं को अंग्रेज़ी जानने वालों का अल्पमत किसी भी बहाने से इस प्रकार दबाये नहीं रख सकता और वह समय शीघ्र ही आयेगा जब कि देश की सभी राष्ट्रीय भाषायें हिन्दी के साथ फलेंगी और फूलेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० हरिशंकर शर्मा 'हरीश'

पाठविज्ञान में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द और उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन

पाठालोचन एक ऐसा विषय है कि इसे विद्वान पहिले विज्ञान नहीं मानते थे परन्तु कुछ गण्यमान विद्वानों ने सम्यक् अध्ययन तथा विभिन्न असाधारण कृतियों के पाठों के उद्धार के इस विषय के अर्थ-विस्तार, उद्देश्य तथा सामग्री का संकलन कर इसकी वैज्ञानिकता पर प्रकाश डाला है। पाठ की आलोचना करते हुए भी यह विषय कृति का वैज्ञानिक वर्गीकरण कर, उसकी लिपि, वर्ण तथा परम्परा पर पूर्ण प्रकाश डालता हैं। पाठालोचन निश्चित रूप में एक विज्ञान है। वह कृति का मूल्यांकन विधिवत् एवं शास्त्रीय दृष्टि से करता है। प्राचीन काल से लेकर अब तक पाठ के पुनरुद्धार हेतु जितने प्रयास हुए हैं उन सबको हम वैज्ञानिक नहीं कह सकते हैं। पाठालोचक भविष्य वक्ता भी नहीं होता। उसकी किसी निश्चित कसौटी के बन्धन में रहना पड़ता है। वह सीमाबद्ध है। उसकी इन्हीं सीमाओं ने पाठालोचन को एक स्वतंत्र विज्ञान कह सकने में योग दिया है। यह सही है कि यह विषय पाठ की आलोचना करता है और अब तक विद्वानों ने इसे आलोचना के क्षेत्र में ही उलझाए रखा परन्तु अब यह स्वीकार कर लेने में कोई सन्देह नहीं रहा कि पाठालोचन आलोचना ही नहीं एक स्वतंत्र विज्ञान है।

विज्ञान के कुछ निश्चित सिद्धान्त होते हैं। उसकी एक निश्चित रूप-रेखा होती है। वह ध्रुव सत्य सा होता है और यथार्थ भी। विज्ञान का रूप कुछ गम्भीर पारिभाषिक शब्दों से बनता है। उसमें अनेक विधियां होती हैं, सुलझे विवेचन होते हैं। उसकी सबसे बड़ी प्रधानता होती है कि वह विषय विशेष के मूल उद्गम तक पहुँच कर उसकी परीक्षा के लिये ध्रुव सिद्धान्तों तथा घोष वाक्यों का चयन करता है। शास्त्रीय नियमों की विधिवत् स्थापना भी विज्ञान का ही विषय है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि पाठविज्ञान एक ऐसा राजपथ है जो पाठ सम्बन्धी अनेक दुरूह पगडण्डियों को पार कर उन्हें संकीर्ण कंटकों से मुक्त करता है। पुरातन रूढ़ियों को खण्डित कर नूतन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। मंजिल की निकटतम पहुँच ही उसका लक्ष्य है। अन्तिम सम्भाव्य स्थिति ही उसका लक्ष्य होता है। अतः पाठविज्ञान को समझने के लिये उसके नूतन सिद्धान्तों तथा शास्त्रीय पद्धतियों को समझना आवश्यक है। यह पद्धतियाँ कुछ निश्चित सिद्धान्तों की श्रृंखलाओं में बँधी हैं। एक पाठालोचक को किसी कृति के जन्मकाल, उस पर पड़े प्रभाव, उसकी प्रतिलिपि-परम्परा से लेकर उसकी अब तक की अवस्था दुरूह घाटियां हैं, कठिन मंजिलें हैं, जिन पर चल कर, वह संदिग्ध नहीं रह सकता, यथार्थ का निरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण नहीं कर सकता, उसकी ओर से आंखें नहीं बन्द कर सकता। विज्ञान की यही सबल कसौटियां उसे पाठ के साथ न्याय करने में सहायता करती हैं। इन पर प्रकाश डालने वाले जो शब्द हैं उन पर इस प्रस्तुत विज्ञान में प्रवेश करने के पूर्व ही यदि सम्यक् विवेचन कर दिया जाये तो विषय की दुरूहता बहुत कुछ कम हो जाएगी। साथ ही तद्विषयक मूल सिद्धान्त स्पष्ट हो जाएंगे तथा उन पारिभाषिक शब्दों के अर्थ स्पष्ट होने से विषय के प्रतिपादन में सरलता होगी, ऐसा हमारा अनुमान है।

पाठालोचन पर कार्य करने वाले विभिन्न विद्वानों में सम्यूलर, सुकथांकर पिशेल, स्टैन-कोनोव एर्जटन, पोस्टवोट, एस० एम० कत्रे, मूलराज जैन, हरिनारायण पुरोहित, डा० बड्थ्वाल, डा० माताप्रसाद गुप्त, उमाशंकर शुक्ल आदि ने इस विज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट किया है। भारतीय साहित्य में पाठविज्ञान के हुए अब तक के वैज्ञानिक कार्य पर हम प्रकाश डालेंगे। प्रस्तुत लेख में हम पाठविज्ञान के स्वरूप को समझने, विषय में सरलता से प्रवेश पाने तथा सम्पादकों में वैज्ञानिक कार्यों को समझाने वाले जो पारिभाषिक शब्द हैं उन पर प्रकाश डाल रहे हैं। एतदर्थ प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द, जो इस विज्ञान के मापदण्ड हैं, उनकी नामावली इस प्रकार हैं—

१—पाठ
२—मूल पाठ
३—पाठविज्ञान
४—पाठालोचन
५—प्रति
६—मूलप्रति
७—प्रथम प्रति
८—प्रतिलिपि
९—आदर्श प्रति
१०—पुष्पिका
११—सारग्रन्थ
१२—समान पाठ
१३—प्रतिलिपिकार
१४—पोथी या पुस्तक
१५—सूत्र
१६—हाशिया
१७—विशिष्ट चिह्न
१८—अनुमानित या कल्पित पाठ
१९—अलंकृत पाठ
२०—कठिनतर पाठ
२१—भ्रष्ट पाठ
२२—सामग्री संकलन
२३—मिलान
२४—पाठ मिश्रण
२५—पाठ व्यत्यय
२६—सूची साहित्य
२६—लेखन सामग्री
२८—पुनर्निर्माण क्रिया
२९—उपपुनर्निर्माण
३०—पाठान्तर
३१—शोध या शुद्धिपत्र
३२—वंशवृक्ष
३३—परम्परित प्रति
३४—काल्पनिक मूलादर्श
३५—पाठ वृद्धि
३६—विद्यमान प्रति
३७—असंगतियां या असम्भावनाएं
३८—विषयानुसंगति और लेखानुसंगति
३९—पाठ सुधार
४०—प्रशस्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) **पाठ**—पाठ से हमारा तात्पर्य किसी कृति के लेखन से है। किसी लेखक की कोई भी कृति किसी भी अवस्था में हमें मिल जाए, उसकी प्रतिलिपि प्राप्त हो जाए या अन्य हस्तलिखित कोई भी पुरातन रचना हाथ लग जाये या रचना की प्रतिलिपि या प्रतिलिपि की प्रतिलिपि मिल जाए, शिलालेख, प्रतिलेख आदि सबके मूल लेखन को हम पाठ (Text) कहेंगे।

(२) **मूल पाठ**—जो पाठ मूल लेखक का होता है जिस पर आलोचक अन्तिम रूप से पहुंचता है, यही पाठ प्राप्त करना सम्पादक का अभीष्ट कार्य होता है। यह सर्वोत्तम होता है और अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्तों से संवारा, संजोया तथा प्रतिपादित किया जाता है। इसको अंग्रेजी भाषा में Original Text कहते हैं। यही मूल लेखक का अभीष्ट पाठ होता है। यह सम्पादक को अपनी सब क्रियाओं के बाद में प्राप्त होता है। इसी पाठ की प्राप्ति के लिये सम्पादक को सारे वैज्ञानिक सिद्धान्त, जिन पर क्रमशः आगे प्रकाश डाला जायेगा, अपनाने पड़ते हैं। यही पाठविज्ञान का अभीष्ट विषय होता है। यथा महाभारत का आदि पर्व, सुकथांकर का रामचरित मानस का सम्पादन।

(३) **पाठविज्ञान**—पाठ सम्बन्धी सम्पूर्ण समस्याओं का सम्यक् विवेचन करने वाले विधिवत् शास्त्रीय ज्ञान को कहेंगे। इस विज्ञान में मूल पाठ के पुनर्निर्माण की क्रिया होती है जो अनेक विकल्पों तथा विकृतियों से पाठ को मुक्त कर शुद्ध पाठ की ओर अग्रसर करती है। पाठ सम्बन्धी अनेक वैज्ञानिक क्रियाओं का इसमें समावेश होता है। इसके अतिरिक्त देश, काल और पात्र के आधार पर हुई पाठ-विकृतियों का पूर्ण विवेचन होता है। लिपिज्ञान भी इसमें आ जाता है। काव्य के अनेक रूप से इसका सम्बन्ध है तथा विशेष रूप से उन दिवंगत विद्वान कवियों की रचनाओं के मूल पाठ की वैज्ञानिक गवेषणा कर यह उनके मूल पाठ का पुनरुद्धार करता है। अतः इसे हम विज्ञान कह सकते हैं।

(४) **पाठालोचन**—पाठविज्ञान के स्थान पर पहिले इसी शब्द का प्रयोग होता था। इसमें पाठ की आलोचना भी समाविष्ट थी। पहिले यह शब्द पाठविज्ञान के लिए रूढ़ था। इसमें भी पाठ के सम्पादन करने के सिद्धान्तों का आलेखन होता था। डा० एस० एम० कत्रे, पोस्टगेट आदि विद्वानों ने अपने ग्रंथों का नाम Textual criticism ही रखा है। जो हो पाठविज्ञान और पाठालोचन दो अन्योन्याश्रित शब्द हैं। यों पाठालोचन शब्द के अर्थ से यह स्पष्ट होता है कि पाठ सम्बन्धी सम्पूर्ण समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाले इस शास्त्र को पाठालोचन कहते हैं। पाठविज्ञान पाठालोचन ही है। पाठ के आगे जुड़े विज्ञान शब्द ने यह और भी स्पष्ट कर दिया है कि यह पाठ समस्याओं पर वैज्ञानिक रूप से प्रकाश डाल कर विधिवत् वर्गीकरण करने वाला शास्त्र है। साहित्यालोचन की तरह कला, कल्पना, भाव आदि की दृष्टि से पाठ पर विचार नहीं करता अपितु उसके विकल्पों के आधार पर उसके मूल पाठ को निकालता है। संक्षेप में दोनों—पाठालोचन और पाठविज्ञान एक ही शब्द के पर्यायवाची हैं। उदाहरणार्थ—Postegate की on Textual Criticism तथा एस० एम० कत्रे की Introduction to Indian Textual Criticism. पुस्तकें विशेष रूप से पठनीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) प्रति--प्रति से तात्पर्य किसी रचना से है। वह चाहे प्राचीन हो चाहे नवीन। कुछ प्रतियाँ बहुत पुरानी होती हैं। वही पाठ सम्पादन के उपयुक्त होती हैं। प्राचीन कवियों की जितनी रचनाएँ हमें मिलती हैं उनको ग्रन्थ, पोथी, पुस्तक आदि नामों से विभूषित किया जाता था। यह प्रतियां कागज, लकड़ी, ताड़पत्र, भोजपत्र आदि पर मिलती हैं।

(६) मूल प्रति--इस प्रति से अर्थ लेखक की मूल प्रति से है जो स्वयं लेखक द्वारा लिखी अथवा लिखाई गई हो। यदि लेखक अपनी ही अध्यक्षता में किसी रचना को लिखाता है तो वह भी मूल प्रति ही होगी। या उपलब्ध प्रतियों के पारस्परिक मिलान के द्वारा जहां तक संभव हो उसके मौलिक तथा प्राचीनतम रूप निश्चित करने वाली प्रति से है। मूल प्रति से हमारा अभिप्राय प्रति के उस रूप से है जो लेखक को अभीष्ट था। अतः रचयिता द्वारा लिपिबद्ध की हुई या अपने निरीक्षण में लिपिबद्ध करवा कर शुद्ध की हुई प्रति ही मूल प्रति होती है। पाठ-सम्पादक इसी प्रति के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। इसको अंग्रेजी में autograph कहते हैं। सम्पादक इसी प्रति के लिये सम्पादक के अनन्यतम सिद्धान्तों का प्रयोग करता है। यही उसका मूल लक्ष्य होता है। यह स्वयं लेखक की हस्तलिखित प्रति होती है।

(७) प्रथम प्रति--Immediate copy यह वह प्रति है जो कि मूल लेखक की मूल प्रति द्वारा तैयार की जाती है। यह प्रति बड़े महत्व की है। यदि किसी मूल प्रति से कई प्रतियां की जायें तो उन सभी को प्रथम प्रति की संज्ञा ही दी जायेगी। मूल प्रति से जो पहली बार लिखी जाये। जिसको लिपिबद्ध या तो कोई लेखक करे या प्रतिलिपिकार करे अथवा स्वयं लेखक भी कभी-कभी अपने समय में उसे तैयार कराये तो वे सब प्रथम प्रतियां ही कही जायेंगी। हमारे देश में पुस्तकों की प्रथम प्रतियां बहुधा मिल जाती हैं। वेद, महाभारत से लेकर मानस तक के पाठों के पुनरुद्धार में प्रथम प्रतियां मिली हैं। देशकाल पात्र तथा अन्य कारणों से उनमें टूट-फूट या त्रुटियों का होना संभव है। यह प्रति मूल पाठ की प्रति कराने में बड़ी महत्वपूर्ण है। इसको अंग्रेजी में Immediate copy भी कहते हैं। एक ही साथ एक ही मूल प्रति होनी वाली चाहे अनेकों प्रतियां भी हों वे सब प्रथम प्रतियां ही कहलाएंगी। उदाहरणार्थ पाषाणों तथा शिलाओं पर उत्कीर्ण लेख तथा ताम्रपत्र आदि प्रथम प्रति में समाविष्ट किये जा सकते हैं—पिप्रावा के बौद्ध शिलालेख, बडली ग्राम (अजमेर) के शिलालेख तथा चौहान राजा विग्रह-राज चतुर्थ और उसके राजकवि सोमेश्वर द्वारा लिखित नाटकों के अंश जो बीजोल्या के शिलालेख में हैं, उनकी जो प्रतिलिपि की जायगी वह प्रथम प्रति होगी।

(८) प्रतिलिपि--वह है जो प्रथम पंक्ति की नकल हो और इसी परम्परा में हुई अनेकानेक प्रतिलिपियां सभी प्रतिलिपियां कहलायेंगी। भारत में प्रतिलिपि-परम्परा अनेक वर्षों से रही है। इस देश को अनेक विद्वानों और महाकवियों को जन्म देने का श्रेय प्राप्त है। अतः उन ग्रंथों की प्रतिलिपियों द्वारा आज भी कई व्यक्ति अपना जीवनयापन तक कर रहे हैं। उदाहरणार्थ तुलसी की राजापुर वाली प्रति। अतः ये मूल तन्तु हैं जो हमें मूल पाठ की ओर पहुंचाते हैं। इनमें अनेक विकल्प रहते हैं, उन्हीं विकल्पों को दृष्टि में रखकर पाठालोचन आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ता है। वस्तुतः यह अपने आदर्श की साकार प्रतिमा होती है तथा इसमें किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आने पाता। परन्तु अनुभव से यह सिद्ध है कि प्रतियाँ आदर्शों से अधिक अशुद्ध होती हैं अतः कम विश्वनीय हो जाती हैं। सच्ची प्रतिलिपि अक्षर-अक्षर वर्ण-वर्ण तथा मात्रा-मात्रा तक की होती हैं और प्रतिलिपिकार को मक्षिका स्थाने मक्षिका का सिद्धान्त मानना पड़ता है। अंग्रेजी में इसे True copy या copy कहते हैं। हमारे देश में शुद्ध प्रतिलिपियां बहुत कम पाई जाती हैं। अतः सम्पादक उस परम्परा की प्रतिलिपियों की प्रतिलिपियां ही प्राप्त कर पाते हैं। उदाहरणार्थ भारत में मानस, सूरसागर आदि की अनेक प्रतिलिपियां मिलती हैं। यह सही है कि प्रतिलिपि आदर्श का सही रूप होता है पर ज्यों ज्यों प्रतिलिपि मूल या प्रथम प्रति से दूर होती जाती है वैसे ही वैसे उसमें अनेक अशुद्धियां बढ़ती जाती हैं क्योंकि मूल की त्रुटियां तो लिपिकार को यथावत् उतारनी ही पड़ती हैं पर साथ ही प्रतिलिपिकार द्वारा लेखनभ्रम, दृष्टि-भ्रम तथा देशकाल की परिस्थिति आदि से अनेक सचेष्ट-निश्चेष्ट अशुद्धियां हो जाती हैं। कभी कभी तो प्रतिलिपियों में स्वयं प्रतिलिपिकार भी अपनी ओर से प्रक्षेप आदि कर देता है, रिक्त स्थान की पूर्ति कर देता है तथा कुछ अपना दे देता है। यह लोभ वह संवरण नहीं कर सकता। लिखते समय भी उसके हाथ से अनेक त्रुटियां होना स्वाभाविक है। अतः प्रतिलिपियां इस तरह दुहरी अशुद्धियां प्राप्त कर लेती हैं। और तब हमारे लिए उनकी परंपरा निश्चित करना थोड़ा कठिन हो जाता है। यथा—रामचरित मानस की सं० १७२१ की प्रतिलिपि संवत् १७६२ वाली प्रति है।[1] इस तरह यह निष्कर्ष निकला कि प्रतिलिपि में दो प्रकार की अशुद्धियां होती हैं:—निजी अशुद्धियाँ तथा परम्परागत अशुद्धियां, इनको एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं।

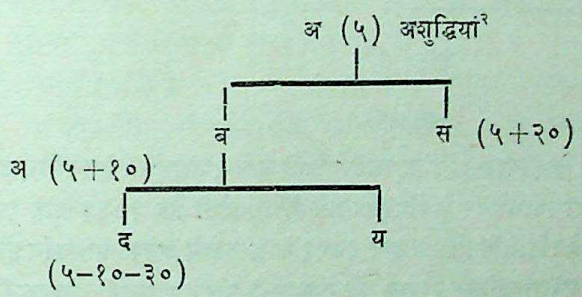

अर्थात् मूल प्रति अ हो तो, ब, स, द, य उसकी प्रतिलिपयां हुईं। इनमें दोनों प्रकार की अशुद्धियां चल रही हैं यथा यदि अ में ५ अशुद्धियां थीं तो उसकी ब और स प्रतिलिपियों में क्रमशः परंपरागत अशुद्धियां ५ तथा निजी १०–१५ तथा ५–२०–२५ अशुद्धियां हो गईं। इसी प्रकार

---

१. देखिए—रामचरित मानस का पाठ; डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २२-२३।

२. संख्या सूचक अंक अशुद्धियों के द्योतक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरी श्रेणी में परंपरागत १५ और निजी ३०–४५ त्रुटियां हुईं। इस तरह प्रतिलिपियों में अशुद्धियों का क्रम बढ़ता जाता है।

(९) **आदर्श प्रति**––किसी भी प्रति को देखकर उसकी जो प्रतिलिपि की जाती है तो वह प्रति उस प्रतिलिपि का आदर्श कहलाती है। यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रति मूल प्रति हो या प्रथम प्रति। मूल और प्रथम प्रति के पश्चात् होने वाली अनेक प्रतिलिपियों की प्रतिलिपियां की जायें तो वे प्रतिलपियां अपनी अलग अलग की गई प्रतिलिपियों की क्रमशः आदर्श बनने वाली प्रति को सीमाओं में नहीं बांध सकती। आदर्श का सीधा सम्बन्ध उसकी होने वाली प्रति या प्रतियों से है। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि आदर्श अपनी प्रतिलिपियों से अधिक विश्वसनीय होता है।

वस्तुतः मुद्रण-कला के अभाव में भी प्रतिलिपियां होती थीं। लेखन-कला हमारे देश की प्रसिद्ध कलाओं में से है। आदर्शों का महत्व उस समय भी उतना ही अधिक था जितना आज है। यद्यपि उस समय पाठविज्ञान या पाठ की आलोचना करने के सिद्धान्त नहीं बने थे। आदर्श की सुरक्षा के लिए ही बड़े विद्वान या पंडित अपनी प्रतिलिपि की प्रतिलिपि कराते थे ताकि आदर्श प्रतियों की रक्षा हो सके। मुद्रण-यंत्रों की सुविधा होने से आज एक ही आदर्श की अनेकों प्रतिलिपियां एक ही साथ सहज ही में की जा सकती हैं जब कि उस समय यह सुविधा नहीं थी तो भी आदर्श का मूल्य करना पुरातन लेखक जानते थे। आदर्श को अंग्रेजी में examplar कहते हैं।

-उदाहरणार्थ मानस की सं० १७२१ वाली प्रति सं० १७६२ वाली प्रति का आदर्श कहलायेगी।

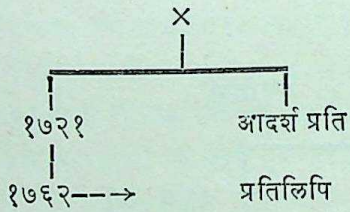

जैसा कि आदर्श के लिए स्पष्ट है कि वह प्रतिलिपि से अधिक शुद्ध होता है इसलिए उसका प्रतिलिपि से पहिले का होना स्वाभाविक है और होता भी है, पर जैसा कि १७२१ और १७६२ वाली प्रतियों से स्पष्ट है कि प्रतिलिपि होने के बाद १७२१ के आदर्श में अनेक परिवर्तन होने से उसका पाठ प्रतिलिपि की अपेक्षा अधिक विकृत हो गया है।[1] इसलिए इसकी विश्वसनीयता अविश्वसनीयता में अपवाद स्वरूप काम करते हैं। इस तरह आदर्श की प्रतिलिपि में अशुद्धि साम्य भी हुआ है[2] और शुद्धि वैषम्य भी।

उदाहरणार्थ ––

सामान्य पाठ है––तापर रुचिर मृदुल मृगछाला[3]।

---

१. रामचरित मानस का पाठ; डा० गुप्त, पृ० १८।

२. वही ग्रंथ, पृ० २४। ३. वही ग्रन्थ, वही पृष्ठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १७२१ आदर्श—रुचिर मृदुल के स्थान पर रुचि मृदुरत्म लिख गया है, और १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है। तो यह दोनों का अशुद्धि साम्य हुआ। अतः इस अशुद्धि साम्य से यह स्पष्ट होता है कि १७२१ वाली प्रति निश्चित ही १७६२ का आदर्श है। आदर्श का तात्पर्य प्रतिलिपि सम्बन्ध होता है। पर १७६२ की प्रतिलिपि होने के बाद आदर्श १७२१ में कितना परिवर्तन हुआ है उसको हम निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट कर सकते हैं:—

(१) यहां भानु कुल कमल दिवाकर—दोनों में पूर्व का पाठ था। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर, पर पीछे से १७२१ में मनोहर के स्थान पर—पाठ सुधाकर—कर दिया गया। नगर के साथ सुधाकर एकदम असंगत है।

(२) तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा—सामान्य पाठ—बौराहा तथा दाहा के स्थान पर १७२१ में क्रमशः बौरहा तथा दहा कर दिया गया है। इस प्रकार प्रतिलिपि होने के बाद आदर्श के पाठ विकृत होने के सबल प्रमाण स्पष्ट हैं।[1]

निष्कर्षतः शुद्धि वैषम्य और अशुद्धि साम्य के अनुसार आदर्श या प्रतिलिपि-सम्बन्ध में दो बातें रहती हैं:—

(१) काल—(१७२१–१७६२)

(२) स्थल—(पाठ)

अस्तु, आदर्श का विश्लेषण स्पष्ट है।

(१०) पुष्पिका—भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थों, पुस्तकों तथा पोथियों में यह परम्परा रही है कि ग्रन्थ की समाप्ति पर तिथि, संवत्, दिन, प्रतिलिपिकार का नाम, स्थान तथा अन्य विवेचन का परिचय दिया जाये। इस विवेचन का नाम ही पुष्पिका है। यह बड़ी महत्वपूर्ण होती है। इसी के आधार पर पोथी का जन्मकाल तथा लेखक या रचयिता का निर्धारण किया जा सकता है। पुष्पिकाएं दो प्रकार की हो सकती हैं—

(अ) संपूर्ण ग्रन्थ के अन्त में विस्तार सहित दी गई हो अथवा संक्षेप में हो—यथा, बीसलदेव रास के पंडित समूह की पहली प्रति के अन्त में दिया हुआ यह विवेचन पुष्पिका है:—

॥ २४६ ॥ इति श्री बीसलदेव रास समाप्तं[2] ॥१॥

सं० १६३३ वर्षे वैशाख बदि ११ दिने। आदित्य वारे। लिषतं आगरा मधे पं० सीहा लिषतं ॥ संपूर्ण ॥छ॥१॥

(ब) ग्रन्थ के प्रत्येक सर्ग या काण्ड या खण्ड के अन्त में विस्तृत या अविस्तृत दी गई हो—यथा—रामचरित मानस में—आरण्य तथा किष्किन्धा कांडों की पुष्पिकाएं क्रमशः इस प्रकार हैं:—

---

१. देखिए मानस का पाठ भूमिका पृ० २५।

२. देखिए बीसलदेव रास – भूमिका; डा० माताप्रसाद गुप्त, श्रीअगरचंद नाहटा द्वारा संपादित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—॥ संवत् १७०४ सए पउष शुदी अष्टमी लिखितं रघु तीवारी कास्यां ॥[1]

२—॥ संवत् १७०४ समए पउष शुदी द्वादसी लिखितं रघु तीवारी कास्यां ॥

इन पुष्पिकाओं को क्रमशः पूर्ण तथा अपूर्ण भी कह सकते हैं। इसको अंग्रेजी में Colophone कहते हैं।

जाली पुष्पिका—कहीं कहीं प्रतिलिपिकार प्रक्षेप की दृष्टि से अथवा स्वयं का महत्व सिद्ध करने की कोशिश से या प्रति को प्राचीनतम या मूल लेखक के समीप सिद्ध करने की इच्छा से पुष्पिका को बदल भी देते हैं। ऐसी पुष्पिका एकदम जाली या अविश्वसनीय कही जाती है। जाली पुष्पिका एकदम पकड़ी जा सकती है। इसमें नाम भी बदला जा सकता है और अंक भी।[2] जाली पुष्पिका का उदाहरण देखिए—

॥ संवत १६६५ समए अग्रहन सुदि प्रतिपदा लिखितं तुलसी दाशेन ॥

किन्तु बाद में १६६५ के ऊपर कुछ हल्की सी स्याही से १७०४ तथा तुलसी दाशेन के ऊपर उसी प्रकार—रघु तीवारी—कर दिया गया है।[3] पर यह क्रियाएं भद्दे प्रकार से होने से सहज ही पकड़ी जा सकती हैं और वह लिखावट अब भी प्रयास करने से पढ़ी जा सकती है।

(११) सार ग्रन्थ—ये ग्रन्थ वे होते हैं जिनमें बड़े बड़े ग्रन्थों का सार भाग होता है। इनको मूल ग्रन्थ भी कहते हैं। इनमें सूत्र पद्धति है और ये समासात्मता तथा संक्षिप्तता लिए रहते हैं। पाठालोचक को इन ग्रन्थों के देखने में मूल से सार और सार से मूल की ओर आना पड़ता है, यह उसके बड़े सहायक हैं। सम्पादन कार्य में ये ग्रन्थ बड़े उपयोगी हैं।

यह ग्रन्थ तत्कालीन स्थिति पर सार रूप से प्रकाश डालते हैं तथा बड़े बड़े-ग्रन्थों का सार भाग इनमें सुरक्षित कर दिया जाता है। बड़े ग्रन्थों के खो जाने, नष्ट हो जाने तथा अन्य कारणों से न मिलने पर ये ग्रन्थ पाठविज्ञान की सहायक सामग्री के लिये बड़े ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

उदाहरणार्थ—काश्मीर के कवि क्षेमेन्द्र की भारत मंजरी—महाभारत की काश्मीरी धारा का सार मात्र है।[4] इसमें हमें काश्मीर की तत्कालीन परिस्थिति ज्ञात होती है। इसी प्रकार—

(१) रामायण मंजरी—

(२) अभिनंद का कादम्बरी कथासार आदि अनेक सार ग्रंथ हैं। हिन्दी साहित्य में सार ग्रन्थों की परम्परा कम मिलती है।

(१२) समान पाठ—यह पाठ सम्पादन में बड़ी सहायता करता है। एक समान परम्परा में जो प्रतियां मिलती हैं उनमें जो पाठ मिलता है, मिलान करते समय उनमें जो साम्य मिलता है, वही ग्राह्य होता है। उदाहरणार्थ हमारे पुराण तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ

---

१. रामचरित मानस का पाठ—भूमिका : प्रतियों की बहिरंग परीक्षा।

२. देखिए पुस्तक का अध्याय।

३. प्रतियों की बहिरंग परीक्षा भूमिका भाग; मानस का पाठ, पृ० १२।

४. भारतीय सम्पादन शास्त्र—मूलराज जैन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही ग्रन्थ से नहीं, एक ही वंश से नहीं, एक ही परम्परा से नहीं, विभिन्न ग्रन्थों, विभिन्न वंशों तथा विभिन्न परम्पराओं से निर्मित हुए हैं। ऐसा होने से उनमें अनेक विकल्पों का होना स्वाभाविक है। जिन प्रतियों में इस प्रकार के विकल्पों का समावेश होता है उनमें भी जो पाठ साम्य या समानवृत्त या प्रकरण-साम्य है वही समान पाठ कहलाता है। अनेक पाठ-व्यत्यय होने पर भी यह समानता सुरक्षित रहती है। समान पाठ[1] की एक परम्परा विशेष होती है। विद्यमान तथा अविद्यमान प्रतियों का पाठ-निर्माण इसी साम्य के आधार पर आलोचक को करना पड़ता है। पाठ के पुनर्निर्माण में यह वस्तुतः पाठालोचन का एक मूलभूत सिद्धान्त मान लिया गया है। जो पाठ बहुधा सब प्रतियों में या एक ही परम्परा की विभिन्न प्रतियों या विभिन्न परम्पराओं, श्रेणियों, वर्गों या वंशों में समान रूप से पाया जाये वह ग्राह्य होता है। उदाहरणार्थ—रामचरित मानस के पाठ में भी १७२१, १७६२, १६८१, १७०४ आदि प्रतियों में जो पाठ समान रूप से पाया गया है उसे डा० गुप्त ने वैज्ञानिक समझ कर ग्रहण किया है।[2] इस काल्पनिक उदाहरण से यह पाठ स्पष्ट हो जायगा।

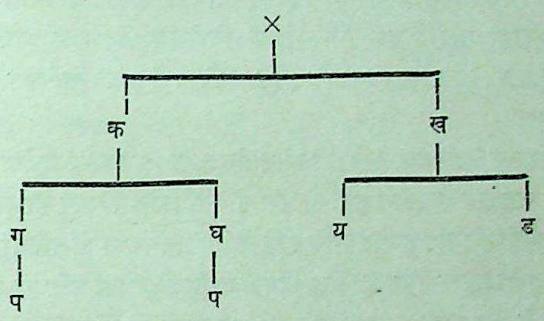

इसमें यदि क, ग, प में पाठ-साम्य हुआ तो वह समान रूप से ग्राह्य होगा और यदि घ, य, ङ में भी विभिन्नता होने पर भी जो साम्य होगा वह ग्राह्य होगा। अतः समान पाठ इसी पाठ-साम्य के हेतु रूढ़ है।

(१३) **प्रतिलिपिकार**—प्रतियों की प्रतिलिपियां करने वाले को प्रतिलिपिकार कहते हैं। प्रतिलिपि का कार्य हमारे देश में आदिकाल से होता चला आ रहा है। ज्ञात रूप से वि० पू० ४ शताब्दी में इन्हें लिपिकर अथवा लिपिकार लिबिकर[3] नाम से सम्बोधित किया जाता था—इतना ही नहीं यह परम्परा आगे भी चलती रही और वि० की ७-८वीं शताब्दी में इनको दिविर-पति अथवा फारसी दबीर कहते थे। आगे चलकर ११वीं शताब्दी में प्रतिलिपिकारों की एक जाति

---

१. भारतीय सम्पादन शास्त्र, पुनर्निर्माण।

२. रामचरित मानस का पाठ, भूमिका भाग—

३. भारतीय सम्पादन शास्त्र, अध्याय द्वितीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही हो गई जिसे कायस्थ नाम दिया गया जो आज सम्पूर्ण भारत में शिक्षित तथा एक विशिष्ट जाति है।

केवल प्रतियों से प्रतिलिपि करने वाले ही प्रतिलिपिकार नहीं कहलाये अपितु शिलालेखों और ताम्रपात्रों के उत्कीर्णकों को भी प्रतिलिपिकार की ही दृष्टि से देखा जाता था। हां, उनका अन्तर स्पष्ट करने के लिए नामों में विभिन्नता कर दी गई और ये करण करणक करणिन, शासनिक तथा धर्म लेखिन आदि नामों की संज्ञा से विभूषित थे।

यदि देखा जाय तो इस परम्परा की उत्तरोत्तर वृद्धि जैन भिक्षुओं और यतियों से बहुत हुई है। उन्होंने न केवल जैन साहित्य को ही लिपिबद्ध किया अपितु जैनेतर साहित्य को भी अपने कठिन परिश्रम से जीवित रक्खा। भारतीय लौकिक और धार्मिक साहित्य को जीवित रखने का बहुत कुछ श्रेय इन मुनियों को ही है क्योंकि इन्होंने भारतीय साहित्य के सृजन, रक्षण और प्रचार-प्रसार में पर्याप्त योग दिया है। इन प्रतिलिपिकारों का आदर्श इनके गुरुओं की प्रतियाँ होती थीं। मोटे रूप में लिपिकार दो प्रकार के होते थे—

(१) वे जो स्वयं रचयिता के निरीक्षण अथवा किसी विद्वान प्रतिनिधि के निरीक्षण में अथवा विद्याप्रेमी राजा और उसके विद्वानों के निरीक्षण में काम करते थे—यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि ऐसे लिपिकारों द्वारा लिपिकृत कार्य पर्याप्त शुद्ध होता था।

(२) द्वितीय प्रकार के लिपिकार वे थे जो आजीविका मात्र समझकर अर्जनार्थ प्रतिलिपि किया करते थे। अतः यह आवश्यक नहीं था कि ये लिपिकार विद्वान ही हों। अधिक विद्वान प्रतिलिपिकारों की प्रति में दोष अधिक हो जाते हैं क्योंकि उनमें प्रतियों की भूलों को ठीक करने का प्रबल प्रयास होता है। अतः कम पढ़ा-लिखा अपनी प्रति को अत्यन्त श्रद्धा और अंधभक्ति से देखने वाला प्रतिलिपिकार लगभग अच्छा समझा जाता है। इनके गुण दोषों के आधार पर ही उनका नामकरण भी किया जा सकता है। आदर्श प्रतिलिपिकार[1] के गुणों पर हम आगे प्रकाश डालेंगे। हमारे अनेक प्राचीन ग्रन्थों में भी इनके गुणों और प्रतिलिपिकार के कार्य पर प्रकाश डाला गया है।[2]

इस प्रकार भारतीय साहित्य की आज तक रक्षा मुद्रण यंत्र के अभाव में इन्हीं प्रतिलिपिकारों द्वारा हुई है।

(१४) पोथी या पुस्तक—पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों को पुस्तक या पोथी कहते हैं। हमारे देश में अनेक कारणों से इन पोथियों का अभाव है परन्तु फिर भी जो मिलती हैं वे अत्यन्त पुरानी हैं। इन पोथियों के विकास की भी एक मजेदार कहानी है क्योंकि इनका उद्धार देशी,

---

१. देखिए मत्स्य पुराण—अध्याय १८९।

२. भारतीय सम्पादन शास्त्र—मूलराज जैन, अध्याय २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी विद्वानों द्वारा पंसारियों की दुकानों से, पुराने खंडहरों, भांडागारों आदि से किया गया है जिनमें तालपत्र, भोजपत्र, चर्म, लकड़ी, ताम्र, चांदी, कपड़ा, कागज आदि हैं।

ये पोथियां अनेक प्रकार की पाई जाती हैं। इनकी बनावट भी विभिन्न कालों में बड़ी विलक्षण होती थी। यही हस्तलिखित ग्रन्थ हमारे पाठविज्ञान की निधि हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन पोथियों के जन्म तथा जीर्णोद्धार पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है।[1] इन पोथियों के माध्यम से भारतीय प्राचीन लेखनकला तथा भारतीय लिपियों का विकास स्पष्ट देखा जा सकता है।

(१५) सूत्र (String)—पाठ विज्ञान में यह शब्द बहुधा बहुत ही प्राचीन काल से प्रयुक्त होता था। ताड़पत्र तथा भोजपत्र की पुरानी पोथियों को संलग्न रखने तथा परस्पर जोड़ने के लिए उनमें छेद करके जो सूत्र (धागा) पिरोया जाता था उसे सूत्र या सार-यंत्रक कहते थे।[2] ये सूत्र प्रायः मध्य में पिरोये जाते थे पर कुछ परम्परा विशेषतः काशगर के आदर्शों पर बाईं ओर या बाईं तथा दाईं और एक एक छिद्र किया जाता था जिनमें से होकर धागा (सूत्र या सार यंत्रक) पत्रों को एक साथ बांध कर पिरोया जाता था।

साहित्य की मौलिक परम्परा के अनुसार विद्या के पुस्तकालय मस्तिष्क और स्मृति ही थे। अतः आगे चलकर इस साहित्य की एक सूत्र-शैली भी प्रचलित हो गई जो सूत्र या संक्षिप्त मात्र कहलाई। यह न केवल साहित्य में थी अपितु ज्योतिष, वैद्यक, अंकगणित, बीजगणित आदि सब विषयों में थी। अतः सूत्र शब्द से एक पाठालोचन को दोनों अर्थों में परिचित होना आवश्यक है।

(१६) हाशिया (Margin)—पाठालोचन में हाशिए का विशिष्ट महत्व है। यह ग्रन्थ या पोथी के दायें बायें कभी कभी ऊपर-नीचे कुछ खाली स्थान रखकर रखा जाता है जिसमें विशिष्ट बातों, सूचनाओं, विशेष चिह्नों आदि का समावेश हो सके।

(शेष अगले अंक में)

---

१. देखिए अशोक के फूल; डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १०२-११२।

२. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; पुरानीपोथियां, पृ० १०८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री मायाप्रसाद त्रिपाठी, एम०ए०

दिङ्नागाचार्य और उनकी 'कुन्दमाला'—१

संस्कृत-साहित्य के अनुसंधान और अध्ययन की दिशा में पर्याप्त उन्नति हो चुकी है। आज भी बहुसंख्यक लोग सतत वर्द्धमान उत्साह से इस कार्य में जुटे से दिखाई पड़ते हैं। पर यह बड़ी ही विस्मयावह बात है कि अभी तक न तो कुन्दमाला नाटक का सम्यक् अनुशीलन ही प्रस्तुत किया जा सका है और न तो उसके विषय में अनुसंधान ही पूरा हो पाया है। यही कथन उसके प्रणयन-कर्त्ता के विषय में भी पूर्ण रूप से घटित होता है! इस अन्धकार-प्रच्छन्नता से उत्पन्न कौतूहल, जिज्ञासा तथा कुन्दमाला की सर्वांग सुन्दरता एवं अनूठापन परम रमणीय रहस्योन्मीलन की ओर प्रेरित और प्रवृत्त करते हैं। सहृदय विद्वानों और सामान्य संस्कृतज्ञ-वर्ग में इसका भास, कालिदास और भवभूति जैसा प्रचार न होने का कारण यह है कि अभी तक इसकी जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं वे सभी खण्डित हैं। केवल येन केन प्रकारेण बड़े परिश्रम के पश्चात् उनकी सहायता से अभी तक इसके दो संस्करण हो पाये हैं—पहला १९२३ में मद्रास से रामकृष्ण कवि तथा रामनाथ शास्त्री द्वारा संपादित दूसरा जयचन्द्र शास्त्री द्वारा संपादित तथा मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित (१९२९)। जयचन्द्र शास्त्री के संपादित संस्करण में बहुत ही सुन्दर संस्कृत टीका भी दी हुई है।

नाटक के आरम्भ में सूत्रधार की उद्घोषणा से यह निर्विवाद सिद्ध है कि कुन्दमाला नाटक कवि दिङ्नाग की कृति है। किन्तु कवि दिङ्नाथ वा दिङ्नागाचार्य के काल और जन्मस्थान के सम्बन्ध में बहुत से मतमतान्तर प्रचलित होने के कारण उक्त विषय में बहुत पर्यान्वेषण और पर्यालोचन अपेक्षित है।

कुछ लोग इन्हें चतुर्थ-पंचम शती का और कुछ लोग दशम शताब्दी का बतलाते हैं! वैसे तो कुन्दमाला का उल्लेख विश्वनाथ के साहित्यदर्पण और भोजदेव के शृंगारप्रकाश में भी है, किन्तु इसकी सर्वप्रथम चर्चा रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र प्रणीत नाट्य-दर्पण में आई है। इससे सिद्ध है कि ईसा की दशम शताब्दी तक इस नाट्य ग्रंथ का प्रणयन अवश्य हो चुका था।

परन्तु काल-निर्णय के सम्बन्ध में पर्याप्त निश्चित रूप से कुछ कहने के प्रथम इस प्रश्न पर विचार करना अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि कवि दिङ्नाग और बौद्ध मतावलम्बी उद्भट तार्किक दिङ्नाग दो व्यक्ति थे अथवा एक ही व्यक्ति! इस संदर्भ में अधोलिखित बातें विचारणीय हैं:—

१. कम से कम जातककाल से ही (देखिए जातक) बौद्धों में रामकथा का पर्याप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार और आदर था। अतएव यदि बौद्ध दिङ्नाग ने रामकथा को अपने नाटक का वर्ण्य विषय चुना तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं! अन्य बौद्ध पण्डितों ने भी रामकथा को पर्याप्त महत्व और प्रतिष्ठा प्रदान की थी। छठीं शती के आसपास के बौद्ध कुमारदास ने संस्कृत में ही "जानकी हरण" नाम के महाकाव्य का प्रणयन किया है।

२. बौद्ध दिङ्नाग का जन्मना ब्राह्मण होना तो पूर्णतया सिद्ध है। संस्कृत नाटककार दिङ्नाग भी अवश्यमेव ब्राह्मण रहे होंगे! अतएव दोनों एक ही व्यक्ति माने जा सकते हैं।

इस प्रकार यह सोचा जा सकता है कि दिङ्नाग अपने जीवन में वैदिक और ब्राह्मणिक वाङ्मय पढ़ने के कदाचित् पीछे बौद्धधर्म में दीक्षित हुए थे और उसका अनुशीलन किया था। लगता है कि काव्य को तिलांजलि दे कर वे अपने जीवन के उत्तर-काल में तर्क और दर्शन में एकदम डूब से गये। कदाचित् इसी कारण उनकी लेखनी से कुन्दमाला को छोड़कर कोई दूसरा साहित्य-ग्रंथ नहीं प्रादुर्भूत हुआ।

३. बौद्ध विद्वान् दिङ्नाग का काल प्रायः निश्चित है। कुछ लोग जैसे देवस्थली[1] इन्हें चतुर्थ शती के आसपास का और कतिपय इतिहासमनीषी जैसे नलिनाक्षदत्त[2] इन्हें पंचम शती के कुछ इधर-उधर का मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि बौद्ध दिङ्नाग गुप्तकाल की शतियों के आस-पास हुए थे।

कुन्दमाला नाटक में (अंक ३–४) समीचीन वातावरण के लिये वैदिक या ब्राह्मणिक धर्म की रीति-प्रथाओं, आश्रम, यज्ञ, हवन आदि की अच्छी झलक उपस्थित की गई है। इससे एक निष्कर्ष यह भी निकाला जा सकता है कि उस समय बहुत सम्भव है ब्राह्मणिक धर्म बड़ी उन्नति पर था जिसकी ऐश्वर्यमत्ता के विभिन्न क्रिया-कलापों को कवि ने अपनी आंखों देखा था। कुन्दमाला के नान्दी-पाठ और सूत्रधार-वचन में इसी वातावरण का सूत्रारंभ दृष्टिगोचर होता है। उनमें गणेश और शिव की वन्दना की गई है। अतएव कवि और दार्शनिक दिङ्नाग का एक होना कोई असंगत नहीं!

दूसरे शब्दों में दिङ्नागाचार्य अपने आचार्यत्वकाल में परम बौद्ध थे, उस समय जनता और राजधर्म के सिंहासन पर वैदिक धर्म अधिष्ठित था। अतएव कवि और दार्शनिक दिङ्नाग का दोनों धर्मों (जीवन में बौद्ध और काव्य में वैदिक) को पूर्ण प्रतिष्ठा प्रदान करने में कोई विप्रतिपत्ति का विरोध नहीं दिखाई पड़ता। इस दशा में इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता कि कुन्दमाला की रचना कवि के जीवन के पूर्व भाग में हुई थी अथवा उत्तर भाग में?

४. कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में एक स्थल पर (पृ० ११७) तार्किकों की शैली में बिम्ब-

---

१. History of Indian People and culture; Edited by R. C. Majumdar. vol. III

२. Ibid

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिबिम्ब का संकीर्तन आया है। वह इंगित करता है कि बौद्ध तार्किक और नाटककार दिङ्नागाचार्य एक ही व्यक्ति थे।

५. कुन्दमाला में आश्रमादि की चित्रोपम झलक केवल भास और कालिदास (अंक १ से ४) में ही मिलती है। अतएव तीनों में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अविच्छिन्न प्रवाह के दर्शन होते हैं। यह प्रवाह कदाचित् ख्रीष्टाब्द के एक दो शताब्दी पूर्व से लेकर चार पाँच शताब्दी पश्चात् (गुप्त काल के पर्यवसान) तक चलता रहा। अतएव तीनों में चार पाँच तथा छः शताब्दी से अधिक अन्तर न होना चाहिए।

कथावस्तु के मूलतः बहुत कुछ एक रहते हुए भी भवभूति में आप्रतमादि की वैसी झलक नहीं मिलती है। ऐसा लगता है भवभूति परवर्त्ती काल में हुए थे जिसमें आश्रमादि की प्रथा और प्रभाव घटने लगा था!

६. कुन्दमाला की अन्तःरचना में भास के स्वप्नवासवदत्तम् और कालिदास के विक्रमोर्वशीयम् तथा शाकुन्तल के कई स्थलों से बहुत साम्य दिखाई पड़ता है——

(१) जिस प्रकार स्वप्नवासवदत्तम् (अंक ४) में उदयन विदूषक द्वारा लाये हुए जल से अपनी अश्रुपरिप्लुत आंखें धोते हैं उसी प्रकार कुन्दमाला में राम दीर्घिका के जल से अपने आँसू धोते हैं।

(२) स्वप्नवासवदत्तम् (अंक ५) में उदयन का वासवदत्ता से दैवात् और प्रायः अज्ञात समागम की बात को विदूषक स्वप्न बतलाता है, उसी प्रकार राम और अदृश्य सीता के क्षणिक मिलन को (कुन्द० अंक ४) विदूषक तिलोत्तमा की प्रवंचना कहता है।

(३) नैमिषारण्य में दीर्घिका के पास (कुन्दमाला अंक ४) सीता का मुनिप्रभाव से अदृग्गोचर होना उर्वशी की तिरस्कारिणी प्रच्छन्नता (विक्रमोर्वशीयम् अंक २) से मिलता है।

(४) वनदेवता द्वारा सीता को दिये हुए उत्तरीय की बात शकुन्तला को वृक्षों द्वारा दिये हुए 'क्षौम-वस्त्र' (शाकुन्तल अंक ४) के वृत्त से मिलती है।

(५) शकुन्तला का विरहिणी रूप (अंक ६) सीता के वियोग-खिन्न वेश से मिलता है (कुन्दमाला अंक ४, १४)।

(६) वेदवंती, यज्ञवती तथा यज्ञवेदी तीन मुनि-कन्या-चरित्रों की अवतारणा शाकुन्तल की प्रियंवदा, अनुसुइया की स्मृति दिलाती है।

(७) माधुर्य तथा प्रसाद गुणवती वैदर्भी रीति भास, कालिदास तथा दिङ्नाग की अविकल विशेषता है। इन सबसे आभासित होता है कि दिङ्नाग भास और कालिदास से प्रभावित हुए थे। भवभूति का उन पर कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है।

७. अति प्राचीन भास के नाटकों में नाटकारंभ की भूमिका को 'स्थापना' के नाम से अभिहित किया गया है, उसके स्थान में "प्रस्तावना" शब्द का प्रयोग कालान्तर में होने लगा था। (यद्यपि भास के नाटक कर्णभार में प्रस्तावना शब्द दृष्टिगोचर होता है।)

"The introduction is normally styled Shapana not as later prasta-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

vana, and it is extremely simple; after a Nandi, not preserved, has been pronounced perhaps behind the scene—the dircetor enters. utters a benediction, and is a about to make announcement when a sound is heard which leads upto the actual drama"—Sanskrit Drama; by A. B. Keith p. III 1954.

भास के नाटकों की भाँति ही कुन्दमाला की स्थापना भी बहुत सरल है।

भास के स्वप्न-वासवदत्तम् आदि नाटकों की स्थापना के आरंभ में एक वाक्य आता है "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" कुन्दमाला की भी स्थापना के आरंभ में यही वाक्य प्रयुक्त हुआ है।

जैसे अश्वघोष के नाटक शारिपुत्र-प्रकरण (शारद्वती पुत्र प्रकरण) के अंत में "भरत वाक्यं" भगवान बुद्ध के मुंह से कहाया गया है, नाट्यशास्त्र के परंपरागत विधान के अनुसार नाटक के नायक के मुख से नहीं।, उसी प्रकार कुन्दमाला में भरत-वाक्य का उच्चारण महर्षि वाल्मीकि करते हैं, नाटक के नायक राम नहीं। इससे यह भी द्योतित होता है कि दिङ्नागाचार्य ने अश्वघोष या प्राचीन दृष्टान्त का ही अनुकरण किया था। अतएव कुन्दमाला को अर्वाचीन न होना चाहिए।

इस सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है कि भरत-वाक्य का नाट्यशास्त्र द्वारा अविहित इस ढंग का प्रयोग केवल दो संस्कृत नाटकों में मिलता है। पहला भट्टनारायण (सातवीं शती का उत्तरार्ध) के वेणीसंहार में जिसमें युधिष्ठिर भरत-वाक्य का उच्चारण करते हैं, पर इस भरत-वाक्य में अश्वघोष और दिङ्नागाचार्य से कुछ विशेषता है, अतएव भट्टनारायण को दोनों से पीछे का होना चाहिये। उपर्युक्त अपवाद का दूसरा दृष्टान्त है प्रहलादन देव का "पार्थ पराक्रम"। इसमें भी भरत-वाक्य का पाठ "वासव" ने किया है, नाटक के नायक अर्जुन ने नहीं। किन्तु यह नाटक बारहवीं शती खीष्टाब्द का है। अतएव दिङ्नागाचार्य के निश्चित रूप से पूर्ववर्ती होने के कारण इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता कि उन्होंने पहलादन देव का अनुकरण किया होगा; प्रत्युत प्रहलादन देव ने कुन्दमालाकार या शारिपुत्रकार (अश्वघोष का) निःसंशय ही अनुकरण किया है। इन सबसे लगता है कि दिङ्नागाचार्य भास के अधिक समीप थे, उनसे विशेष प्रभावित थे और इस प्रकार उनकी कुन्दमाला को प्राचीन होना चाहिये, विशेषतया भवभूति की तुलना में।

८. यदि कृतित्व के कालानुक्रम के अनुसार संवर्धन की बात पर विचार किया जाये तो छः अंकों की कुन्दमाला और सात अंकों के उत्तररामचरित में बहुत कुछ उसी सम्बन्ध का आभास मिलता है जो भास के चार अंकोंवाले चारुदत्त और शूद्रक के दस अंकोंवाले 'मृच्छकटिक' में दिखाई पड़ता है। नाटक की अन्य बातों से भी ऐसा लगता है (जैसे दोनों में प्रथम और द्वितीय अंकों के बीच १२ वर्ष का व्यवधान) कि भवभूति ने दिङ्नागाचार्य से प्रेरणा प्राप्त की थी। दिङ्नागाचार्य के कथानक-ग्रथन का कौशल और चारुता ऐसी है, जो समस्त संस्कृत-साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अनुपम है। संस्कृत का कोई भी नाटककार इसकी तुलना नहीं कर सकता। अतएव इस बात का प्रश्न ही नहीं उठ सकता कि उन्होंने भवभूति से कुछ लिया होगा और उनसे प्रेरणा प्राप्त की होगी।

९. कुन्दमाला में प्रयुक्त प्राकृत की प्रौढ़ता पर विचार कर कई महोदयों ने "दशपदार्थी" की भूमिका में उसे चौथी - पाँचवीं शती की प्राकृत सिद्ध किया है।

१०. रही यह युक्ति कि प्रकाण्ड तर्कशास्त्री सफल सहृदय काव्यकार नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में तार्किक-प्रवर हर्ष और जयदेव का दृष्टान्त उद्धृत कर देना अलम् होगा। एक ने सुन्दर नैषधीय काव्य की रचना की है, दूसरे ने प्रसन्नराघव का प्रणयन किया है। प्रसन्नराघवकार के ही शब्दों में "तडित चन्द्रिकाचण्डातपयोरिव कवितार्किकत्वयोरेकाधिकरण-नामालोक्य विस्मितोऽस्मि।

सूत्रधार––इह विस्मयः

येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावतीभारती।
तेषां कर्कश तर्क वक्रचनोद्गारेऽपि किं हीयते।।
यैः कान्ता-कुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिताः।
तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः।।"

अर्थात् यहाँ चन्द्रिका तथा प्रचण्ड सूर्यरश्मि के समान कवि और तार्किक का एकत्र योग देखकर आश्चर्य होता है।

सूत्रधार––इसमें आश्चर्य क्या है?

जो कोमल काव्यरचना में पटु हैं और जिनका हाव-भावमयी वाणी पर अधिकार है, उनका कटु और नीरस तर्क की बातों को प्रस्फुटित करने में क्या घटता है? जिन्होंने अपनी प्रेयसी के कुच में अत्यन्त आनन्द में विभोर होकर नखदान किया है क्या वे मत्त हाथी के मस्तक को अपने तीर से नहीं बेध सकते?

इस मीमांसा से यही प्रतिपादित होता है कि बौद्ध तार्किक और नाटककार दिङ्नागाचार्य एक ही व्यक्ति थे। और इससे भी निश्चित यह बात लगती है कि वे भवभूति के अवश्यमेव पूर्व-वर्ती थे।

इस सम्बन्ध में एक बात और कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मेघदूत के १४वें छन्द में जो दिङ्नाग शब्द आया है वह हमारे तार्किक और दिङ्नागाचार्य का वाचक नहीं है।

जीवनवृत्त––तत्वसंग्रह की भूमिका के अनुसार दिङ्नागाचार्य का जन्म काञ्ची (कांजी-वरम्) के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। नागदत्त ने इन्हें पहले हीनयान में दीक्षित किया था और वात्सीपुत्रीय (सांमितीय) सम्प्रदाय के भिक्खु थे। तदनन्तर इन्होंने अपने पुराने सम्प्रदाय को छोड़कर वसुबन्ध का शिष्यत्व ग्रहण किया और महायान सम्प्रदाय की दीक्षा लेकर विज्ञान-वादी हो गये। ये सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने तर्कशास्त्र को सम्यक् और सुव्यवस्थित विज्ञान का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप प्रदान किया। इन्हें शास्त्रार्थ करने में बड़ा आनन्द आता था और यह उस कला में पूर्ण निष्णात थे। न्याय विषय के इनके रचे हुए आठ ग्रन्थ बताये जाते हैं, जिनमें छः इस प्रकार हैं:—

१. न्यायप्रवेश, २. प्रमाण-समुच्चय, ३. हेतुचक्रहमरु, ४. प्रमाणशास्त्र न्याय-प्रवेश, ५. आलम्बन परीक्षा, ६. त्रिकाल परीक्षा।

परन्तु कुन्दमाला की स्थापना में इन्हें अरारालपुरवासी कहा गया है। अभी तक यह नहीं निर्धारित हो पाया है कि यह अरारालपुर किस वर्त्तमान नगर या स्थान का द्योतक है। नाटक के सर्वप्रथम संपादक-द्वय रामकृष्ण कवि और रामनाथ शास्त्री के मतानुसार लंका के अनुराधपुर को ही लिपिकार ने प्रमादवश अरारालपुर अंकित कर दिया है। इस प्रकार ये लंका-वासी सिद्ध होते हैं।

अभी तक के ज्ञात तथ्यों के आधार पर यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि तत्वसंग्रह की बात यथार्थ है या कुन्दमाला की। पर इतना तो सिद्ध है कि यह दक्षिण के निवासी थे।

संक्षिप्त कथानक

अंक १—लोकापवाद की सूचना पाकर राम ने लक्ष्मण को अपनी गर्भवती पत्नी सीता को गंगातट पर छोड़ आने का आदेश दिया। राजाज्ञानुसार लक्ष्मण द्वारा वन में असहाय छोड़ दिये जाने पर भगवान् वाल्मीकि सीता को अपने आश्रम में ले आये।

अंक २—यहीं सीता के गर्भ से कुश और लव नाम के दो बालकों का जन्म हुआ। कालक्रम से वाल्मीकि की देखरेख में उन्होंने रामायण-गान में परम प्रवीणता प्राप्त की।

जब राम ने नैमिषारण्य में अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया तो उन्होंने वाल्मीकि प्रभृति महर्षियों को उनके शिष्यों सहित उसमें आमन्त्रित किया। सखि वेदवती के समक्ष अपने दाम्पत्य-प्रेम को प्रकाशित करती हुई पति-वियोग में दुःखी सीता भी राम के दर्शन के निमित्त नैमिषारण्य जाने के लिये उद्यत हुई।

अंक ३—मुनि वृन्द के साथ सीता भी अपने पुत्रों सहित गोमती-तीरस्थ नैमिषारण्य में पहुँची। राम लक्ष्मण भी वहाँ पहुँच चुके थे। वहाँ वाल्मीकि के आश्रम की ओर बढ़ते हुए उन्होंने नदी की धारा में बड़े ही दिव्य और मनोरम ढंग से गुँथी हुई कुन्दमाला बहती देखी। राम ने उसकी ग्रथनकुशलता देखकर सोचा कि ऐसी माला तो केवल सीता ही बना सकती थी। इस प्रकार अपनी प्रियतमा की सुधि आने पर वह अत्यन्त विलाप करने लगे। पदचिह्नों के सहारे आगे बढ़ते हुए लक्ष्मण इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उक्त आश्रम में सीता भी विद्यमान हैं। जब वे आश्रम में पहुँचे तो छिप कर खड़ी हुई सीता ने भी उन्हें देखा और उनका हृदय वर्णनातीत विषाद से भर उठा।[1] इसी घटना के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है।

अंक ४—रामायण-गान सुनने के लिये अप्सरा तिलोत्तमा भी वाल्मीकि के तपोवन में आई थी। उसने अपनी माया से सीता का रूप धारण कर राम के सीता-प्रेम की परीक्षा लेने की सोची और उसके लिये उपक्रम करने लगी परन्तु मुनि-कन्या और सीता की सखी वेदवती ने उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा करने से रोक दिया। राम के विदूषक ने तिलोत्तमा के उक्त चपल संकल्प की बात छिप कर सुन ली थी। मुनि-प्रभाव के कारण अदृश्य होने से सीता उस आश्रम की बावली के तीर पर ही दिन भर पड़ी रही और राम लक्ष्मण उन्हें न देख पाते थे। इस यज्ञ के धुएँ के कारण राम की आँखें दुखने लगीं और वे उन्हें धोने के लिये बावली में पहुँचे। यद्यपि राम को सीता न दिखाई पड़ीं किन्तु उन्होंने जल में पड़े हुए उनके प्रतिबिम्ब को देख लिया। इससे वे बड़े आश्चर्य में पड़ गये कि यहाँ सीता आई कैसे ? इसी बीच सीता वहाँ से हट गईं और जल से उनकी परछाईं भी विलीन हो गई। इससे राम को असह्य दुःख होने के कारण मूर्छा आ गई। सीता ने राम को मूर्छित देखकर पास जाकर उनका आलिंगन किया और उन्हें संज्ञा आते ही वहाँ से हट गईं। इस पर राम को पुनः मूर्छा आ गई। उन्हें स्वस्थ करने के लिये सीता उन्हें उत्तरीय के छोर से पंखा करने लगीं। संज्ञा आने पर राम ने सीता का उत्तरीय पकड़ लिया और सीता ने उसे छोड़ दिया। राम ने वनदेवता द्वारा सीता को दिये हुए उस वस्त्र को भलीभाँति पहचान लिया और तब उनका यह विश्वास और बढ़ चला कि सीता कहीं पास में ही विद्यमान है। राम ने उस उत्तरीय को ओढ़ लिया और अपना फेंक दिया। सीता राम के उत्तरीय को लेकर वहाँ से हट गईं। तब तक विदूषक राम के पास आ पहुँचा और उस सारे वृत्तान्त को सुन कर कहने लगा कि यह सब चपल तिलोत्तमा का परिहास मात्र है।

अंक ५--राम और विदूषक सीता के विषय में सोच-विचार कर रहे थे तब तक रामायण-गान करने के लिये कुश और लव उनके पास आ पहुँचे। उनके अपूर्व सौन्दर्य और बालभाव को देख राम के हर्ष और विस्मय की सीमा न रही। उन्होंने दोनों बालकों को अपनी गोद में सिंहासन पर बिठा लिया। ऐसा प्रसिद्ध था कि यदि उस सिंहासन पर रघुवंश के लोगों को छोड़ कर कोई चढ़ेगा तो उसका सिर टुकड़े टुकड़े हो जायेगा। इस बात के स्मरण आते ही विदूषक ने कुश लव को तुरंत सिंहसान से उतार देने के लिये राम से कहा। पर सिंहासनासीन होने पर भी दोनों बालकों का बाल भी बाँका न हुआ। इससे राम और विदूषक बड़े आश्चर्य में पड़ कर उनसे उनका और उनके माता-पिता का नाम आदि पूछने लगे। उन्होंने अपनी मां का नाम देवी और वधू तथा पिता का नाम निरनुक्रोश बताया। इन सब बातों को सुन कर राम और भी प्रभावित हुए और उन्होंने अपने पार्षदों आदि सभी लोगों को रामायण-गान सुनने के लिए आमन्त्रित किया।

अंक ६--सीता सम्बन्धी पदों को सुन कर राम लक्ष्मण को नितान्त विस्मित होते देख कर कुश लव ने समझ लिया कि वे ही रामायण के नायक थे। पर वे अभी तक अपनी माता का नाम सीता और अपने पिता का नाम राम न जान पाये थे। सीता-परित्याग तक की कथा का गान करके वे चुप हो गये क्योंकि आगे का इतिवृत्त उन्हें विदित नहीं था--वह नहीं जानते थे कि सीता जीवित हैं या उनकी मृत्यु हो गई। जब आगे की करुण कथा कण्व सुनाने लगे तो चारों रघुवंशी शोकाकुल होकर मूर्छित हो गये। जब चेतना आई तो राम अपने प्रति सीता के औदासीन्य के विषय में उपालम्भ देने लगे, तब तक भगवान् वाल्मीकि आ पहुँचे और निष्कलंक सीता के परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग की बात लेकर राम पर ही रोष प्रकट करने लगे। फिर स्वयं विश्वम्भरा पृथ्वी उपस्थित हुई और वह सीता के चरित्र को समग्र जनता के समक्ष सब प्रकार से निर्मल और पवित्र घोषित कर तिरोहित हो गई। प्रजा ने सीता के प्रति परम आदर अभिव्यक्त किया और राम ने उन्हें पुनः ग्रहण कर यज्ञ में अपनी सहचरी बना लिया। वत्सल वाल्मीकि ने कुश को सिंहासन पर बैठाया और लव को युवराज बना दिया।

नामकरण

दिङ्नागाकार्य का नाटक का "कुन्दमाला" नामकरण अत्यन्त मधुर तथा भावना-भव्य (रोमाण्टिक) है। वह अपनी गूँज की मसृणता से हृदय के तारों को अपने प्रथम परिचय के क्षणों में ही एकदम छू लेता है। वह उनकी अपूर्व उद्भावना-शक्ति का भी परिचायक है। किन्तु भवभूति का "उत्तररामचरित" नामकरण सर्वथा चर्वित-चर्वण और इतिवृत्तात्मक है। वह कोई उत्कण्ठा या कुतूहल एकदम नहीं उत्पन्न करता क्योंकि रामकथा युगों से अतिशय प्रख्यात है।

कालिदास भी इस बात में दिङ्नागाचार्य से पीछे रह गये हैं। नामकरण की इस मनोहारिता में कदाचित् संस्कृत के कुछ इने-गिने नाटक ही कुन्दमाला की समता कर सकते हैं—यथा शूद्रक का परम मनोज्ञ नाटक "मृच्छकटिक" वा भट्टनारायण का "वेणी संहार"।

कथावस्तु

कुन्दमाला इतिहास प्रख्यात कथावस्तु के आधार पर लिखा गया नाटक है। इसकी कथा-वस्तु का प्रमुख उद्गम वाल्मीकि के रामायण के उत्तरकाण्ड के ४३वें से ४९वें तक के सर्ग तथा ९३वें से ९८वें तक के सर्ग हैं। नाटक प्रणयन के समय सम्भवतया रघुवंश और रामायण-मंजरी भी नाटककार के सम्मुख रही होगी। पर इस परम्परागत कथानक को नाटककार ने ज्यों का त्यों नहीं ले लिया है। उसने उसमें परम उद्भावनापूर्ण परिवर्त्तन किये हैं जिससे समस्त नाटक में बड़ी रोचकता, सजीवता, स्फूर्ति, जगमगाहट, प्रभविष्णुता और अनूठी नवीनता तथा टटकापन आ गया है। यह उसकी प्रतिभा का परिचायक है। सबसे बड़ी प्रशंसनीय बात यह है कि उसने जिन नई उद्भावनाओं का समावेश किया है वे पूर्णतया भारतीय संस्कृति और अति प्राचीन उपाख्यानात्मकता और वातावरण पर आधारित हैं।

दिङ्नागाचार्य ने कथानक में पाँच सबसे उल्लेखनीय परिवर्त्तन और नई अवतारणायें की हैं :—

१. कुन्दमाला का इतिवृत्त और उनकी पहचान,

२. पदचिह्नों का निरीक्षण, विश्लेषण तथा पहचान,

३. तिलोत्तमा की अवतारणा तथा उसके परिहासोपक्रम एवं तदनुवर्त्ती वृत्त को अति कौशलपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. रामाख्यान में विदूषक की अवतारणा,

५. नाटक को सुखान्त बनाना,

तृतीय अंक में कुन्दमाला का संकीर्तन और उसकी पहचान तथा आगे चलकर रमणी-पद-चिह्नों का निरीक्षण और उनका अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से अभिज्ञान आर्थर कोनन डायल के "शरलाक होम्स" की कथाओं की रचना-प्रक्रिया का स्मरण दिलाता है। किन्तु कुन्दमाला में इस प्रक्रिया का बड़ा उदात्त, गम्भीर और संयत स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। (पदचह्नों की पहचान की प्रायः इसी भाँति की चर्चा विक्रमोर्वशीयम् (अंक ४) छन्द १६ में भी आई है।)

चतुर्थ अंक में तिलोत्तमा के राम को प्रवंचित करने के उपक्रम के वृत्त को कथावस्तु के सूत्र में इस चातुर्य से गूँथा गया है कि दर्शक या पाठक को अन्त तक यह निश्चित पता नहीं चल पाता कि वास्तव में राम को प्रवंचित करनेवाली घटना घटी या नहीं, राम सीता का व्यवधानात्मक मिलन हुआ अथवा तिलोत्तमा ने सीता का रूप धारण कर राम को छल लिया था ? जब पाठक अपनी तर्कबुद्धि और सभी बातों के पूर्वापर सम्बन्ध में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा करता है तबी जाकर उसकी समझ में आता है कि वस्तुतः राम और सीता का मिलन हुआ था। कथानक के परम रमणीय और कुतूहलपूर्ण निर्वहण में दिङ्नाग ने कथानक-ग्रथन की उत्कृष्ट प्रतिभा और निपुणता का परिचय दिया है। नाटककार का यह कला-नैपुण्य समग्र संस्कृत-साहित्य में अप्रतिम है। इस बात में कालिदास भी दिङ्नागाचार्य से पीछे रह जाते हैं। दिङ्नाग का यह कथानिरूपण-कौशल बर्नार्ड शा के "आर्मस् एण्ड दि मैन" "मैन एण्ड सुपरमैन" और "दि डाक्टर्स डिलेमा" के कथानक-ग्रथन की विचक्षणता से भी बढ़ जाता है। कम से कम इस दृष्टि से दिङ्नाग को शेक्सपीयर से भी अधिक सफलता मिली है।

दर्शक के मन में तिलोत्तमा की प्रवंचना के सम्बन्ध में जो उलझन और कौतूहल उत्पन्न होता है, उसके चरमोत्कर्ष में अधोलिखित पंक्तियों ने चार चाँद लगा दिये हैं :—

राम—(उत्तरीयमवलोक्य) कथमुत्तरीयमपि निर्मितमतिमायाविन्या। अहो ! परवञ्चनायामतिमहन्नैपुण्यम्।

विदूषक—भो वयस्य विलक्षमुख (विस्मितमुख) इव पश्यसे। किं तया वञ्चितोऽसि?

राम—वञ्चितः कृतोऽस्मि

विदूषक—किमयाश्रुतं रहस्यमन्यथा भवति ?

शास्त्रीय दृष्टिकोण से समस्त नाटक में केवल एक ही कथावस्तु का प्रयोग किया गया है जो "आधिकारिक" श्रेणी के भीतर आता है।

कालिदास आदि कवियों के अनुसार सीता राम के आदेश से लक्ष्मण द्वारा वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचा दी गई थीं। परन्तु दिङ्नाग और भवभूति दोनों ने ही उन्हें वन के बीच असहाय छुड़वा दिया है। इससे नाटक की इस निष्पत्ति में बड़ी सहायता मिली है और करुण-रस एकदम तीव्र हो उठा है।

कथावस्तु के प्रक्षालन, निबन्धन और क्रमिक विकचीकरण पर समाहार रूप से भी विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने पर दिङ्नाग की उत्कृष्ट सफलता ही परिलक्षित होती है। दिङ्नागाचार्य का कथानक बहुत कसा हुआ है। उसमें कहीं अनावश्यक बातों के समावेश से शैथिल्य नहीं आ पाया है जैसा कि भवभूति के उत्तररामचरित में दृष्टिगोचर होता है, जिसके सम्बन्ध में एक आलोचक ने ठीक ही कहा है कि यदि उत्तररामचरित में नाटककार ने द्वितीय और पंचम अंक न भी रक्खा होता और उसमें केवल पाँच अंक रहे होते तो भी उसके साहित्य-सौष्ठव में रंचमात्र भी कमी न आ पाती।

पात्र तथा चरित्र-चित्रण

लोक-संग्रह विधायिनी और आदर्श की प्रतिष्ठा करनेवाली कथावस्तु के अनुरूप ही नाटक की पात्रयोजना है। धीरोदात्त नायक और आदर्श स्वीया नायिका का चरित्र-चित्रण सर्वत्र एक दूसरे के आदर्शों को और उन्मीलित और दीप्त करने वाला है। अन्य पात्र भी उन्हीं के पूर्ण सामंजस्य में अत्यन्त शालीन, उदार तथा शील और सदाचार युक्त रक्खे गये हैं।

यह पहले कहा जा चुका है कि तिलोत्तमा और विदूषक की अवतारणा दिङ्नागाचार्य की अपनी विशेषता है। यद्यपि विदूषक की परिपाटी संस्कृत नाटकों में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी किन्तु भवभूति को उत्तररामचरित में उसकी अवतारणा की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई थी।

एक प्रकार से देखा जाय तो चपल अप्सरा तिलोत्तमा और विदूषक कुन्दमाला में दो विदूषक सदृश उपस्थित होते हैं जैसा किसी अन्य संस्कृत नाटक में कदाचित् ही मिलेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक की आद्ययोजना के अनुसार तिलोत्तमा की अवतारणा में दिङ्नाग को विदूषक के चरित्र को और उत्कर्ष, तीव्रता और प्रभविष्णुता प्रदान करना अभीष्ट था।

तिलोत्तमा का चरित्र बहुत संक्षिप्त किया गया है। दूसरे केवल वह उसकी चपलता, कार्य-कुशलता तथा प्रवंचन-शीलता एवं मायावीपन की ओर इंगित मात्र करके रह जाते हैं।

दिङ्नाग का विदूषक राजा का सहचर या पारिचारक के रूप में ही हमारे सम्मुख उपस्थित होकर रह जाता है। उसमें भास और कालिदास जैसे हृदय की कली खिला देने वाले और आलोड़नकारी हास्य की तरंगावली का सर्वथा अभाव है। कदाचित् तार्किक नाटककार में जीवन के कौशेय और सरसपक्षों की पकड़ तो पर्याप्त अच्छी हो पाई थी और उसकी व्यंजना में उसे सफलता भी हाथ लगी थी, किन्तु तर्कजाल में उलझा हुआ मस्तिष्क हृदय के अन्य कोनों में—यथा हास्य की चपलता एवं उन्मुक्त वातावरण में न उतर सका। अतएव उसकी व्यंजना और उसके माध्यम चरित्र के रूपायन में रसोन्मेष की कली भी न लग पाई।

विदूषक का पंचम अंक में रंगमंच पर रोना कुछ सुन्दर नहीं प्रतीत होता। कालिदास और भास में उसका रोदन कहीं नहीं दृष्टिगोचर होता है। इन दोनों ने विदूषक का जैसा हृदयहारी और सफल प्रयोग किया है, उसकी आशा तो हमें दिङ्नाग से कहीं हो ही नहीं सकती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्युत बात एकदम उलटी हुई है और कुन्दमाला का प्रणेता दर्शकों के अधरों पर स्मित का भी स्फुरण करने में सर्वथा असमर्थ हुआ है। हृदय में वह हास्य की चिकोटी भी नहीं काट सका है।

कुन्दमाला का नाटककार भास की नाईं सरल हृदय व्यक्ति था। उसने कालिदास और भवभूति की भाँति पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और सूक्ष्म मनोवृत्तियों के निरूपण के लिये न तो कोई विशेष प्रयत्न किया है और न उसे अतिशय सफलता ही मिल पाई है। नाटक के लिये सामान्य रूप से अपेक्षित मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और मनोवृत्तियों के अध्ययन और अंकन में ही उसके इस कार्य की इतिश्री हो गई है और उसीसे उसने सन्तोष भी कर लिया है। इसलिए चरित्र-चित्रण में भव्य कल्पना की उड़ान तथा आल्हादकर सूक्ष्मता की कमी स्पष्ट झलकती है।

नाटक की उत्कृष्टता और सफलता के लिये उसके कथोपकथन में तत्वतः तीन गुणों की परमावश्यकता होती है—प्रसाद गुण, कुतूहल तथा वाक्चातुरी।

कुन्दमाला के प्रासाद गुण पर उसकी भाषा और शैली के विवेचन में आगे प्रकाश डाला जायेगा। यहाँ केवल इतना ही कह देना अलम् होगा कि उसके कथोपकथनों में सर्वत्र हृदय से तुरन्त तादात्म्य स्थापित कर लेने वाली सरलता और स्वाभाविकता पाई जाती है। किसी भी पात्र की उक्ति का कोई भी वाक्य या पद ऐसा न होगा जिसमें तनिक भी संदिग्धार्थता वा अस्पष्टता हो। उसके कथोपकथनों में अश्लीलता या अभद्रता की कहीं रंचमात्र भी गन्ध नहीं आती। वे पूर्णतया सुरुचि तथा परिष्कृत और संभ्रान्त आचार के द्योतक हैं। अमंगलता का भी उनमें लेश न मिलेगा। ये कथोपकथन रामायणकालीन सामाजिक और सांस्कृतिक बातों का अविकल प्रतिनिधित्व करते हैं। नाटक के कथोपकथन केवल सूचना देने वाले वाक्य नहीं होते। उन्हें कथानकोन्मीलन के साथ-साथ रसानुभूति के माध्यम का भी काम करना पड़ता है। इस दृष्टि से कुन्दमाला के प्रथम और अंतिम अंक विशेष सम्मोहन उत्पन्न करने वाले हैं। इसके पश्चात् चतुर्थ अंक का स्थान आता है।

जहाँ तक कुतूहल और नाटकीय उत्कण्ठा बनाये रखने का प्रश्न है, इस गुण में कुन्दमाला की संवाद-योजना सचमुच अप्रतिम है। इस विशेषता का चतुर्थ अंक में चरमोत्कर्ष दिखाई पड़ता है। शनैःशनैः कथा का विकचीकरण संपादित करता हुआ नाटककार जब चतुर्थ अंक के अन्त में पहुँचता है तो विदूषक और राम के कथोपकथन के दो वाक्यों (वि०—भो वयस्य ! विलक्षमुख इव दृश्यते, किं तया वञ्चितोऽसि, वि०—किं मया श्रुतं रहस्यमन्यथा भवति") में कुतूहल की वह पीयूषधारा बहा जाता है, जिसकी मधुर अजस्रता नाटक पढ़ और देख लेने के पश्चात् भी हमारे व्यक्तित्व को अभिषिक्त किये रहती है।

कुन्दमाला की संवाद-योजना में शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीयम्, मृच्छकटिक और मुद्राराक्षस की वाक्चातुरी के दर्शन नहीं होते। तब उनमें अन्तर्द्वन्द्वों को अभिव्यक्त करनेवाली आधुनिक ढंग की अराल-वेश-विन्यासवती वाणी के कौशल की और अपेक्षा न करनी चाहिये और न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती ही है। कथोपकथन का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। सीता प्रथम अंक में कहती हैं :—"तथा ममवचनात्तं जनं विज्ञापय।"

यहाँ सीता राम का अपने पति रूप में सकीर्तन नहीं करती प्रत्युत उन्हें "जन" नाम से अभिहित करती हैं। स्वयं महिषी होने के कारण उन्हें अभी तक सम्राट् की उपाधि से नहीं विभूषित किया गया है किन्तु आगे के वाक्य में उन्होंने राम को "महाराजम्" कह ही दिया क्योंकि उन्हीं की आज्ञा से तो उनका निर्वासन किया गया था ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर देवेन्द्रकुमार

महाकवि सूरदास की कुब्जा

हिन्दी के भक्ति प्रबन्ध-काव्यों की प्रमुख विशेषता है 'चरित्रों की दुहरी अवतारणा'। रामचरित मानस के सभी पात्रों का दुहरा अस्तित्व है। सूरसागर के पात्रों में भी यही बात है। प्रतीक-निर्वाह में, कभी-कभी ये कवि सूफी कवियों को भी मात दे देते हैं, फिर भी, लौकिक सीमाओं के स्पष्ट चित्रण के कारण, इनमें प्रतीकात्मकता उभर नहीं पाती। सूरसागर, वैसे गीतकाव्य है, पर यथार्थ में वह प्रबन्ध और गीत-कविता के बीच की कृति है। मानस भी, इसी प्रकार, शुद्ध प्रबन्ध काव्य नहीं। वस्तुतः वह, उस अपभ्रंश-कथाकाव्य शैली में लिखित है, गीतधारा जिसका अनिवार्य अंग है। सूरसागर में गीतसत्व चलता है कथा के सहारे जब कि रामचरित मानस में कथा गीतमयता को लेकर अग्रसर होती है। दोनों में एक और अन्तर है। मानस के पात्रों की लौकिकता जितनी सिद्ध है, सूरसागर के पात्रों की उतनी ही असिद्ध। फिर कवि की सूझबूझ ने उनकी काल्पनिकता को और भी नया व्यक्तित्व दे दिया है। 'राधा और कुब्जा', सूरसागर के ऐसे ही नए व्यक्तित्व हैं। भारतीय काव्यधारा में इन चरित्रों की प्रत्रेश कहानी एक विवाद भरी कहानी है। पर जहाँ तक सूर का सम्बन्ध है उन्होंने इन पात्रों की अमंगलणा, क्रमशः ब्रह्मवैवर्त, पुराण और श्रीमदभागवत से की है। वैवर्त में राधा है, कुब्जा नहीं, और भागवत में कुब्जा है, राधा नहीं। सूरसागर में दोनों का संगम है। स्पष्ट है कि यह निष्प्रयोजन नहीं है। वैवर्त में, राधा 'अतिप्राकृत'——तत्व की प्रतीक है। वह, परा शक्ति है, और कृष्ण उसके सहयोग से ही सृष्टि करने में समर्थ हैं। भागवत में मुख्य हैं श्रीकृष्ण। वह एक समर्थ सिरजनहार उपास्य हैं। उनको पाने का साधन है ज्ञानमूलक भक्ति। मोह से छुटकारा और वैराग्य, इसके आवश्यक अंग हैं। सूर इस दृष्टि से मध्यम मार्ग अपनाते हैं। राधा उन्हें स्वीकार है, और कुब्जा भी। प्रमुख तत्व सूरसागर में कृष्ण ही हैं। राधा और कृष्ण का अतिप्राकृत सम्बन्ध भी सिद्धान्त रूप में सूर को स्वीकार है। पर उनका मुख्य लक्ष्य है——दोनों के मधुर मानवी सम्बन्धों की भावभीनी अवतारणा। इसलिए कृष्ण की अतिप्राकृत घटनाओं के विवरण में सूर का कवि उतना नहीं रमता जितना कि प्राकृतिक लीलाओं के चित्रण में। इस गान में उसका भक्ति स्वर चुपचाप सम्मिलित है। सूरसागर के स्त्री पात्र, भक्ति के किसी न किसी रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। गोपियाँ, राधा, यशोदा और कुब्जा——भक्ति की विभिन्न मानसिक स्थितियों की प्रतीक बनकर आती हैं। अन्यत्र मैं यह बता चुका हूँ[1] कि सूर की भक्ति, भागवत भक्ति से भिन्न है। सूर की भक्ति प्रेमाभक्ति है। राग और

---

१. पूर्व परम्परा और सूर का भ्रमरगीत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैयक्तिकता, जिसके अनिवार्य अंग हैं और इन अंगों की पूरी-पूरी परिणति के लिए 'अहं का विसर्जन' अत्यन्त आवश्यक भूमिका है। विभिन्न आलंबनों के माध्यम से, अपने इस उद्देश्य की मनोवैज्ञानिक सिद्धि में ही सूर की सफलता और लोकप्रियता का रहस्य निहित है। सूर अहं का विसर्जन करते हैं मनोविज्ञान की प्रक्रिया से जब कि भागवतकार, वैराग्य और उपदेश के माध्यम से।

इस विचार से, सूर की राधा, कृष्ण की प्रेयसी ही नहीं, वरन प्रेमाभक्ति की आदर्श प्रतीक है। उसकी तुलना में, गोपियाँ कुछ हेय स्थिति में हैं। कुब्जा की अवतारणा, सूर ने राधा की आध्यात्मिक प्रतियोगिनी के रूप में ही मुख्य रूप से की है। पर गोपियों की उपालंभ-उक्तियों से यही लगता है कि जैसे वह सापत्न्यभाव की आलम्बन हो। इस दृष्टि में भागवत की कुब्जा और सूर की कुब्जा में जमीन-आसमान का अन्तर है। भागवतकार की कुब्जा, एक साधारण हीन नारी है, जो चेहरे से सुन्दर होते हुए भी शरीर से कुबड़ी है। कृष्ण के मथुरा पहुँचने पर रास्ते में उसकी कृष्ण से भेंट होती है। मन्द मुसकान में कृष्ण पूछते हैं परिचय और मांग बैठते हैं अंग-राग। परिचय में कुब्जा बताती है कि वह त्रिवक्रा नाम की कंस की दासी है। कृष्ण के सौन्दर्य और चितवन पर वह मुग्ध हो उठती है। वह उन्हें अंगराग और चन्दन दे देती है। और प्रति-दान में कृष्ण उसे त्रिवक्रा से सुन्दरी बना देते हैं।[1] दूसरे प्रसंग में कृष्ण कुब्जा के घर जाते हैं। कुब्जा इसके लिए पहले ही उनसे अनुरोध कर चुकी थी। कृष्ण मिलन की कामना बड़े वेग से उसके मन में लहरा उठती है। उसके अनुरोध के उत्तर में, कृष्ण जो कुछ कहते हैं, उससे लगता है कि कुब्जा के बारे में उनकी धारणा या तो एकदम ऊँची थी या एकदम निम्न। वह कुब्जा का अनु-रोध इसलिए स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि उसका घर सांसारिक लोगों की मानसिक व्याधि मिटाने का साधन था, और उन जैसे बेघर बटोही के लिए, इससे बढ़कर दूसरा ठिकाना नहीं हो सकता था। यहाँ पर मानसिक व्याधि के दोनों ही अर्थ सम्भव हैं। वह भोग से शान्त की जा सकती है, और आध्यात्मिक क्रान्ति से भी। पर शायद भागवतकार को पहला ही अर्थ अभिप्रेत था। कुब्जा का घर, उत्तेजक बहुमूल्य सामग्री से भरा था। कृष्ण उसकी सेज पर बैठे। उसने मिलन का आनन्द लूटा। वह इतने से तृप्त नहीं हुई और कृष्ण से कुछ और दिन क्रीड़ा करने का अनुरोध किया। कृष्ण उसे सान्त्वना देकर चले जाते हैं। 'कुब्जा' प्रसंग से भागवतकार यह निष्कर्ष निकालते हैं कि जो भगवान को प्रसन्न कर उनसे विषय-सुख माँगता है वह निश्चय ही दुर्बुद्धि है। भौतिक सुख के लिए आध्यात्मिक साधना करने वालों की भागवतकार कड़ी निन्दा करते हैं। 'कुब्जा' निश्चय ही ऐसे साधकों की प्रतीक है।

सूर ने कुब्जा-प्रसंग ज्यों का त्यों भागवत से लिया है, पर उनका उद्देश्य और अभिप्राय उससे एकदम भिन्न और कुछ अर्थ में मौलिक भी, विवरण क्रम में थोड़ा परिवर्तन है।

---

१. श्रीमद्भागवत, अध्याय ३१ श्लोक १–१२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे, भागवत में कृष्ण कुब्जा से अंगराग माँगते हैं और स्वयं उसे लगाते हैं। सूरसागर में कुब्जा स्वयं उन्हें लेप करती है--

लिए चन्दनि बहुरि आनि कुबिजा मिली
स्याम अंग लेप कीन्हौं बनाई
रीझि तिहिं रूप दियो अंग सूधौ कियौ
वचन भाखी निज घर पठाई।"

प्रस्तुत अवतारण में दोनों का अभिप्राय अलग-अलग है। भागवतकार कृष्ण का बड़प्पन बताना चाहते हैं जब कि सूर कुब्जा की विनीत भक्ति-निष्ठा। सूर स्वयं कहते हैं :--

"कूबरी नारी सुंदरी कीन्हीं
भाव में बास बिनु भाव नहिं पाइयै।"

कृष्ण के कुब्जा के घर पहुँचने पर सूर इस कारण की कल्पना करते हैं :--

कूबरी पूरब तप करि राख्यौ
आए श्याम भवन ताहि कै नृपति महल सब नाख्यौ।

वस्तुतः कुब्जा-प्रसंग भक्त की निष्ठा और भगवान् की वत्सलता की चरम सीमा का प्रसंग है। सूर की उद्भावना तो यहाँ तक है कि कुब्जा ने अपना रूप इस डर से छिपा लिया था कि कहीं रूप के अहं में कृष्ण से वह बिछुड़ न जाय। इसीलिए कृष्ण के मथुरा से गोकुल चले जाने पर उसने कुब्जा बनकर रहना पसन्द किया।

कुब्जा हरि की दासी आहि?
जैसे आपु भाजि गोकुल रहे तैसे राखि ताहि
रूप रतन दुराइकै राख्यौ जैसे नली कपूर
. . . . . .
सूरदास प्रभु कंस मारिकै लइ आनि तिहि चाहि।।

दोनों के मिलन पर वस्तुतः मथुरावासियों की भी यही प्रतिक्रिया है :--

कुबिजा तो बड़भागी ह्वै
कहना करि हरि जाहि निवाजी
आपु रहै वहँ राजी ह्वै

यह तो हुआ कुब्जा के चरित्र का पूर्व रूप। उसके चरित्र का उत्तर रूप, गठित किया गया है राधा के सन्दर्भ में। यह सन्दर्भ दो बार आता है। एक दो ग्वाल-बाल राधा को कृष्ण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुब्जा सम्बन्ध की सूचना देता है, दूसरे उद्धव के गोकुल जाते समय, कुब्जा गोपियों को सन्देश भेजती हैं। यह एक अजीब बात है कि कुब्जा की बात न तो नन्द गोपियों को बताते हैं और न उद्धव। वस्तुतः उनके बताने में औचित्य भी नहीं था। पर बताना आवश्यक था। क्योंकि गोपियों की विरह-वेदना की बहुत-सी उत्तेजना और कसक कृष्ण-कुब्जा के सम्बन्ध-ज्ञान पर ही निर्भर करती है। उनके विरह को उद्दीप्त करनेवाले प्रसंग दो ही हैं, एक उद्धव का हठयोग-उपदेश और दूसरा कृष्ण-कुब्जा-प्रणय। वैसे मुरलिया के नाम से भी गोपियाँ भड़कती हैं, पर वह कल्पना पर अधिक आश्रित है। उनकी असली राग-भावना को कुरेदनेवाले प्रसंग ये ही हैं। इसमें भी, कुब्जा-प्रसंग, उद्धव-उपदेश की पीठिका प्रस्तुत करता है। यही कारण है, उनके आगमन के पहले एक गोप, कुब्जा-प्रसंग की सूचना गोपियों को दे देता है। भ्रमरगीत के 'कथ्य' को समझने के लिए इसका बहुत बड़ा महत्व है।

ग्वारनी कहि ऐसी जाइ।
भए हरि मधुपुरी राजा बड़े वंश कहाइ॥
राजभूषन अंग विराजत अहिर कहत लजात,
मातु पितु वसुदेव दैवै नंद जसुमती नाहि॥
मिली कुबिजा गलै लैके सोई भई अरधंग,
सूर प्रभु बस गए ताकैं करत नाना रंग॥

भ्रमरगीत के सारे उपालम्भों, खीजों, आक्रोश, व्यंग्योक्तियों, प्रलापों और टीसों की जड़ यही सूचना है। यह सुनकर गोपियाँ अपना मानसिक सन्तुलन खो चुकी थीं। एक भी आधार नहीं था कि जिस पर कृष्ण-मिलन की आशा वे करतीं। क्योंकि :—

कुबिजा को नाम सुनि विरह अनल जूड़ी
रिसनी नारि छहर उठी क्रोधमध्य बूड़ी
आवन की आस मिटी ऊरध सब श्वासा
कुबिजा नृप दासी हम सब करी निरासा
लोचन जलधार अगम विरह नदी बाढ़ी

उन्हें विश्वास नहीं होता कि कृष्ण यह भी कर सकते हैं। "कैसे हरि यह करि हैं?" और फिर इसमें दोष हरि का ही है, क्योंकि :—

हरि हीं कुबिजा करी ढीठ?

उनका यह भी विश्वास है :—

कंस वध्यौ कुबिजा के काज

दूसरा सन्दर्भ है कुब्जा की पाती, जो वह उद्धव के हाथ भेजती है। पता नहीं, गोपियों ने उसे पढ़ा या नहीं। एक आदर्श भक्त होने के नाते सीधे सादे शब्दों में वह यही लिखती है, कि मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोष लगाना व्यर्थ है। दोष मेरा नहीं, हरि कृपा का है। इन पंक्तियों में वह अपनी सही स्थिति रख देती है :—

फलनि मांझि ज्यौं करुई तौभरी रहत घुरै पर डारि
अब तो हाथ परी जंत्री के बाजत राग दुलारि

वह यह भी कहती है कि सबेरे-सबेरे मुझे गाली देना शोभा नहीं देता। यह कहना ही गलत है कि मेरे प्रणय के कारण कृष्ण मथुरा नहीं छोड़ना चाहते। सच बात तो यह है कि बचपन में ब्रजवालों ने श्याम को इतना सताया है कि वह वहाँ जाने के नाम से चौंकते हैं। यह होते हुए भी वह राधा की कृपा चाहती है :—

मोपर रिस पावत बिनु कारन मैं हौं तुम्हरी दासी
तुम ही मन में गुनि धौ देख्यौ बिनु तप पायौ कासी।

सन्देश की प्रस्तुत भूमिका के बाद उद्धव, ज्ञान और आश्वासनों की खेप लादकर वृन्दावन पहुँचते हैं, पर वहाँ उन पर मूड़ मुड़ाते ही ओले पड़ते हैं। गोपियों को उद्धव की हर बात में कुब्जा की चाल नज़र आती है। भ्रमर से वह पूछती हैं :—

पूछन लागीं ताहि गोपिका कुबिजा तोहि पठायौ।
कींधौं सूर श्याम सुन्दर कौं हमें संदेशो लायौ?

इस प्रकार सूर का कुब्जा-प्रसंग भ्रमरगीत का महत्वपूर्ण प्रसंग है। कुब्जा एक साधारण दासी ही नहीं, प्रत्युत कृष्ण की कृपापात्र भक्त है। वह भक्ति की सिद्धावस्था में है जब कि राधा साध्यावस्था में। राधा रूप की जिस मर्यादा से घिरी है कुब्जा उसे तोड़ चुकी है। वह आत्म-सौन्दर्य की पुजारिन है। वह इस आदर्श की मूक घोषणा है कि आत्मा के सौन्दर्य के लिए देह के सौन्दर्य का गोपन करना ही होगा। लौकिक दृष्टि से भले ही वह इसके लिए दोषी समझी जाय कि उसके कारण गोपियों को तरसना पड़ा। पर आध्यात्मिक दृष्टि से गोपियाँ ही इसके लिए दोषी थीं। अपनी साधना की कमी का दोष उन्होंने जबरन कुब्जा पर थोपना चाहा। ईर्ष्या, दोष दर्शन, और उपालम्भ अपूर्णता की प्रतिक्रिया है। कुब्जा पूर्णता को पा चुकी थी। अतः उसमें ये बातें नहीं। गोपियों में अपूर्णता थी, अतः ये बातें उनमें हैं। राधा की स्थिति दोनों के बीच है। सूर की कुब्जा की साधना और अर्पणा; क्षुद्र क्षणिक आवेग के समाधान के लिए नहीं, प्रत्युत आदर्श की चरम सिद्धि के लिए था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रा० कस्तूचन्द सतभैया एम०ए०

प्रहेलिका साहित्य की ऐतिहासिक रूपरेखा

पहेली को अंग्रेज़ी में Riddle कहा गया है जो जर्मन शब्द Ractsel से बना हुआ प्रतीत होता है और जिसका प्रयोग नीतिपूर्ण कथन अथवा उपदेश देने के अर्थ में होता है। परन्तु भारतीय परम्परा में पहेली का नीति से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है। पहेली को संस्कृत में प्रवल्हिका, प्रहेलिका अथवा प्रहेली कहा गया है। मार्टिनहग ने प्रवल्ह का अर्थ To benumb किया है। ब्रह्मोदय का प्रयोग भी संस्कृत साहित्य में प्रहेलिका के लिए ही हुआ है। प्रवल्हिका और ब्रह्मोदय, का मूल अर्थ 'गोपन वाक्य' होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यह शब्द अथर्ववेद की कुछ ऋचाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है।[1] कल्पसूत्र में प्रवल्हिका को स्त्रियों की एक कला कहा गया है।

पहेली का मूल उद्गम आदिम मानव-समाज की सहज रहस्य-मूलक प्रवृत्तियों और उनकी अभिव्यक्ति में निहित है।[2] संस्कृत और सभ्यता के विकास के साथ ही रहस्य की यह अभिव्यक्ति-पद्धति स्वभावतः परिष्कृत होती गयी ओर वैदिक युग में समस्त तत्वमूलक चिन्ता और अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। आगे चल कर जीवन-दर्शन, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक विकास और परिवर्तन की असमान धाराओं और धारणाओं के आधार पर परिवर्तनों के फलस्वरूप उच्च वर्ग और निम्न वर्ग में यह पृथक्-पृथक् रूप से ग्रहीत हुई। उच्च वर्ग में विकसित पहेली के स्वरूप ने धर्म और साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थान बनाया और निम्न वर्ग का दूसरा रूप साधारण लोक-जीवन में ग्राह्य हुआ। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के पारस्परिक सम्बन्धों की जब जैसी गतिविधि रही उसका प्रभाव प्रहेलिका के दोनों स्वरूपों पर यथानुकूल बराबर पड़ता रहा। एक रूप में वह तात्विक चिन्तन की अभिव्यति का माध्यम बनी और दूसरे रूप में साधारण लोक में रहस्य, जिज्ञासा और मनोरंजन की धात्री बनी। परन्तु समूचे जीवन की ही भाँति वैषम्य रखते हुए भी यह दोनों धाराएँ सदैव एक दूसरे से प्रभावित होती रहीं और आज भी इनमें तात्विक समानता स्थापित है।

लोक जीवन में पनपने और पल्लवित होने वाली पहेली का इतिहास आज हमारे लिए उपलब्ध नहीं हो सकता परन्तु अपने पुरातन कलेवर में जो पहेलियाँ आज भी जीवित हैं उनसे

---

१. लोक साहित्यांची रूपरेखा; दुर्गा भागवत।

२. The Golden Bough—Frazer, J. H., Part 9, Page 121.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके इतिहास को प्राचीन साहित्य और इतिहास के प्रकाश में देखा-परखा जा सकता है और इस प्रकार उनके अतीत गौरव की कल्पना की जा सकती है।

जैसा कि कहा जा चुका है, पहेली का मूल-स्रोत आदि मानव की रहस्यमूलक अथवा आश्चर्यमूलक प्रवृत्तियों की अभिव्यंजना में निहित है। इसीलिए संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में उनके प्रारम्भ से ही पहेली की जाति की चीज़ें मिलती हैं। 'अरेबियन नाइट्स' आदि कहानियों में तत्सम्बन्धी अनेक संकेत हमें प्राप्त होते हैं। भारतीय साहित्य में वेदों में सबसे पहले लोकमुख में रहनेवाली प्रहेलिका ने साहित्य और धर्म के क्षेत्र में स्थान प्राप्त किया। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में हमें पहेलियों के ढंग के कुछ विचित्र प्रयोग मिलते हैं। उदाहरणार्थ—'चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा, द्वे शीर्षे सप्त हस्तातो अस्य, त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यानाविवेश'[1]—जिसके चार सींग हैं, तीन पैर हैं, दो सिर हैं, सात हाथ हैं, जो तीन जगहों से बँधा हुआ है, वह मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ वृषभ करता हुआ महादेव है। विद्वानों ने इसके गूढ़ार्थ को स्पष्ट करते हुए उस वृषभ को यज्ञ, शब्द और सूर्य आदि कहा है।[2] निश्चय ही उक्त मन्त्र पहेली ही है जो लोकमुख से परिमार्जित रूप में ग्रहण की गयी है। आज भी उक्त ढंग के प्रयोग लोक-साहित्य के प्राचीनतम कलेवर में पहेलियों के रूप में सुरक्षित हैं—'नेत्र अठारह छै चरन तीन जीव भुज चार, सो तुम पै रक्षा करे दिन में सौ-सौ बार।' इस पहेली में सूर्यनारायण और उनके रथ का चित्रात्मक वर्णन हुआ है। अपने रूपात्मक कलेवर में यह पहेली ऋग्वेद के उक्त मन्त्र के समकक्ष रखी जा सकती है और यह ऐतिहासिक दृष्टि से सूर्योपासना के समय को स्मरण कराती है।

ऋग्वेद के 'अस्य वामीय सूक्त' का सोलहवाँ मन्त्र प्रहेलिका शैली के माध्यम से रहस्य-मूलक अभिव्यक्ति का सुन्दर उदाहरण है—"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते, तयोरन्य पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।"[3] लोकप्रसिद्ध उपकरणों द्वारा वर्ण-विषय को ध्वनित करनेवाले लाक्षणिक प्रयोगों से युक्त इस प्रकार के अलंकृत प्रयोग प्राचीन पहेलियों में अब भी प्राप्त होते हैं। एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा—"जब हती में भोली भाली तब सई मैंनें मार, अब पैरी मैंनें लाल घँघरिया अब ना सेंहों मार।"[4] प्रस्तुत पहेली का प्रयोग

---

१. ऋग्वेद ४।५८।३

२. रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम साहित्य (तीसरा भाग), पृ० २८८।

३. प्रथम मण्डल : १६४वाँ सूक्त : १६वाँ मन्त्र। अर्थ—दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) मित्रता के साथ एक ही वृक्ष (शरीर) में रहते हैं। इनमें एक (जीवात्मा) स्वादु पिप्पल (कर्म फल) का भक्षण करता है और दूसरा (परमात्मा) कुछ भी भोग नहीं करता, केवल द्रष्टा है।

४. जब मैं (गागर, लड़की) भोली-भाली (निर्माणावस्था, बचपन) थी तब मैंने डाट-फटकार (कुम्हार की ठोकरें, पारिवारिक हीनता) सहन कर ली थी, परन्तु अब मैंने लाल घँघरिया (पक जाने पर लाल रंग—शादी का प्रतीक एक वस्त्र) पहन ली है (पक चुकी हूँ—घर की व्यवस्था में मेरा अधिकार है) अब मैं मार (उपेक्षा) सहन नहीं करूँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुम्हार के घड़े के लिए किया जाता है परन्तु प्रतीकार्थ में यह नारी के प्रारम्भिक जीवन के एक महत्वपूर्ण सामाजिक पक्ष की अभिव्यक्ति करती है। पहेलियों के रूप में ऐसे ही जटिल प्रयोगों की बद्धमूल मान्यताओं एवं प्रमाण-सिद्धि के लिए लोग वेदों से आज भी सहायता लेते हैं, यह निम्न पहेली से स्पष्ट है—"मोरी किसा झूंटी नें जानों वेद दै छानों वेद है साखी—तीन जनन की उनतीस आंखी।" (रावण, ब्रह्मा, शुक्राचार्य)।

जिस प्रकार लोकधारा को समझने के लिए वेद हमारे लिए महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं उसी प्रकार वेदों एवं अन्य प्राचीन ग्रन्थों के जटिल प्रयोगों की गुत्थियाँ सुलझाने में लोक-वार्त्ता-शास्त्र हमारा पथ प्रशस्त कर सकता है—यह आज निर्विवाद माना जाने लगा है। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने तो ऋग्वेद को 'पहेलियों का वेद' तक कह डाला है।[1]

वैदिक युग के लोक-जीवन में प्रहेलिका को आनुष्ठानिक क्रिया का एक अनिवार्य अंग माना जाने लगा था और सामाजिक जीवन के अनेक मांगलिक उत्सवों पर उसे आनुष्ठानिक महत्ता प्रदान की गयी थी। यह परम्परा समस्त भारतीय आर्य-अनार्य जातियों में अपने विविध रूपान्तरों के साथ वर्तमान युग तक चली आई है। आज भी इस प्रथा के अवशेष पिछड़ी एवं वन्य जातियों और समाज के अविकसित परिवारों में पाये जाते हैं।[2] इसके द्वारा वर-वधू एक दूसरे के बौद्धिक स्तर का आकलन करते थे और माधुर्यभाव की तादात्मता उनमें स्थापित की जाती थी। इसी महत्ता के कारण उस युग में प्रहेलिका को एक विद्या (कला) माना जाने लगा था जिसकी शिक्षा भी दी जाती थी। भगवान् ऋषभदेव ने अपनी पुत्री सुन्दरी को जिन ६४ कलाओं का बोध कराया था, उनमें एक प्रहेलिका भी थी।[3]

लोकशक्ति और वेद प्रमाण के कारण उपनिषदों, पुराणों तथा पहली शती के बाद के लौकिक संस्कृत साहित्य पर प्रहेलिका की अभिव्यक्ति-पद्धति का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा। अथर्ववेद की कुछ गूढ़ और श्लेषमूलक ऋचाओं को प्रवल्हिका की संज्ञा दी गयी। लौकिक उपादानों की उपमा या समानता के आधार पर अलौकिक या अप्रत्यक्ष सत्व की अभिव्यक्ति की प्रणाली प्रहेलिका-पद्धति से ही विकसित हुई है। गीता में संसार की उपमा पीपल के वृक्ष से दी गई है—'ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।' वेदों की लाक्षणिक प्रहेलिका परम्परा का इसे हम विकास कह सकते हैं। उपनिषदों में नचिकेता और यम तथा महाभारत में लोक-प्रसिद्ध यक्ष और युधिष्ठिर के वार्त्तालाप पहेली की एक और पुरातन लोकशैली के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिसे हम पहेलियों की वार्त्तालाप या प्रश्नोतर शैली कह सकते हैं। दो पक्षों के बीच किसी शर्त्त को सामने रख कर इस प्रकार के प्रश्नोत्तर कभी-कभी अति विस्तृत और जटिल हो जाते

---

१. ग्राम साहित्य (तीसरा भाग), पृ० २८८।

२. Notes on the use of riddles in India—Man in India; Vol. 13, Dec. 43

३. कल्पसूत्र (आत्मानन्द प्रकाशन सभा, पंजाब), पृ० ११९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे।[1] इस शैली का प्रयोग छोटे रूप में पति-पत्नी, मित्रों तथा पारस्परिक अन्य वार्त्तालापों में भी किया जाता रहा है। इनके ढेरों उदाहरण लोक-पहेलियों से दिये जा सकते हैं। गुण धर्म-कुमार की कथा[2] में ऐसा ही एक प्रसंग आया है। गुण धर्मकुमार ने विवाह के पश्चात् प्रथम मिलन में अपनी पत्नी से एक प्रहेलिका बूझी थी—

'स्थले जाता जले स्वैरं, याति तेन न पूर्यते,
जनप्रतारिणी नित्यं, वद सुन्दरि! का न्वसौ?' (नौका)

पत्नी ने भी उचित उत्तर देकर पति से एक प्रहेलिका बूझी थी—

'पयोधरभराक्रान्ता, तन्वङ्गी गुण संयुता,
नरस्कंधसमारूढ़ा, का प्रयात्यबलां बिना?' कावाकृति (कांवर)

कहना न होगा कि प्राचीन युग में प्रहेलिका आनुष्ठानिक क्रिया का एक अनिवार्य अंग रही है।

पौराणिक युग में प्राचीन धार्मिक आस्थाएं बद्धमूल हो चुकी थी और विकास का माग अवरुद्ध हो गया था। टीका ग्रंथों की भरमार हो रही थी और अंध परंपराएं स्थापित हो चुकी थीं। धर्म के वाह्य आवरणों को ही प्रमुखता दे दी गई थी। लोक साहित्य के स्वरूप को भी इस स्थिति ने प्रभावित किया था। पहेलियों में कथात्मक और संकेतात्मक शैलियों का विकास हुआ जिनके माध्यम से पौराणिक चित्र उपस्थित किए गए, जिनके द्वारा धार्मिक रूढ़ियां लोक में जड़ पकड़ गईं और आज भी उनके वे विश्वास जीवित हैं। वाल्मीकि द्वारा कुशा से कुश (लव कुश) की उत्पत्ति हुई, यह पौराणिक धारणा निम्न पहेली में द्रष्टव्य है—'निरदंदी के दंद भव बिना दंत की हंसी, बाप बिना लरका भयौ बऊ घरै न हती।' रामकथा के अनेक देशी और विदेशी ग्रंथों में कुशा से कुश की उत्पत्ति की कथा दुहराई गई है। समुद्र में विष्णु जी अपनी पत्नी लक्ष्मी जी के साथ लेटे हैं और भृगु जी उनकी छाती (हृदय) के ऊपर पदाघात करते हैं,[3] यह पौराणिक धारणा निम्न पहेली में बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त हुई है—'परी पिता के पेट में अपने पति के साथ, हिरदै छू छू जात है पति, पराए की लात।' शंकर के वरदान से प्रत्येक कल्पांत में लोमश ब्रह्मर्षि का केवल एक रोम (लोम) ही गिरता है, वे कभी मरते नहीं—ऐसा उल्लेख पुराण ग्रंथों में हुआ है।[4] लोक की अनुभूति पहेली के रूप में इस प्रकार सुरक्षित है—'सत्तर जुग पल्लें परे अधर रहे जुग चार, एक जीव तरसत रऔ धरवे खों औतार।' श्रवण कुमार और उनके अंधे माता-पिता की कथा तो लोक में बहुत प्रसिद्ध है—'दो पग चलें चार लटकाएं चले जात सुख चैंना, ऐसौ

---

१. बुन्देलखंड में 'लावनी' की परंपरा इस शैली का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है।
२. शान्तिनाथ चरित्र : भावचन्द्र सूरि, पृ० २९१
३. पद्म पुराण : उत्तर खंड
४. स्कंदपुराण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयौ न हुइयै आगें, तीन मूंड़ दो नैनां।' महादेव जी के हाथ में ब्रह्मा जी का पांचवां मस्तक होने की कथा भविष्य पुराण में आई है। यह पौराणिक धारणा निम्न पहेली में प्रकारान्तर से व्यक्त हुई है--'चार चरन मग चलन खों सरवन नैंन छत्तीस, सोरा भुजा पसार कें नों मुख देत असीस।' बुन्देली पहेलियों का एक बड़ा भाग इस प्रकार पौराणिक युग की धारणाओं को सुरक्षित किये हैं।

पहली शती के बाद अलंकार शास्त्र ने पहेली की अभिव्यक्ति-प्रणाली को रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यंजना में अपनाया और अलंकार एवं ध्वनि संप्रदाय के आचार्यों ने इसे उत्कृष्टता की चरम सीमा तक पहुंचा दिया। इस गहन प्रवेश में पहेली की अभिव्यंजना शक्ति तो निखरी परन्तु उसकी व्यापकता, साधारणीकरण और लोकानुभूति के तत्व नष्ट होते गए, यद्यपि साहित्यिक पहेली विविध रूपों में विकसित हुई। आगे चल कर आलंकारिकों ने शिष्ट पहेलिका के इन्हीं रूपों या नवीन प्रयोगों को साहित्य में विविध अलंकारों की संज्ञा दी। रचना-शैली की दृष्टि से प्रहेलिका स्वयं एक अलंकार माना जाने लगा। रहस्यमूलक प्रवृत्तियों के उद्घाटन से संबंधित रूप को द्रष्टिकूट की संज्ञा दी गई और लोक प्रहेलिका से उसके पुरातनसंबंध को भुला दिया गया। द्रष्टिकूट और प्रहेलिका दो स्वतंत्र प्रयोग माने जाने लगे और साधारण जन समाज से संबंधित मानी जाने के कारण पहेली को चित्रकाव्य के अंतर्गत अधम काव्य की संज्ञा दी गई--

काव्ये येऽभिहिताः दोषाः कैश्चितेभ्यः प्रहेलिकाः।
कर्त्तव्याश्च तथैवान्यास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्॥[1]

पांचवीं-छठी शती में, इस प्रकार, एक ओर जहाँ साहित्यिक पहेली और लोक पहेली में व्यवधान उपस्थित हुआ और उच्च वर्ग द्वारा पहेली को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा, वहां दूसरी ओर साहित्यिक पहेली के अंग विच्छिन्न कर दिये गए और विविध अलंकारों के रूप में उसके मूल स्वरूप को पहचानना भी दुर्लभ हो गया। इसीलिए इस युग के टीका-प्रधान निष्क्रिय साहित्य में लोक-चेतना का कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता। परन्तु यह स्थिति लोक प्रहेलिका को अधिक प्रभावित न कर सकी। लोक परंपरा सदैव नदी के जल की तरह प्रवहमान रही। अब भी लोक में पहेली की प्रतिष्ठा ज्यों की त्यों थी। प्रत्युत्, अपने समस्त पूर्ववर्त्ती प्रभावों को ग्रहण कर चल रही थी। उस समय उच्च वर्ग के लिए वह केवल बुद्धि-विलास, मनोरंजन या विनोद का ही साधन नहीं थी, वह विद्वानों की गोष्ठी में आयोजित की जाती थी और सामान्य जनता में रहस्य वार्त्ता का माध्यम थी। एक पृथक् कला के रूप में वह अब भी समादृत होती थी। राजा मेघरथ ने सब कलाओं में निपुण अपने पुत्रों से अपनी-अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखलाने के लिए राज-दरबार में परस्पर गूढ़ प्रश्नोत्तर किये थे--

'कथं संबोध्यते ब्रह्मा? दानार्थे धातुरत्र कः?
कः पर्यायश्च योग्यानां? को वाऽलंकरणं नृणाम्?'
उत्तर--कलाभ्यास

---

१. काव्यादर्श : दंडी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्ड नीतिः कथं पूर्वं ? महाखेदे क उच्यते ?
कोऽबलानां गति-र्लोक-पालः कः पंचमो मतः ?'

उत्तर—महीपति

किमाशीर्वचनं राज्ञा ? का शम्भोस्तनुमण्डनम् ?
कः कर्त्ता सुख दुःखानां ? पात्रं च सुकृतस्यकिम् ?

उत्तर—जीवरक्षा विधि

सुखदा का शशांकस्य ? मध्ये च भुवनस्य कः ?
निषेधवाचकः को वा ? का संसार-विनाशिनी ?

उत्तर—भावना [1]

प्रहेलिका की यह प्रतिष्ठा स्वयं दंडी ने स्वीकार की है—

क्रीड़ा गोष्ठी विनोदेशु तज्ज्ञैराकीर्ण मंत्रणे,
परव्यामोहने चापि सोपयोगाः प्रहेलिकाः।[2]

अपभ्रंश-युग में संस्कृत भाषा और साहित्य के ह्रास एवं लोकोन्मुख नव साहित्य-चेतना के कारण, लोक प्रहेलिका के व्यापक प्रचार-प्रसार एवं उसकी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा को स्वीकर कर, इस युग के कवियों और लेखकों ने उसे नव-साहित्य में पुनः प्रतिष्ठित किया। हिन्दी साहित्य की गर्भावस्था-अपभ्रंश युग (सिद्ध-सामंत युग) की मूल प्रवृत्तियों के निर्माण में लोक-प्रहेलिका का क्या स्थान था, इसका अध्ययन उस युग के साहित्य की उन मूलभूत गुत्थियों को सुलझाने में सहायक होगा जिन्हें अब तक काल्पनिक गोरखपंथी और ऊंटपटांग कह कर उपेक्षा की जाती रही है। कुछ विद्वानों ने इस युग की प्रहेलिका अभिव्यक्ति-शैली का संबंध तिब्बत के बौद्ध संतों से जोड़ना चाहा है पर जैसा कि कहा जा चुका है, भारतीय दर्शन और विशेषकर योगमार्ग के प्रकाशन में इस शैली के प्रयोग की परंपरा अत्यंत प्राचीन रही है। योगवाशिष्ठ में वशिष्ठ जी द्वारा भगवान राम को दार्शनिक सिद्धान्तों और योग तत्व के निरूपण में इस शैली का सर्वाधिक प्रयोग किया गया था।[3]

सिद्धों, तांत्रिकों और नाथपंथी योगियों की जिन 'वाणियों' को संध्या-भाषा के नाम से

---

१. भावचन्द्र सूरि : शांतिनाथ चरित्र (पांचवां प्रस्ताव) पृ० १९८-९९

२. काव्यादर्श : दंडी

३. एक शून्य नाम का नगर है। उसमें तीन राजपुत्र रहते थे जिनमें से दो तो अभी पैदा ही नहीं हुए थे और एक गर्भ में भी नहीं आया था। भूख से वे तीनो एक वृक्ष के कुंज की छाया में जा बैठे। ये तीन वृक्ष ऐसे थे जिनमें से दो तो उपजे ही नहीं थे और एक का बीज ही नहीं बोया गया था। वहां पर बैठ कर उन्होंने विश्राम किया और अमृत के समान सुस्वादु फलों का भक्षण किया, इत्यादि। —योग वाशिष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविहित किया गया है, वे वस्तुतः लोकमूलक प्रहेलिका-अभिव्यक्ति-पद्धति को ग्रहण कर रची गई ऐसी रचनाएं हैं जिनका उद्देश्य लोक में लोक-शैली के माध्यम से ही दर्शन और धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों को स्पष्ट करना और इस प्रकार उपदेश देना था। इसीलिये इन रचनाओं में एक ओर जहां वक्ता (लेखक, गुरु) की स्थिति अनिवार्य होती है वहां दूसरी ओर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष श्रोता या शिष्य की उपस्थिति भी आवश्यक हो गई है। पहेली की ही भांति इन साधकों ने अपनी रचनाओं को प्रश्नमूलक अथवा शंकामूलक रखा है और उनका समाधान योग्य शिष्यों अथवा जिज्ञासुओं की बौद्धिक-शक्ति पर छोड़ दिया है। दूसरी ओर, लोकभाषा की इन रचनाओं में अर्थ-वैषम्य, वैचित्र्य, लोक उपमानों और उत्प्रेक्षाओं के वे तत्व बड़ी मात्रा में मिलते हैं जो प्रहेलिका-परंपरा से लोक-मान्य हो चुके थे। गोरखनाथ तथा अन्य नाथ-पंथी योगियों की रचनाओं के कुछ उद्धरण हमारे मंतव्य को स्वयं स्पष्ट कर देंगे—

अबूझि बूझि लै हो पंडिता अकथ कथिलै कहाणी,
सीस नवावत सतगुरु मिलिया जागत रैंण विहाणी।
× × ×
भणत गोरखनाथ मच्छिन्द्रना पूता मार्‌यौ मृघ भया अवधूता,
याहि हियाली जो कोई बूझै, ता जोगी को त्रिभुवन सूझै।
—गोरखनाथ (सं० ८४५)

जो सो बुधी सोध निबुधी जो सो चोर सोई साधी,
निति सियाला सिंहे सम जूझअ टेण्टण पाएर गीत बिरले बूझअ।
—टेण्टण पा (सं० ८५०)

पंडिअ लोअहु खमहु महु एत्थुण किअइ विअप्पु,
जो गुरु बअणे मइ सुअउ तहि किं कहमि सु गोप्पु।
—सरहपा (आठवीं शती)

तिण ण छूपइ पिवइ ण पाणी, हरिणा हरिणीर णिलअ ण जाणी,
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तों ए वन छाड़ि होहु भान्तो।
—भूसुकपा (८०० ई०)

काआ तरुवर पंच'वि डाल, चंचल चीए पइट्ठा काल,
दिण करिअ महासुह परिणाम लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण।
—लुइपा (८३० ई०)

उक्त उद्धरणों का लोक-प्रहेलिका से तुलनात्मक अध्ययन यहाँ हमारा प्रतिपाद्य नहीं है। गोरखनाथ ने जोगियों से 'हियाली' को बूझना चाहा है जिससे कि रहस्य प्रकट हो सके। अवधी में प्रहेलिका को 'हियाली' कहा जाता है।[1] बुन्देली समानार्थी 'बुझौअल' बूझने से बना है।

---

१. अंतरवेद (मासिक) जनवरी '५९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धों तथा नाथपंथी योगियों की साधना-पद्धति का प्रभाव हिन्दी साहित्य में आगे चल कर कबीर तथा सन्त-साहित्य-धारा के अन्य साधकों में परिलक्षित होता है। कबीर-साहित्य की पृष्ठभूमि इन साधकों से मूलतः भिन्न नहीं थी। कबीर के समय तक सन्ध्याभाषा के अनेक प्रयोग रूढ़िबद्ध हो चले थे। कबीर ने अपने विचारों और सिद्धान्तों के अनुरूप उन्हें ग्रहण किया और अनेक नए प्रयोगों को विकसित किया परन्तु अभिव्यक्ति-पद्धति में कोई तात्विक परिवर्तन लक्षित नहीं होता। उदाहरणार्थ उनके एक पद का कुछ अंश लीजिए —

घोरे चरि भैंस चरावन जाई, बाहरि बैलु गोनि घर आई,
कहत कबीर जु इह पद बूझै, राम रमत तिसु सब किछु सूझै।[1]

कबीर के पश्चात् सन्त विचारधारा के साधक अपनी वाणियों में प्रहेलिका शैली या उलटवाँसियों की अभिव्यक्ति-प्रणाली को अधिक विकसित न कर सके। फलतः कबीर के प्रयोग ही पन्थ में रूढ़ हो चले, यद्यपि टीका ग्रन्थों में अपनी-अपनी मान्यतानुसार साधकों द्वारा उनके रूप और अर्थों को तोड़ा-मरोड़ा जाता रहा। सन्त सुन्दरदास ने अवश्य कुछ नये प्रयोगों को विकसित किया था, पर वे लोकभूमि को न छू सके। लोक-चेतना ने अनेक पहेलियों को कबीर के नाम से सम्बद्ध कर रखा है[2] और उनकी 'उल्टी बानी' को सीधी तरह से समझाने या सुलझाने में प्रहेलिका-शैली की रूढ़ मान्यताओं का सहारा लिया जाता है। १७वीं शती के सन्त कवि धरनीदास और धर्मदास ने गीतों के रूप में अनेक पहेलियों और देशकूटों की रचना की थी। संत धरनीदास के 'शब्द-प्रकाश' में 'पेहानी प्रसंग' शीर्षक से भोजपुरी पहेलियां अध्यात्म पक्ष को ले कर लिखी गई हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

नारी एक बहुतन्ह सुखदाई, पिये ना पानी पेट भरि खाई,
चार महीना ताकर चांड, पचवें मास रहे कि जांऊँ।

× × ×

---

१. श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी : सन्त कबीर, पृ० ३०–३७।

२. उदाहरण (अ) इक बँगले के दस दरवाजे बीस पवन का खम्भा है, आवत जात कोई नहिं देखा यह तो बड़ा अचम्भा है।.....निकल गया बँगले से हाकम बँगला खाक में मिलता है। कहत कबीर सुनो भई साधो इस बँगले का रहनेवाला बारबार नहिं आता है।

(आ) एक अचम्भा हमने देखा कुआ में लग गई आग,
पानी पानी जल गया, मछली खेलै फाग।

(इ) चरखा बांकौ रंग बिरंगी, पांचों रंग मिलाय,
टूक टूक चरखा के जोड़े बंद सों बंद खंगाय।

—लेखक के निजी संग्रह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक गज पुरुष सात गज नारी, पंडित होखे लेइ विचारी,
जूथ एक अपने मग आव, सात पांच मिल करेले बधाव ।
× × ×
नारि एक संसार पियारी पांच भतार चाह बरिआरी
जे ना बूझै से हारे होड़, आन अंग ना बाइस गोड़ ।[1]

साहित्यिक पहेली के एक रूप—द्रष्टिकूट की चर्चा इस लेख में अन्यत्र की गई है। द्रष्टिकूट की रचना-शैली यद्यपि लोक प्रहेलिका से ही उद्भूत हुई थी, परन्तु संस्कृत के पांडित्य-पूर्ण जटिल प्रयोगों के कारण लोक उपादानों को उसमें उतना स्थान प्राप्त नहीं हो सका जितना उल्टवांसियों में। बात यह थी कि बौद्ध धर्म के ह्रास होने पर सिद्ध योगियों और कबीर जैसे निर्गुण संतों के आंदोलन लोकभूमि को छूकर चले थे। अतः लोकतत्वों को उन्होंने अपने प्रचार का माध्यम बनाया। इधर सगुण भक्ति का आंदोलन लोक से संबंधित होने पर भी मूल में संस्कृत और हिन्दू धर्म-ग्रथों से प्रभाव ग्रहण करता था और पंडितों के मांध्यम से विकसित हो रहा था। अतः अभिव्यक्ति-प्रणाली में लोक प्रहेलिका के तत्वों को प्रश्रय मिलने पर भी वे परंपरागत मान्यताओं पर हावी न हो सके। द्रष्टकूट की रचना अधिक बौद्धिक थी और इसीलिए लोक के उच्च वर्ग द्वारा ही ग्राह्य रही। उल्टवांसी को लोक पहेली और द्रष्टकूट को साहित्यिक पहेली का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। द्रष्टिकूटों की रचना हिन्दी के प्रारंभिक काल में विद्यापति, चन्द और सूर ने की। कबीर की भांति सूर ने भी कहीं-कहीं पंडितों से अपनी पहेली का भेद बूझा है—

देखि सखि, तीस भानु इक ठौर।
... ...
कोटनि कोट तरंगनि उपजत जोग जुगति चित लाउ।
सूरदास प्रभु अकथ कथा कौ पंडित भेद बताउ॥[2]

सूर के परवर्त्ती कृष्णभक्त एवं अष्टछाप के अनेक कवियों ने कूट-शैली की रचनाओं का निर्माण किया था। परमानन्ददास का एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

ऊधौ जू मन की मनै रही।
पंच मुख दृग आठ जाके द्वादस चरन मही,
आठ नारी द्वै भरतारी जुगल पुरुष इक नारि गही।
चारि बेद दुहि चलौ सांवरौ, नैनन सेन दही,
परमानन्ददास के प्रभु पै यों पीवत हैं मही।[3]

---

१. भोजपुरी लोकगीत में करुण रस; दुर्गा प्रसाद सिंह, पृ० २३-२४
२. चुन्नीलाल शेष; सूर के सौ कूट, पृ० ११८
३. तुलना कीजिये—छिकरकना दो पूंछरीं दस गोड़े मुख चार,
एक मुख में जिह्वा नैंयां पंडित करो विचार।
(बुंदेली पहेली : गाय दुहना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायसी तथा अन्य सूफ़ी प्रेममार्गी साधकों ने, विशेषकर कुतुबन और मंझन ने अपनी रचनाओं में जगह-जगह प्रहेलिका शैली को अपनाया है। मंझन कृत 'मधुमालती' में अनेक प्रयोग बिखरे पड़े हैं।[1] सूफ़ी साधकों की अवधी रचनाओं में 'हियाली' के प्रयोग बहुत मिलते हैं। सूफ़ी साधकों ने वृहत् रूपकों की रचना में लोक प्रहेलिका-शैली के साहित्यीकरण का स्तुत्य प्रयास किया है।

रीति काल में साहित्य केवल राजेदरबारों तक ही सीमित रह गया था। राधिका कन्हाई और उनकी लीलाओं के नाम पर बड़े-बड़े राजाओं, जमींदारों और जागीरदारों तथा सम्पन्न धनिक वर्ग की वासनाओं की तृप्ति की जाती थी और दूसरी ओर उन रचनाओं को भक्ति-परक बतलाया और बनाया जाता था। इन दोनों स्थितियों को एक साथ संभालने के लिए द्रष्टिकूट और प्रहेलिका की रचना-शैली सर्वाधिक उपयुक्त थी। काव्य के वाह्य उपकरणों से रचना को अलंकृत करने का क्षेत्र भी इस शिल्प-विधान में खूब था। शब्द-चमत्कार की प्रायः समस्त पद्धतियों का प्रयोग रीतिकालीन कवियों ने द्रष्टिकूट शैली की रचनाओं में किया है। इस युग में यह प्रवृत्ति इतनी तीव्र थी कि द्रष्टिकूट में मूल अर्थ या अभिव्यक्ति का स्थान गौण होने लगा था और शाब्दिक जटिलता की गुत्थियों को खोलना ही एक प्रकार से इनका अभिप्रेयार्थ बन गया था। ग्रंथ के प्रारंभ या अंत में लेखन-तिथि की सूचना से संबंधित अंश शाब्दिक ऊहापोह से स्वयं एक पहेली बन गया। सूर के द्रष्टिकूटों से रीतिकालीन द्रष्टिकूटों में यही भेद है। द्रष्टिकूट के माध्यम से सूर किसी रहस्यपूर्ण वार्त्ता या चित्र का उद्घाटन करना चाहते हैं जब कि रीतिकालीन द्रष्टिकूट उस अर्थ-गांभीर्य तक नहीं पहुंचते, केवल शाब्दिक विलास में अपनी सफलता मानते हैं।

यों तो रीतिकालीन प्रायः समस्त श्रेष्ठ कवियों ने इस रचना-पद्धति को अपनाया है और अनेक प्रसंगों पर द्रष्टिकूटक दोहों या पहेलियों की रचना की है, पर इस शैली की कुछ स्वतन्त्र रचनाएँ इस युग में लिखी गयी थीं। सन्त कवि धरनीदास की रचना का उल्लेख पहले किया जा चुका है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी में एतद्विषयक चार हस्तलिखित ग्रन्थ[1] एवं सागर विश्वविद्यालय के बुन्देली-शोध-कक्ष में दो हस्तलिखित ग्रन्थ[2] उपलब्ध हैं। प्रस्तुत लेखक के पास भी रीतिकालीन कवित्तों का एक हस्तलिखित गुटका सुरक्षित है[3] जिसके एक अंश में लगभग

---

१. अंतरवेद, अंक २, जनवरी १९५९

२. श्रीधाम की पहेली; लेखक, प्राणनाथ, हस्तलेख सं० ११८४।
पहेली; लेखक, अज्ञात, ह० सं० १७०६।
दोहे प्रहेलिका तथा कूट; लेखक, अज्ञात, ह० सं० १८५९।
ग्वाल पहेली; लेखक अज्ञात, ह० सं० ३११ (याज्ञिक)।
विविध विलास (भाग ३); लेखक, जानकीप्रसाद।

३. द्रष्टि कूटक सटीक; लेखक, भवदेव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५ पहेलियों का संग्रह हुआ है। इन सब संग्रहों में से एक प्रहेलिका-संग्रह सटीक है—शेष में केवल पहेलियों का संकलन हुआ है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से एक बात बहुत स्पष्ट हो जाती है जिसका सम्बन्ध इस लेख की मूल-स्थापनाओं से है। 'द्रष्टिकूटक सटीक' में कुछ दृष्टिकूट ऐसे हैं जो 'पहेली संग्रह' में भी उपलब्ध होते हैं और आंशिक पाठान्तरों के साथ वे लोक में भी प्रचलित हैं। 'प्रहेलिका संग्रह' की जो प्रथम प्रहेलिका ब्रह्मा-विष्णु-महेश (त्रिदेव) की वन्दना के रूप में आई है,[1] वह 'द्रष्टिकूटक सटीक' में दसवीं पहेली के स्थान पर आई है और बुन्देलखण्ड के जन-जीवन में विविध रूपान्तरों के साथ प्रचलित है। 'दोहे प्रहेलिका तथा कूट' में विविध रचनाएँ एकरूपता लिए हैं और उनमें विभेद नहीं किया गया है। बुन्देलखण्ड के जनजीवन में 'द्रष्टिकूटक' शब्द उन पहेलियों के लिए प्रचलित हैं जिनमें पौराणिक या धार्मिक चित्रों की अवतारणा की जाती है। 'दृष्टिकूटक सटीक' ऐसे ही कूटों का संकलन है और 'पहेली' में भी ऐसे कुछ कूटों का समावेश है। 'दोहे प्रहेलिका तथा कूट' में पहेलियों और कूटों की रचना दोहा-शैली में हुई है। स्पष्ट है कि रीति काल में द्रष्टिकूट और प्रहेलिका शब्दों के प्रयोग प्रायः एक ही अर्थ में हुए हैं।

रीतिकालीन कवियों की प्रमुख वृत्ति श्रृंगारिक रही है। संयोग-वियोग की अनेक मनोदशाओं, नायिका भेद तथा नायक-नायिका के वार्तालाप आदि विषयों पर इन कवियों ने कूट-शैली का भी उपयोग किया था। इस प्रकार की रचनाओं की मूल विशेषता यह है कि उन वाह्य-स्वरूप या रूप-आकृति को पौराणिक या धार्मिक वातावरण से सजाया गया है पर मूल अभिव्यंजना श्रृंगार की हुई है। उदाहरणार्थ प्रहेलिका के पौराणिक परिवेश में श्रृंगारिक प्रवृत्तियों से सम्बन्धित कुछ चित्र नीचे दिये जाते हैं :—

शक्ति सिंधु श्रुति जोर जुग यामिनि गई बिहाय,
सलिल जात प्रीतम उदै दरसन दीजौ आय। (संयोग)

× ×

चन्द्र ग्रहण काशी वर्‌यौ सब सखि दीसौ न,
एक सखी लोंगें दई कहु सखि कारण कौन? (प्रोषित पतिका)

× ×

गो सुत तनया तासु सुत लख्यौ ललक पिय भाल,
मनसिज पितु बैंच्यौ जहां उलट पधारौ लाल। (खंडिता)

× ×

विध सुत सुत तनया निकट सौंहें श्री नन्दलाल,
जल जातक अरि सुवन सुन उठ धांई ब्रजलाल। (अभिसारिका)

---

१. 'द्वादश मुख भुज अष्टदस द्रग पचीस भुज बीस,
सो तुम पै रक्षा करें दिन में बीसों बीस।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभवतः ऐसी ही रचनाओं को दृष्टि में रख कर किसी कवि ने कहा था—'आगे के सुकवि मानिहैं तो कविताई, न तु राधिका कन्हाई सुमिरन कौ बहानो है!' इस कविताई (रचना-विधान की जटिलता) के माध्यम से 'सुमिरन' तो हो ही जाता था, बहाने के लिये ही सही। परन्तु आगे के कवियों ने पीछे के कवियों की ही तरह रीतिकालीन कवियों की इस 'कविताई' को कविता के रूप में उच्च स्थान नहीं दिया और वह बहाना सचमुच आज यथार्थता समझा जाने लगा। वस्तुतः कविताई और सुमिरन को एक साथ चलाने का महा प्रयत्न ही इन कवियों ने किया था। शब्दालंकारों से युक्त चमत्कार प्रधान प्रहेलिका का मूल्य, अन्तिम विश्लेषण में, काव्य का मूल्य ही माना जाना चाहिये।[१]

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग की पृष्ठभूमि में रीतिकालीन कविताई और सुमिरन को कोई स्थान ही नहीं था। विविध सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों, प्रभावों और परिवर्त्तनों से साहित्य धारा अनेक दिशाओं में बिखर पड़ी। वादविवाद के इस युग में लोक की परंपरागत संपत्ति को भुला दिया गया। साहित्य में लक्षणा और व्यंजना शैलियों के विकास का श्रेय यद्यपि प्रहेलिका शैली को ही है, पर पहेली की प्रतिष्ठित परंपरा को आधुनिक युग के साहित्य में कोई स्थान नहीं मिल सका। भारतेन्दु और द्विवेदी युग का साहित्य प्रधानतः इतिवृत्तात्मक रहा। छायावादी आंदोलन व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों से समन्वित विशुद्ध साहित्यिक[२] आंदोलन था। प्रगतिवाद यद्यपि जनता का नाम लेकर चला था पर वह भी इतिवृत्तात्मक रहा। आज का प्रयोगवादी आंदोलन अवश्य अपनी अभिव्यंजना-पद्धति में प्रहेलिका-शैली के अनेक तत्वों को, जाने या अनजाने ग्रहण किये है। पर यह प्रभाव लोक से सीधा ग्रहण नहीं किया गया। इसीलिए वह निर्जीव है। प्रहेलिका कुछ विशिष्ट प्रयोगों के समुच्चय का ही नाम है। प्रयोग को सनातन कहा गया है और तथाकथित सनातनी व्याख्या में प्रहेलिका-शैली की रचनाओं और प्रयोगों के ही उद्धरण दिये गए हैं।[३] कुछ प्रयोगवादी रचनाएं प्रयोग के नाम पर कूट या पहेलियां बन गई हैं और मनोरंजन के लिए वे पाठकों में खूब खप भी रही हैं। इन पहेलियों और कुछ गिनी-चुनी श्रेष्ठ कृतियों को छोड़ कर, शेष रचनाएं 'ऊब रस' की ही सृष्टि कर पाती हैं। फिर भी, कविताई न सही, राधिका-कन्हाई (प्रयोग) के सुमिरन का श्रेय तो इन कवियों को मिलना ही चाहिए।

---

१. Comment in 'Man in India' (Dec. 1943) on page 266

२. आधुनिक अर्थों में

३. 'भावों का अटपटापन अपने आप में कलंक नहीं है।...बिहारी ने वयःसंधि की उपमा धूपछांह कपड़े से दी है, प्रिय की ओर टकटकी की दिग्दर्शक चुंबक यंत्र से, प्रेम करने की पोलो खेल से। न सूखने वाले जल की उपमा वैदिक ऋषि ने 'जीभ के जल' से दी थी, आग की लपटों की सींग घुमाते हुए पशु से और एक एक दिन ह्रास करने वाली उषा की व्याध-स्त्री से।' —मदन वात्स्यायन, वक्तव्य, तीसरा सप्तक, पृ० १२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक युग के साहित्य में युगों से चली आती हुई प्रहेलिका की सशक्त परंपरा यद्यपि लुप्तप्राय हो गई है परन्तु लोक-मानस में उसके अमिट स्वर आज भी गुंजित हैं और उस गौरव-गाथा को अपने प्राचीनतम कलेवर में सुरक्षित किये हैं। हिन्दी साहित्य की गौरवशाली विशाल परंपरा के सम्यक् अनुशीलन के लिये आज विद्वानों का ध्यान लोक साहित्य की ओर भी गया है। प्रहेलिका शैली मूलतः लोक की ही देन है। साहित्य में लोक प्रहेलिका का अध्ययन हमारी महान परंपराओं की रहस्यमय गुत्थियों को सुलझाने में महत्वपूर्ण योग देगा, यह आज निर्विवाद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविधा

सिंध के लोकदेवता–'झूल्लेलाल'

किसी देश की वास्तविक संस्कृति व सच्चा साहित्य उस देश के लोक-साहित्य में उपलब्ध होता है। अतः इस संस्कृति एवं जनता के साहित्य को सुरक्षित रखने के लिए लोक-साहित्य का संरक्षण और अध्ययन नितान्त ही आवश्यक है। इतना ही नहीं, जिन वीर-महापुरुषों के लिए इतिहास मौन रहा जिनकी इतिहास में कहीं चर्चा तक नहीं सुनने को मिलती, उन महापुरुषों के जीवन को लेकर नाना प्रकार के लोक-गीत और लोक-कथाएँ, हमें आज उस लोक-साहित्य विशेष में पढ़ने एवं सुनने को मिलती रही हैं। तात्पर्य यह है कि इतिहास को भी लोक-साहित्य अपने आप में कुछ अंशों तक समेटे हुए है।

यहाँ हम सिंध के लोक-देवता अथवा ग्राम-देवता झूल्लेलाल पर ही प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

सिंध में इन पंक्तियों के लेखक को लगभग ७,८ वर्ष तक रहने का अवसर मिला है। वहाँ हमने देखा है कि चार प्रकार के मन्दिर विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं (१) शिवालय (२) सिद्ध-पाणी-नाथ (३) द्वारा (४) झूल्लेलाल।

'शिवालय'-शिवजी के मन्दिर होते हैं। इन मन्दिरों में शिवलिंग और कहीं-कहीं शिव की पत्थर की मूर्त्तियों की पूजा होती है।

'सिद्ध-पाणी-नाथ' के मन्दिर नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। इनमें एक साधु कन-फटा अपनी गद्दी का मालिक होता है। इन स्थानों में भी शिव के ही मन्दिर देखने को मिलते हैं।

'द्वारा' भगवान विष्णु का मन्दिर है। इन मन्दिरों में भगवान कृष्ण की तस्वीरें बड़े आकार की होती हैं। कहीं-कहीं द्वारों में श्रीनाथ जी महाराज की बड़े आकार की तस्वीरें भी देखने को मिलती हैं। ऐसे द्वारों से श्री गुसांई जी महाराज का सम्बन्ध भी रहता है। उनका जब कभी इस प्रान्त में पधारना होता है, तो वह यहीं निवास करते हैं।

'झूल्लेलाल' को यहाँ सिंध में 'थान' के नाम से पुकारते हैं। झूल्लेलाल के मन्दिर सिंध में अधिक संख्या में देखने को मिलते हैं।

इन मन्दिरों में किसी भी प्रकार की मूर्ति या तस्वीर आदि नहीं होती। मन्दिर में एक ऊंची-सी चौकी बनी हुई होती है। हो सकता है कि प्राचीन समय में यह चौकियाँ मिट्टी ही की बनाई जाती रही हों; इस समय तो ईंट एवं सीमेंट से काफी अच्छी मजबूत बनाई जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ चौकियाँ मुसलमानों की कब्र की तरह भी बनी हुई देखी गई हैं। इन्हें 'कुंभी' कहते हैं।

इस बड़ी चौकी पर एक और छोटी चौकी लगभग एक अथवा डेढ़ फिट सम-चौरस की बनी रहती है। इसी चौकी पर एक पीतल का बना दीवा रखा रहता है। यह पीतल का दीवा काफ़ी बड़ा होता है। इसमें अनुमानतः दो अथवा तीन सेर तेल भरा जा सकता है। इस दीवे में एक काफी लंबी रुई की बत्ती रखी रहती है। यह दीपक दिन-रात जलता रहता है। दूसरे शब्दों में 'अखण्ड ज्योति' कह सकते हैं। दीवे पर बड़े ही सुन्दर ढंग का पीतल का ढक्कन लगा रहता है। इसके पास ही पीतल की आरती, शंख, धूपदानी एवं दूसरे सभी सेवा के उपयोगी उपक्रम रखे रहते हैं। स्मरण रहे कि यह सभी सामग्री नीचे, उस बड़ी वाली चौकी पर ही रखी जाती है, छोटी वाली चौकी पर तो केवल पीतल का दीवा ही रखा रहता है। एक बड़ी सी पीतल की घण्टी भी समीप ही रखी होती है, जिसे पुजारी बाबा आरती करते समय बजाया करते हैं।

'थान' (मन्दिर) में एक नगाड़ा, कांसी की झालर और छत में पीतल की घण्टियाँ लोहे की जंजीरों से टंगी रहती हैं। इस चौकी के समीप ही एक लकड़ी का बना झूला अथवा पालना रखा रहता है। एक बड़ा-सा लाल रंग का कपड़ा इस 'अखण्ड-ज्योति' पर शामियाने के रूप में छत में टंगा रहता है। इस स्थान को **'झूल्लेलाल' का थान** कहते हैं।

झूल्लेलाल की पूजा एवं सेवा वैसे तो पुजारी रोज ही करता है लेकिन विशेषरूप से हर महीने की शुक्लपक्ष की द्वितीया को उत्सव बड़े ही समारोह के साथ होता है। इस पूजा को 'चंदरात' के नाम से पुकारा जाता है।

पुजारी इस रोज भक्तजनों की दुकानों पर जाता है, सुबह से शाम तक 'झूल्लेलाल' कहता हुआ। भक्त लोग श्रद्धानुसार, आना-दो-आना उसकी झोली में डाल देते हैं। इस प्रकार संध्या को पुजारी घूम-फिर कर अपने मन्दिर में पुनः लौट आता है। उस रोज काफी मात्रा में चौलाई (चँवले) को उबालकर उस पर नमक-मिर्च लगाकर पुजारी तैयार कर लेता है। संध्या समय भक्त लोग मय स्त्री-बच्चों के मन्दिर में दर्शन करने आते हैं। पुजारी सभी लोगों को प्रसाद देता है।

झूल्लेलाल की पूजा का तात्पर्य सिंध में 'जल-देवता' अथवा 'वरुण-देवता' की पूजा से है। हैदराबाद, रोहड़ी, सखर, जैकमाबाद और यहाँ तक बिलोचिस्तान में सिबी, कोईटा, मस-तँग और कलात तक में वरुण देवता की पूजा इस झूल्लेलाल के नाम पर देखने को मिलती है। रोहड़ी से सखर जाते समय सिंध नदी पार करनी होती है। सिंध पर इस प्रकार एक बहुत ही लंबा और अपने ढंग का कैंचीनुमा पुल बना हुआ है जो रोहड़ी और सखर को एक दूसरे से मिलाता है। मेरे विचार में हावड़ा (कलकत्ता) के पुल को छोड़कर समूचे भारत में ऐसा दूसरा कोई पुल इतना मजबूत और एक दो माइल तक लंबा संभवतः नहीं है जिस पर से होकर रेल तेज़ रफ्तार से चल सकती हो।

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस समय इस पुल पर से गाड़ी रोहड़ी से सखर और सखर से रोहड़ी को चलाती है, रेल के सारे डब्बों में भक्ति-रस का सागर उमड़ उठता है। भक्त लोग, नारियल, बतासे, रुपये, पैसे और नाना प्रकार के फल-फूल, मिठाइयाँ आदि सिंध नदी में 'झूल्लेलाल' के नाम पर बड़े जोरों से उछालते हैं और अपने इष्ट देवता को समर्पण करते हैं। कुछ लोग अपने पहिनने के गहने, अंगूठियाँ और गले के हार तक झूल्लेलाल के नाम पर सिंध नदी में डाल देते हैं।

इस प्रकार आज भी सिंध में और उसके समीप के प्रदेश में वरुण-देवता की पूजा भली भांति हो रही है। निश्चय ही लोक-साहित्य में वरुण-देवता को लेकर तत्सम्बन्धी लोक-गीत एवं लोक-कथाएँ काफी संख्या में होनी चाहिएं, यह भी एक शोध का विषय है।

वरुण-देवता की पूजा को लेकर[1] डा० श्री **सुनीतिकुमार जी चटर्जी लिखते हैं**—

"सिन्ध के कथा-काव्यों में ससि और पून्हों की कथा दूसरा बहुप्रचलित गीत-काव्य है जिसकी उत्कृष्ट साहित्यिक विशेषताएँ हैं और इसे भली-भाँति सिंधी-हिन्दुओं तथा मुसलमानों की संयुक्त रचना कह सकते हैं। परन्तु मोमल तथा रानो, दोदो और चनेसर, उमर एवं मरै, तथा कौरों और चनेसर (यह कच्छ में भी प्राप्य है, और वहाँ यह चनेसर और उसकी पत्नी लीला-चनेसर के प्रति-जिसके प्रेम की प्रतिद्वंदिनी कुमारी कौरों थी—से संबंधित गीति-काव्य है) से संबंधित तथा समुद्र एवं सिंधु नदी के देवता वरुण के अवतार, उडेरोलाल, जो गाढ़े समय में हिन्दुओं का सहायक हुआ था, ब्राह्मणवाद के निरंकुश राजा दलूराय से संबंधित मध्यकालीन सिंध के कतिपय रोचक गीति-काव्य हैं जो अँगरेजी पाठकों के समक्ष आए हैं। इनमें एक हिन्दू सामंत, जिसे मुसलमान शासक ने बंधक में रख छोड़ा था, से संबंन्धित गीतों का एक ओजस्वी अनुवाद सर एडविन आर्नल्ड ने किया है।"

आप आगे और लिखते हैं—

"उडेरोलाल की कथा या गीति-काव्य अपने ढंग का अनोखा है, और किसी को यह निश्चित हो सकेगा कि ऐसे बहुतेरे गीति-काव्य उपलब्ध हो सकेंगे जो आरंभिक मध्यकालीन सिंध के हिन्दू लोगों की धार्मिक धारणाओं और अनुभूतियों पर कुछ प्रकाश-प्रक्षेप कर सकेंगे। मरक नामक एक मुसलमान शासक ने सिंध में हिन्दुओं को बलपूर्वक इसलाम में दीक्षित करना चाहा। यह सं० ९३९ के आसपास घटित बताया जाता है। हिन्दुओं ने निराश होकर सिंधु नदी के देवता-वरुण की वंदना की। देवता जन-त्राण के निमित्त आए और वीर बालक उडेरोलाल का जन्म हुआ और अपनी चमत्कारी शक्तियों से वह इस धर्म-परिवर्तन को रोकने में समर्थ हुआ, और अंततः उडेरोलाल ने मरक और उसके दल को पश्चात्ताप के लिए बाध्य किया। उडेरोलाल को निश्चय वरुण का अवतार मानना चाहिए। उडेरोलाल का पंथ अब तक प्रचलित है अथवा कम-से-कम उस समय प्रचलित था जब सिंधी हिन्दुओं की समष्टि सिंध में थी। इस पंथ को वरुण की

---

१. **"सिंध की महाभारत कथा एक प्राचीन अरबी रूपान्तर, प्राचीन सिंधी साहित्य और संस्कृति"—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६३, अंक ३-४. पृ० २७६।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना का लोक-प्रचलित रूप माना जा सकता है। मेरे मित्र पंडित कृष्णचन्द्र टोपनलाल जेतनी का सुझाव है कि उडेरा नाम संस्कृत उदक-वर (श्रेष्ठ जल) से व्युत्पन्न है।"

मेरे एक सम्बन्धी डा० श्री जी० टी० व्यास ने बताया कि उडेरोलाल नामक एक स्टेशन भी सिंध में है। यहाँ उडेरोलाल का बड़े जोरों का मेला लगता है।

सिंध में इसी उडेरोलाल को भक्त-लोग कहीं तो 'लाल' और कहीं 'झूलेलाल' के नाम से सम्बोधित करते हैं। लोकगीतों में 'लाल' का प्रयोग देखने को मिलता है। लेकिन 'झूलेलाल' का नाम तो सिंधी साहित्य एवं सिंध-समाज में बहुत ही प्रचलित है।

ग्राम-देवताओं की उत्पत्ति कब हुई, कैसे हुई, यह बताना तो बड़ा कठिन है। फिर भी यह एक प्रकार से सर्वमान्य मत है कि अनेक प्रकार के देवी-देवता, भैरव, वृक्ष, सर्प, नदी, पहाड़, समुद्र आदि पूजने की बात हमें भारत की उन आदिम जातियों से प्राप्त हुई हैं जो आर्यों के आगमन से पूर्व यहाँ भारतवर्ष में निवास करती थीं।

संस्कृति एवं तुलनात्मक धर्म-विज्ञान का अध्ययन करने वालों के लिए ग्राम-देवताओं का अध्ययन का विषय अपना एक विशेष महत्व रखता है। मानव-समाज के प्राथमिक धर्म के सभी तत्व इन पूजाओं में मौजूद हैं। अतः इनकी विधिपूर्वक व्यापक रूप से जांच-पड़ताल करने की आज बड़ी ही आवश्यकता है। —मोहनलाल पुरोहित, रिसर्च स्कालर

० ० ०

हिन्दी में शोध-कार्य

भाषा-विकास की दृष्टि से मध्यभारतीय आर्यभाषाओं का अत्यन्त महत्व है। प्राचीन और आधुनिक भाषाओं को जोड़ने के लिए वह बीच की कड़ी है। आज हिन्दी में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हम प्राचीन भाषाओं के साथ हिन्दी की बोलियों और उन बोलियों के निकास-विकास को प्रदर्शित करने वाली भाषा का अध्ययन तथा मनन करें। आवश्यक तो यह भी है कि हिन्दी के उच्चस्तरीय पाठ्यक्रम में पालि और अपभ्रंश को यथोचित स्थान दिया जाय। यदि वैदिक तथा प्राकृत-परम्परा के वास्तविक विकास का हमें पता नहीं है तो निश्चय ही हिन्दी में शोध का कार्य अधूरा ही रहेगा। अभी हाल में ही 'प्राकृत छन्द-कोश' की एक हस्त-लिखित पुस्तक मिली है, जिसे देखने से पता लगता है कि दोहा, सोरठा, कुंडलिया, अडिल्ल, दुवई, चउपई आदि अनेक छन्द हिन्दी तथा अपभ्रंश के न होकर प्राकृत के हैं। ऐसे कई तथ्य हमारे प्राचीन साहित्य के बीच धूमिल रेखाओं से आवृत्त हैं जिन पर आज भी भ्रम का पर्दा पड़ा हुआ है।

भारतवर्ष में अठारहवीं शताब्दी तक प्रकाशन और विज्ञापन का कोई साधन नहीं था। सन् १८६८ में लाहोर-निवासी पं० राधाकृष्ण के प्रस्ताव पर भारत सरकार ने यह निश्चय किया था कि जहाँ तक सम्भव हो सके संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का पता लगाया जाय और उनकी सूची प्रकाशित की जाय। तब से आज तक साहित्य, व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष आदि विविध विषयों के ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। किन्तु अब भी ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ भण्डारों के अंधेरे तल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दबे पड़े हैं जिनमें भारतीय संस्कृति, इतिहास, कला तथा ज्ञान विषयक रहस्य भरपूर हैं। सुना है कि भारतीय शासन इस दिशा में प्रयत्नशील है। यह तो ऐसा विषय है जिसके लिए शासनोन्मुख होना अपेक्षित नहीं जान पड़ता। आज हिन्दी में जो शोध-कार्य हो रहा है उसे देखने से यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहता कि उसमें उपयुक्त अधिकांश तथ्य पिटे-पिटाये रहते हैं। इसका कारण यह है कि हम दूसरों की सामग्री पर निर्भर रहते हैं। यह निर्भरता यहाँ तक बढ़ गई है कि यदि दूसरे लेखकों की दस-बीस पुस्तकों का नाम और उनके उद्धरण हम प्रबन्ध में नहीं लिख देते हैं तो वह अधूरा ही समझा जाता है। यह भी एक रिवाज (फैशन) चल निकला है कि लेखक ने अधिक से अधिक कितने सन्दर्भ दिए हैं और उनमें से ख्यातिप्राप्त रचनाओं के कितने हैं। यही नहीं, कुछ लोग पूर्व लिखित तथ्यों के विपरीत इसलिये भी नहीं लिखने का साहस करते हैं कि उन्हें उपाधि हस्तगत करना है। इस प्रकार के कुछ तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है।

सामान्यतः अभी तक यही समझा जाता है कि बुन्देली भाषा और साहित्य का विकास 'ब्रजबुलि' से हुआ है। सं० १७५३ की लिखी हुई एक रचना उपलब्ध हुई है, जो भागवत महापुराण के पंचम् स्कन्ध का अनुवाद है। हिन्दी का यह गद्य-ग्रन्थ बुन्देली भाषा में लिखा हुआ है। इसमें देशी शब्दों की बहुलता है। फारसी शब्दों के भी रुचिकर-प्रयोग उसमें मिलते हैं। विशेषता यह है कि फारसी शब्दों को बुन्देली उच्चारण-पद्धति के अनुसार ग्रहण किया गया है। इसी रचना से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि किसी समय ब्रज और बुन्देली दोनों बोली थीं। कालान्तर में युग, परिस्थिति, सामाजिक परिवर्तन तथा रीति-विराजों की भिन्नता से दोनों दो धाराओं में बँट गईं। किन्तु लोक-साहित्य दोनों में लिखा जाता रहा। जब ब्रजभाषा का क्षेत्र व्यापक हुआ और वह दक्षिण में भी फैलने लगी तब बुन्देली का प्रभाव कम पड़ गया तथा आगे चल कर वह ब्रज से प्रभावित होने लगी। उसके बाद ही यह समझा जाने लगा कि बुन्देली का विकास ब्रज से हुआ है, वस्तुतः दोनों में अधिक अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार आज भी अधिकांश विद्वानों में यह धारण बनी हुई है कि हिन्दी भाषा संस्कृत से निकली है। यदि यह धारणा संस्कृत शब्दों को देखकर जीवित है तो हिन्दी में संस्कृत के ही नहीं विदेशी तथा प्रान्तीय भाषाओं के विविध प्रयोग और शब्द मिलते हैं। कुछ इस प्रकार है।——

फ़ान्सीसी——कारतूस, कूपन, अंग्रेज, फ़ान्सीसी आदि।

पुर्तगाली——अनन्नास, अचार, कमरा, गोदाम, कनिस्तर, कमीज, नीलाम, बाल्टी, मिस्त्री आदि।

अंग्रेज़ी——पोस्ट, पार्सल, टिकट, पुलिस, कोट, पेण्ट, बुशशर्ट, बण्डल इत्यादि।

मंगोली——बख्शी।

डच——तुरुप (Troef), बम (Boom)।

चीनी——चाय, रिक्शा आदि।

मलय——साबू।

[वर्ष ४७, संख्या २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिब्बती––चुभी।

तामिल––पिल्ला (पिल्हई)।

तुर्की––तोप, लाश, तवा, रोटी।

अरबी––इम्तहान, औरत, मर्द, हलवा, हलवाई आदि।

ईरानी––बरफ़ी, बालुशाही, खुर्मा, कलाकन्द।

फ़ारसी––आदमी, आबादी, दुकान, अन्दर आदि।

मराठी––चालू, लागू, प्रगति, बाबू, परछी (पड़छी), माहिती आदि।

गुजराती––हड़ताल, डिब्बा, नशिया आदि।

बंगला––एवं, तथा।

राजस्थानी––मेलना, जीमना, घालना आदि।

वर्तमान कुमायुँनी, गढ़वाली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, अवधी, बुन्देली, कन्नौजी, मालवी आदि बोलियों के भी अनेक शब्द हिन्दी में हिल-मिल गये हैं। हिन्दी में यह गंगा-जमुनी प्रवाह दुहरा है। एक ओर तो वह प्राचीन भाषाओं के शब्द-रूपों को समेट कर चल रही है और दूसरी ओर जिन भाषा-भाषियों के सम्पर्क में वह फैल रही है उनसे भी कुछ-न-कुछ ग्रहण करती जा रही है। हिन्दी भाषा में ही नहीं लोक-बोलियों में भी ऐसे अनेक शब्द हैं जो व्यवहार में लाये जाते हैं। यद्यपि लोक-साहित्य की अभी तक ठीक से छान-बीन नहीं हो सकी है पर वह अत्यन्त प्राचीन काल से चलन में रहा है। इसकी परम्परा मौखिक रही है। उपलब्ध साहित्य में हमें लोक भाषा और उसका साहित्य प्राकृत युग से मिलने लगता है। शब्दों की खोज तथा रचना-विधान से पता लगता है कि हिन्दी का निकास-विकास संस्कृत या उर्दू से न होकर प्राकृत एवं अपभ्रंश से हुआ है। हिन्दी की वाक्य-रचना, लिंग-भेद, लिंग सम्बन्धी अव्यवस्था तथा परसर्गों के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अपभ्रंश भाषा की अन्तिम कड़ी है। हाल ही में प्राप्त अपभ्रंश-रचनाओं से यह तथ्य और भी खुल कर हमारे सामने आता है

हिन्दी में अभी तक जो शोध-कार्य हुआ है वह विविधता की दृष्टि से एकांगी है। उसमें तुलसी, सूर, कबीर, बिहारी जैसे प्रसिद्ध कवियों पर तो एक-दो नहीं चार-चार या इससे भी अधिक प्रबन्ध प्रकाश में आये हैं, किन्तु भूषण, सूदन, लाल, द्विजदेव, सुन्दरदास, अमीर खुसरो, दादूदयाल मलूकदास, रसलीन, चिन्तामणि आदि कवियों पर प्रकाश डालने वाले प्रबन्ध अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुए। इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', महावीरप्रसाद द्विवेदी पर प्रबन्ध लिखे गये हैं, लेकिन गणेश शंकर विद्यार्थी, मुंशी अजमेरी, लाला भगवानदीन, माधवराव सप्रे, नाथूराम शंकर शर्मा, पं० सत्यदेव परिव्राजक, पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि लेखक-कवियों की रचनाओं का मूल्यांकन करने वाला कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आया। यही बात पं० श्रीधर पाठक और पं० रामनरेश त्रिपाठी के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। यही नहीं, कई ऐसी अमूल्य रचनाएँ इस देश में अभी तक अप्रकाशित दशा में हैं, जिनके लेखक द्रव्य और कर्म के संघर्ष में अपने को निःशेष कर चुके हैं। पं० हरिसेवक मिश्र का 'काम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप' महाकाव्य एक श्रेष्ठ रचना है। यह काव्य १८ सर्गों में निबद्ध है। भाषा बुन्देली है, पर व्रज और अवधी के प्रभाव से भी युक्त है। मुंशी अजमेरी ने कई सुन्दर नाटकों की रचना की थी, जो भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से उत्तम हैं। वे जैसा प्रबंध काव्य लिखते थे उससे भी बढ़कर कहीं नाटक लिखे थे। समय-समय पर वे अभिनीत भी किए गए थे। किन्तु खेद है कि उनका प्रकाशन न हो सकने से वे मण्डली के किसी व्यक्ति के हाथ लग गये और आज तक उनका पता नहीं मिला। रायपुर के पं० गणेशराम ने भी कुछ नाटक लिखे थे, जिनकी संख्या १० या १२ बताई जाती है पर वे भी प्रकाशन के अभाव में भविष्य के अन्धकार में लुप्त पड़े हैं। इसी प्रकार हयारण 'मित्र' की रचनाओं की दशा है। यदि इस प्रकार का साहित्य प्रकाशित नहीं हो सका है तो हमें चाहिये कि हम उनका मूल्यांकन कर इतिहास में उसे यथोचित स्थान दें। यह तथ्य अभी धूमिल नहीं हुआ है कि पच्चीस वर्षों के पहले गणेशशंकर विद्यार्थी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में जो अप्रतिम कार्य किया था वह आज दस व्यक्ति मिलकर भी नहीं कर पा रहे हैं। किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास के विद्यार्थियों को उनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर की बात तो अभी ताजी ही है, किन्तु बहुत कम विद्यार्थी ऐसे हैं जो उनके नाम को जानते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के नाम तक को स्नातक कक्षा के छात्र नहीं जानते हैं। फिर, उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में कोई कह भी क्या सकता है? उनकी रचनाओं पर शोध-दृष्टि डालने का विचार कदाचित् अभी नहीं हुआ। किया भी क्यों जाय? . . . हम जैसे नयी उमर के लोग उन्हें 'आउट आव डेट' मानते हैं और पकी उमर वाले दाढ़ी-मूंछों पर हाथ फेरने से अवकाश कहाँ पाते हैं? जगह-जगह गद्दियाँ बन चुकी हैं। चेला-चेलियों की कमी नहीं है। उनमें से कुछ को दाँव सिखा देते हैं यही बहुत है।

यद्यपि भारतवर्ष में अनुसन्धान की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु इस शताब्दी में जो क्षिप्रता दिखाई देती है वह पाश्चात्य प्रभाव की देन है। प्राचीन युग में दृष्टा और ऋषि, आचार्य तथा मुनि वर्षों की साधना, अनुभव तथा मनन के पश्चात् किन्हीं मौलिक तथ्यों का उद्घाटन कर पाते थे। इस देश में विचारों की जो भिन्नता है; नये-नये सिद्धान्त और दर्शनशास्त्रों की जो बहुलता तथा विविधता है वह चिन्तन का सहज परिणाम है। दूसरी ओर अधकचरे हम हैं कि भलीभाँति उनके विचारों का अध्ययन किए बिना ही उड़ती हुई दृष्टि से उनका समूचा मर्म समझ लेते हैं। इसलिए मेरी समझ में, हिन्दी में शोध-कार्य के लिए कुछ विद्यापीठों की स्थापना होनी चाहिए अथवा विश्वविद्यलयों में से कुछ को ही यह सुविधा प्राप्त होनी चाहिये कि वहाँ रहकर विद्वानों के निर्देशन में रिसर्च स्कालर कम से कम तीन वर्षों तक बराबर अनुसन्धान कार्य में यत्नशील रहें।

इधर अनुसन्धान की प्रक्रिया में जो परिवर्तन देखने को मिले हैं उनमें विषय-भेद के साथ ही चिन्तन-प्रणाली भिन्न है। पृष्ठों के बाद पृष्ठ पढ़ते-उलटते जाइये बड़ी कठिनाई से ४-६ पन्नों में आपको दो-तीन बातों की चर्चा मिलेगी। भाषा की लपेट में कहने की यह पद्धति अरुचिकर ही जान पड़ती है। इससे विषय दबा हुआ दिखाई देता है और शब्द ऊपर दिखाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ते हैं, जबकि भाषा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए साधन मात्र है। अभी तक जिन शोध-प्रबन्धों को देखा गया है उनमें से कम ही काव्यात्मक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक आदर्श और यथार्थ रूप को सहेजे हुए हैं। अकेले सूरदास पर लगभग एक दर्जन प्रबंध लिखे जा चुके हैं, किन्तु उनकी काव्य-शैलियों पर ठीक से किसी की दृष्टि नहीं पहुँच सकी है। लगभग सभी प्रबन्धों में भक्ति और दार्शनिक पक्ष का विवेचन मुख्य है। यद्यपि सूरदास की काव्य-कला पर भी प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है, उसमें भी यह कमी खटकती है। यथार्थ में ये ऐसे विषय हैं जो ठोस अध्ययन तथा प्राचीन भाषा और साहित्य के यथेष्ट ज्ञान की अपेक्षा रखते हैं। अनुसन्धान कार्य को व्यवस्थित रूप-रेखा देने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पक्ष का प्रकृत रूप हमारे सामने उभर कर आ सके। मेरी दृष्टि में यही इसका प्रयोजन है। शोध-कार्य के लिए सुझाव रूप में कुछ विषय इस प्रकार हो सकते हैं।

(१) आदिकालीन हिन्दी गद्य। (२) लोक परम्परा और रासो रचनाएँ। (३) जैन रासा-साहित्य। (४) लोक साहित्य का उद्गम और विकास। (५) देशी भाषा और परवर्ती साहित्य। (६) राजस्थानी डिंगल साहित्य। (७) सिद्धों के प्रतीक विधान और प्रयोग। (८) निर्गुण पद-साहित्य। (९) अपभ्रंश काव्यशैलियाँ। (१०) मध्ययुगीन सन्त साहित्य। (११) संस्कृत काव्यों में वर्णित कृष्ण का स्वरूप। (१२) जैन शृंगार-काव्य। (१३) बारहमासा काव्य। (१४) हिन्दी और कन्नड़ में राम-भक्ति काव्य। (१५) हिन्दी के चरित काव्य। (१६) रीतिकालीन भक्ति साहित्य। (१७) आदिकालीन लोक साहित्य का तात्विक अध्ययन। (१८) बुन्देली और ब्रज का तुलनात्मक अध्ययन। (१९) राष्ट्रीय कवि भूषण। (२०) काव्य-सिद्धान्त। (२१) प्रतिभा और कला। (२२) अलंकार-साहित्य। (२३) शब्द-शक्तियाँ। (२४) वक्रोक्ति और अभिव्यंजना। (२५) ध्वनि-सिद्धान्त।

इसी प्रकार अन्य विषयों का भी चुनाव किया जा सकता है। कुछ विषय ऐसे हैं जो बिल्कुल नये होने पर भी महत्वपूर्ण हैं, उदाहरण के लिए 'आधुनिक हिन्दी कविता' और 'कहानी' को लिया जा सकता है। उपन्यासों में भी कई प्रकार के परिवर्तन होते जा रहे हैं। किन्तु आधुनिक विषयों पर लिखने के पूर्व लेखक को प्रभाव और व्यक्तित्व से मुक्त हो लेना आवश्यक जान पड़ता है।

हिन्दी के आदिकाल की उपलब्ध विविध तथा विभिन्न रचनाओं को देखने से पता लगता है कि अभी कई ऐसे विषय हैं जिनकी सूचना तक नहीं है। मैंने तो सुझाव के रूप में कुछ विषय-रूपों का संकेत मात्र किया है। भक्तिकाल के भी कई ऐसे अछूते विषय अन्तर्मन में हैं। भाषा-विज्ञान सम्बन्धी उन्मुक्त क्षेत्र भी हमारे सामने बिखरा पड़ा है। प्रादेशिक साहित्य के साथ ही प्रादेशिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन महत्वपूर्ण विषय है। केवल हिन्दी में ही नहीं, प्राकृत, पालि, संस्कृत, अपभ्रंश और देशी भाषाओं में इतने विषय और सन्दर्भ हैं कि उन पर बहुत कुछ कार्य किया जा सकता है। क्योंकि भाषा तथा साहित्य देश और काल की सीमाओं में बँधकर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता। वह अन्य भाषा और साहित्य से प्रभावित होकर भी इतर भाषाओं तथा उनके साहित्य को प्रभावशील भी बनाता रहता है। जो ऐसा नहीं कर पाता वह धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। विषय की दृष्टि से 'संस्कृत काव्यों में वर्णित कृष्ण का स्वरूप' और 'हिन्दी तथा कन्नड़ में राम-भक्ति-काव्य' संस्कृत तथा कन्नड़ साहित्यविदों के लिए जैसे उपयोगी हैं वैसे ही हिन्दी के विद्वज्जनों के लिए भी। इनसे कृष्ण और राम के सम्बन्ध में एक नई दृष्टि हिन्दी साहित्य को मिल सकेगी। बिना इनको समझे भक्तिकाल की पर्यालोचना अधूरी ही समझी जायगी।

मैं समझता हूँ कि हिन्दी में मौलिक शोध-कार्य के लिए नवीन विषयों को अपनाया जाना चाहिए। यह कार्य हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर हो सकता है। ऐसी कई रचनाएँ भण्डारों में बन्द पड़ी हैं, जिन्हें अभी हवा तक नहीं लग पाई है। प्राप्त सूचना के अनुसार पन्द्रह हज़ार के लगभग ग्रन्थ तो अकेले जयपुर नगर के भण्डारों में हैं। यदि हम अनुसन्धान का यथार्थ स्वरूप प्रकाश में लाना चाहते हैं तो इस ओर हिन्दी प्रेमियों तथा विद्वानों का ध्यान अवश्य ही जाना चाहिए। इससे नये ग्रन्थों के प्रकाश में आने से साहित्य के त्रिविध रूपों की यथार्थ जानकारी का पता मिल सकेगा। यही नहीं, भारत के प्राचीन इतिहास, संस्कृति, कला और सामाजिक वास्तविकता का भी लेखा-जोखा प्रकाश में आयेगा।

—देवेन्द्रकुमार जैन, एम० ए०, शास्त्री

० ० ०

हिन्दी-भाषी-क्षेत्र की हिन्दू-पुरुष-नामावली के आधार

हिन्दू धर्म-शास्त्रों के अनुसार उनके सोलह संस्कार हैं। इन्हीं संस्कारों में उनके गर्भ से मृत्यु तक का समूचा समय सिमट जाता है।

हिन्दुओं में नामकरण पाँचवाँ संस्कार है। इसके महत्व का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि यदि महल में इस दिन हज़ारों पत्तलें प्रयुक्त हो जाती हैं तो झोपड़ी में भी कम से कम एक पण्डित जी एवं कुटुम्ब के व्यक्ति तो मुँह जुठार ही लेते हैं।

हम तनिक से ही जीवन में हज़ारों व्यक्तियों के नाम पढ़ते हैं, सुनते हैं, प्रयोग करते हैं और बस। उन नामों पर यदि तनिक ध्यान दें एवं विश्लेषण करें तो हमारे समक्ष नये ही क्षितिज खुल जायें। नामकरण के समस्त आधार कितने हैं, यह तो अलग ही शोध का विषय है, यहाँ इस दिशा में थोड़ा-सा प्रयत्न अवश्य है।

हिन्दी-भाषी-क्षेत्र की अधिकांश पुरुष-नामावली के निम्नलिखित आधार हैं:—

१. देवी-देवता—हिन्दू नामों का सर्वाधिक अनुपात देवी-देवताओं के आधार पर ही टिका हुआ है। पर इस आधार के भी प्रकार हैं। किसी का नाम देवी-देवताओं के नाम के समान है, किसी का उनसे भी बड़ा। पांच विभागों में विभक्त करने पर हमें निम्न प्रकार मिलते हैं:—(क) **देवी-देवताओं के समान** : महेश, चन्द्रभान, सूरजभान। (ख) **उनके द्वारा प्रदत्त** : महेशदत्त, ब्रह्मदत्त। (ग) **उनके द्वारा पालित** : सूरजपाल, विष्णुपाल। (घ) **उनसे भी महान्** :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामपति, महेशनाथ, हरिहरनाथ। **(ङ) उनके दास :** प्राचीन नाम अधिकतर इस श्रेणी में आते हैं : दुर्गादास, महेशदास।

२. अवतार--भारत अवतारों की पवित्र भूमि रही है। जब धर्म-ग्लानि हुई, तब भगवान् ने अपना सृजन किया। उनका स्थान भगवान् के समकक्ष ही रहा। हिन्दू-नामकरण का आधार, अतः, अवतार भी रहा। हिन्दुओं में भगवान् के २४ अवतार माने गए हैं जिनमें राम एवं कृष्ण सर्वाधिक विख्यात हैं। अतः नामकरण भी इन दो को आधार मानकर अधिकतम हुए हैं : रामसिंह, नृसिंहभान, कृष्णप्रकाश।

३. विशेषण--तीसरा आधार विशेषण है--उसमें भी सर्वाधिक गुणवाचक : सुन्दर लाल, बाँकेलाल, प्रथमानन्द।

४. आशीर्वाद--भारतीय संस्कृति में आशीर्वाद एवं अभिशाप का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन भरतीय साहित्य में जितने मीठे आशीर्वादों की कहानियाँ हैं, उतने ही तिक्त अभिशापों के वर्णन। महाकवि कालिदास को अभिशाप आधार मानकर लिखना अत्यधिक भाता था। हाँ, तो नामकरण आशीर्वादात्मक भी प्राप्य हैं : कल्याणसिंह, मौजीराम, खुशीराम।

५. तीर्थ नगर--धर्मप्राण देश में हिन्दू-नामाधार यदि तीर्थों को मानें तो क्या अचरज ? कृष्ण सम्बन्धित तीर्थों का विशेष महत्व रहा है : मथुरादास, गोकुलप्रसाद, वृन्दावनलाल, बरसानेलाल, अयोध्यानाथ, प्रयागदास, बद्रीसिंह।

६. इतिहास--प्रसुप्त गर्व जगाने के लिए इतिहास-स्मरण से पवित्र और कौन-सी वस्तु होगी ? वीर पूर्वजों का नामस्मरण कितना पवित्र होता है इसे कोई भी स्वराष्ट्राभिमानी जानता है : प्रतापसिंह, (जयचन्द भी), अशोक, राहुल, विक्रमसिंह, ऊदलसिंह आदि ऐसे ही नाम हैं।

७. प्रान्त--मातृभूमि का प्रत्येक कण पवित्रतम होता है, स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए। मराठी व्यक्ति अपने नामों के पश्चात् अपने जन्म-गाँव में 'कर' जोड़कर लिखते हैं : अम्बेदकर, मंगेशकर। हिन्दी क्षेत्र में यह परिपाटी इतनी तो नहीं--वैसे कश्मीरी, नेहरू, मालवीय, पालीवाल इसी के रूप में हैं--फिर भी तीन नाम तो हैं ही : बंगालीबाबू, पंजाबीलाल, बिहारीसिंह।

८. प्रकृति--प्रकृति कैसे बिसारी जा सकती है जब भारतीय सभ्यता उसकी उँगली पकड़कर इतनी बड़ी हुई है। प्रकृति को बहुत ही सीमित अर्थ में प्रयुक्त करके हम इन उपभागों में बाँट सकते हैं--**(क) फल :** रामफल, अँगूरी सिंह, मेवाराम। **(ख) फूल :** फूलसिंह, कमल सिंह, गुलाबराय, पदुमलाल, गेंदालाल। **(ग) पौधा :** तुलसीदास। **(ख) वृक्ष :** चन्दनलाल, खिन्नीलाल। **(ङ) नदी :** गंगाप्रसाद, जमुनादास। **(च) पशु :** मृगेन्द्र, शेरसिंह, गजराजसिंह। **(छ) पक्षी :** तोताराम, सुआराम। **(ज) ऋतु :** बसन्तलाल, हेमन्तकुमार, शिशिरकुमार **(झ) विविध :** मेघराज, घनपाल, उषादत्त, पवनकुमार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९. महानता--महानता-प्रियता प्रत्येक व्यक्ति का जन्मजात गुण है। वह उससे अभिभूत भी होता है और उत्साहित भी। महान् वस्तुओं के आधार पर कई हिन्दू नाम प्राप्त हैं : ज्ञानप्रकाश, नरेन्द्र, तेजसिंह।

१०. न्यूनता--यह एक अन्तर्विरोध है कि महानता-प्रिय होने पर भी कई माता-पिता अपने पुत्रों के नामकरण का आधार न्यूनता मानते हैं। बड़े-बड़े धनवान वैश्यों के नाम हमें फकीरचन्द मिलते हैं। ऐसे ही नैंकसू, छिद्दू, खचेरमल नाम भी हैं।

११. निरर्थक--यह आधार उपर्युक्त आधार से भी एक कदम आगे है। जिनके सन्तान नहीं जीती, वे अपने बालकों के नाम या तो उपर्युक्त दसवाँ आधार मानकर रखते हैं अथवा निराधार--जैसे, पौपसिंह, बैंचे, दोदी ऐसे ही नाम हैं।

१२. दिवस--दिनों को आधार मानकर भी बहुतों के नाम हैं। पहले मैं उन्हें नक्षत्रों के नाम पर समझता था पर पूछने पर पता लगा कि वे जिस दिन पैदा हुए उसी को आधार मानकर नामकरण हुआ है। उदाहरणार्थ : मंगलसैन, बुद्धसैन, इतवारी।

१३. त्योहार--त्योहार किसी भी संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। प्रत्येक तिथि को हिन्दुओं का कोई न कोई त्योहार होता है, अतः नामकरण करते समय उनका भी लिहाज़ किया गया है--होरीलाल, दिवारीलाल, सकटमल।

१४. आभूषण--प्रागैतिहासिक काल से ही आभूषण हिन्दू-सभ्यता के श्रेष्ठ उपादान समझे गए हैं। अतः आरसीप्रसाद, बुलाकीराम, तिलकसिंह, झाँझनलाल जैसे हिन्दू नाम भी मिलते हैं।

१५. भाव एवं संवेग--मानव-जीवन में इनका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनको आधार मानकर : यशपाल, यादराम, हर्षकुमार, विनोद आदि नाम हैं।

१६. विभाषा--हिन्दी में अंगरेजी-फारसी के संज्ञाशब्द हजारों हैं। व्यक्तिवाची नाम भी इन्हें आधार मानकर रखे मिलते हैं--इकबालसिंह, कप्तानसिंह, विलसनप्रसाद तथा न्यूटनराम।

१७. सिक्का--अर्थ-युग में इसे कैसे भुलाया जा सकता है? जैसे--अशर्फीलाल, मुहरपाल, छदामीलाल ऐसे भी नाम हैं।

१८. रत्न--मूल्यवान रत्नों से भी अधिक मूल्यवान वस्तु क्या हो सकती है? उन्हें आधार मानकर मोतीलाल, जवाहरसिंह, पन्नालाल, हीरालाल जैसे हिन्दू नाम रखे गये हैं।

१९. युद्ध--वीर हिन्दू जाति इस क्षेत्र को कैसे बिसार सकती है? अपनी ही उँगली पर खंजर की जंग छुड़ाने वाले कतिपय क्षत्रियों के नाम युद्ध एवं युद्ध में आनेवाले हथियारों के नाम पर प्राप्त हैं : युद्धवीरसिंह, संग्रामसिंह, शमशेरबहादुर, तेगसिंह आदि।

जैसा प्रारम्भ में ही कहा गया है, वैसे तो नामकरण के आधार कितने ही हो सकते हैं, और हैं, पर हिन्दी-भाषी-क्षेत्र के कुछेक नाम छोड़कर लगभग सभी नाम उपर्युक्त आधार-शिला पर बिठाए जा सकते हैं।

--रामरजपाल द्विवेदी, एम० ए०

० ० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम्बर और तुलसी--एक पुनर्परीक्षण

साहित्यिक जाग्रति और दिनों दिन बढ़ती हुई जिज्ञासाओं के फलस्वरूप रामकथा-साहित्य और उसके रचयिताओं के संबंध में अनेक शोध-कार्य हो रहे हैं। अन्य भारतीय भाषाओं में रचित रामकथा-साहित्य का अनुशीलन हो रहा है। साथ ही महाकवि तुलसी एवं अन्य भाषा-भाषी कवियों का तुलनात्मक अध्ययन हो रहा है और तत्संबंधी नित नई पुस्तकें प्रकाश में आ रही हैं। इसी बीच सन् १९५६ में श्री शंकर राजू नायडू, अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय, द्वारा रचित "कम्बर और तुलसी" नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, जिसमें लेखक ने "कम्बरामायण" और "रामचरित मानस" में वर्णित राम-सीता पूर्वानुराग का विस्तृत विश्लेषण किया है। अपने विवेचन और विश्लेष के पश्चात् श्री नायडू ने कुछ निष्कर्ष निकाले हैं, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है– "कविभक्त कम्बर तथा भक्तकवि तुलसी के राम-सीता पूर्वानुराग में अभूतपूर्व समानता है, जो अन्य किसी महाकाव्य में नहीं है और कम्बर का प्रभाव तुलसी पर पड़ा है।"[1]

इस पुस्तक के अनेक अंशों को लेकर डा० कामिल बुल्के ने कुछ शंकाएँ उठाई हैं और तत्संबंधी उनका एक लेख, "हिन्दी-अनुशीलन" प्रयाग (जुलाई-सितम्बर १९५७ अंक) में प्रकाशित हुआ है। उनकी शंका है—"आलोच्य पुस्तक में कहीं भी तुलसी पर कम्बर के प्रभाव का प्रमाण नहीं मिल सका है। न कथावस्तु के आधार पर और न किसी विशिष्ट वाक्यांश के आधार पर।"[2] श्री नायडू के उपरोक्त निष्कर्ष और उस पर डा० बुल्के के इस शंका का परीक्षण ही इस लेख का विषय है।

डा० बुल्के ने अपने लेख के अंत में उपसंहार स्वरूप लिखा है-"यद्यपि मैं आलोच्य पुस्तक के कतिपय निष्कर्षों को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ फिर भी श्री नायडू का प्रयत्न श्लाघ्य ही समझता हूँ, हिंदी संसार उनकी रचना का स्वागत करेगा, यह मेरा विश्वास है। इसमें "कम्बरामायण" की कला की जो झांकी मिलती है, इससे इस महान कवि के संबंध में और जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा जाग्रत हो उठती है।" (लेख पृ० ८)

उपरोक्त निष्कर्ष में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं–(१) डा० बुल्के, श्री नायडू के कतिपय निष्कर्षों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं और (२) श्री नायडू का प्रयत्न श्लाघ्य है। पहली बात महत्वपूर्ण है। वह कौन से कतिपय निष्कर्ष हैं जिनको स्वीकार करने में वे असमर्थ हैं? वह निष्कर्ष हैं– "कम्बर का प्रभाव तुलसी पर पड़ा है।" किंतु डॉ० बुल्के ने अपने इसी लेख के प्रारंभ में भूमिका बांधते हुए लिखा है–"दक्षिण में यह दावा अक्सर किया जाता है कि 'रामचरित मानस' पर 'कम्बरामायण' का प्रभाव पड़ा है। कम्बरामायण की कथा-वस्तु से ऐसा तो प्रतीत नहीं होता लेकिन गोस्वामी जी अवश्य ही बहुश्रुत थे। **अतः इस प्रकार का प्रभाव असम्भव नहीं कहा जा सकता।"**

---

१. कम्बर और तुलसी--नायडू, पृष्ठ १२६।

२. हिन्दी अनुशीलन--डा० बुल्के, पृष्ठ ८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० बुल्के अपने पहले वक्तव्य में तुलसी पर कम्बर के प्रभाव की बात को स्वीकार करने में असमर्थ हैं और दूसरे वक्तव्य में इस प्रकार के प्रभाव को असंभव नहीं समझते, अर्थात् मानते हैं कि ऐसा प्रभाव पड़ना संभव भी है। श्री नायडू ने डा० बुल्के की संभावित बात को कुछ तर्कों द्वारा संभव-सिद्ध करने का प्रयास ही तो किया है फिर इस शंका का प्रश्न ही नहीं उठता कि तुलसी पर कम्बर का प्रभाव नहीं पड़ा है।

श्री नायडू ने इस पुस्तक की रचना दो कारणों से ही है-(१) दक्षिण भारत के महाकवि कम्बर का अनुशीलन और (२) दक्षिण भारत में हिन्दी और अहिंदी (तामिल, तेलगु भाषा-भाषी) भाषा-भाषियों के बीच की खाई को भरना। उनका यह प्रयत्न श्लाध्य है ही और इसके द्वारा उन्होंने "हिन्दी साहित्य और भाषा को अखिल भारतीय संस्कृति का प्रतिबिंब माना है" (श्री नायडू पृ० १२६) अहिंदी भाषी दक्षिण भारतीयों को जब यह बात मालूम होगी कि अनेक कारणों से हिन्दी का महाकवि तुलसी और उनका महाकवि कम्बर दोनों अभिन्न हैं तो उनके मन-मस्तिष्क में हिन्दी के प्रति बनी हुई उदासीनता और घृणा का नाश हो जायगा और अकारण द्वेष और ईर्ष्या बढ़ने न पावेगी। ऐसी स्थिति में उनके ग्रंथ पर शंका उठाकर हम हिन्दी और तामिल को कदाचित एक दूसरे से दूर कर देंगे जिसका दुष्परिणाम भविष्य में नहीं वर्तमान में ही हम देख रहे हैं।

यह तो हुई भावना की बात किंतु हम तर्कों के द्वारा भी देखते हैं कि शंका उचित नहीं है।

कम्बर और तुलसी के ग्रंथों में राम-सीता पूर्वराग के तत्वों और उनकी विशेषताओं का विषद वर्णन करने के पश्चात् श्री नायडू लिखते हैं—"ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्रभाव तुलसी पर दो रूपों में पड़ा है–(१) उनकी दक्षिण यात्रा के समय दक्षिण के संस्कृत भाषा-शास्त्रियों की सहायता से तथा (२) काशी में मुनिवर कुमरगुरूपरर के हिन्दी प्रवचनों के सुनने से" (पृ० ११३-११४) इसके उत्तर में डा० बुल्के का कथन है– "बाबू श्यामसुन्दर दास तथा पं० रामचंद्र शुक्ल दोनों ने अवश्य तुलसी की रामेश्वर-यात्रा स्वीकार कर ली है। यह असंभव भी नहीं कहा जा सकता, किंतु इससे 'रामचरित मानस' पर 'कम्बरामायण' का प्रभाव सिद्ध नहीं होता।" (पृ० ७)।

इसके उत्तर में केवल यही निवेदन किया जा सकता है कि जब गोस्वामीजी की दक्षिण-यात्रा कुछ विद्वानों ने स्वीकार कर ली है तथा डा० बुल्के इसको 'असंभव भी नहीं कहते' तो फिर श्री नायडू द्वारा इस तर्क के आधार पर 'प्रभाव की प्रतीति' पर उनका शंका उठाना कहां तक तर्क संगत है?

डा० बुल्के ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि महाकाव्य के अतिरिक्त बहुत से ग्रंथों ने, जिसमें नाटक और पुराण भी हैं, तुलसी को प्रभावित किया है। "जानकी हरण" महाकाव्य है और इसमें 'विवाह के पूर्व' ही राम तथा सीता के पारस्परिक आकर्षण तथा सीता के विरह का वर्णन किया गया है। (जानकी हरण सर्ग ७) उन्होंने साफ लिखा है– "यह सच है कि यह वर्णन धनुर्भंग के पश्चात् रखा गया है, फिर भी मैं श्री नायडू से सहमत नहीं हूँ।" किंतु नायडू कहते हैं–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसे हम पूर्व-राग की कोटि में नहीं मान सकते, क्योंकि यह संपूर्ण प्रणय-प्रसंग धनुर्भंग के पश्चात् ही हुआ है।" (कम्बर और तुलसी पृ० ४०)

चक्रीचकार कर्णान्तावतंसितनखमद्युतिः।
तद्दाशरथिरादाय सीताक्रयधनं धनुः॥
ततस्त्रासकरो नादश्चापभंगसमुद्भवः।
दिशः ससर्प रामस्य यशोघोषणडिण्डिमः॥
(जानकी-हरणम्--६-४७, ४८)

श्रीनायडू ने अपने राम-सीता-पूर्वराग प्रसंग के प्रतिपादन के पूर्व सीता को वीर्यशुल्का सिद्ध किया है और यह तर्क की बात न होकर तथ्य है। (पृ० २७-२८)

सीतां रामाय तनयामूर्मिलां लक्ष्मणाय च।
वीर्यशुल्का मम सुता सीता सुरसुतोपमा॥
अयोनिजा समुत्पन्ना वेदिमध्यात् सुमध्यमा।
तां रामाय प्रयच्छामि पत्नीं वीर्यबलार्जिताम्॥
(वा० रा० १-७१-२०, २१)
वीर्यशुल्का च मे कन्या दिव्यरूपगुणान्विता।
वीर्यशुल्का प्रदेयेति तानहं चाब्रुवं नृपान्॥
(वा० रा० १-६६-१४, १५)

ऐसी 'वीर्य शुल्का' के लिए स्वभावतः यह आवश्यक है कि वह किसी व्यक्ति के साथ इस वीर्योक्त कार्य के पूर्व प्रेम न करे। कुमारदास कृत"जानकी-हरणम्" के अनुसार धनुष-भंग के अनन्तर परस्पर प्रेम का चित्रण हो तो वह पूर्व-राग के अंतर्गत नहीं माना जा सकता क्योंकि-"टूटत ही धनु भयउ विवाहू"-तुलसी। धनुष-भंग के वीर्योक्त कार्य के पश्चात् रामसीता का मिलन या प्रेम असंगत नहीं है उन्होंने तो यह अधिकार ही प्राप्त कर लिया है। प्रतिज्ञा-पूर्ति के साथ प्रतिबंध भी हट गया। जनक आदि तो इस मिलन को देख कर प्रेम-विभोर हो गए होंगे। इसलिए "इसके पश्चात् यदि परस्पर प्रेम का वर्णन किया जाय तो उसे 'पूर्वराग' की कोटि में कैसे स्थान दिया जा सकता है?" (श्री नायडू पृ० ४१)

कहने का तात्पर्य यह है कि, श्री नायडू का मत है कि धनुष-भंग के पूर्व हुए रामसीता के मिलन को ही 'पूर्वराग' की श्रेणी में रखा जा सकता है, धनुष-भंग के पश्चात् हुए मिलन को नहीं। और इसके लिए उन्होंने उपरोक्त कारण दिया है। साथ ही उन्होंने अपनी पुस्तक के "कम्बरामायण में राम-सीता पूर्व रागं" नामक अध्याय में एक बात और स्पष्ट की है कि कम्बर ने पूर्वराग का प्रसंग अपने पूर्व कवियों से या काव्य-परंपराओं से ग्रहण किया था जिसे "गुप्त-प्रेम' कहा गया है। इस प्रसंग के चित्रण में कम्बर ने तमिल काव्य-नीति के अनुकूल भावों को ही अपनाया है। साथ ही पूर्वराग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रसंग को आधार मानकर तुलसी पर कम्बर के प्रभाव को बतलाने के लिए उन्होंने वर्णन की मौलिकता, सौंदर्य, उसकी चित्रोपमता और सक्षम अभिव्यक्ति आदि विशेषताओं को प्रधानता दी है। पूर्वराग का इतना उत्कृष्ट और आकर्षक चित्रण कम्बर और तुलसी के सिवाय किसी ने भी नहीं किया है। उनमें अभूतपूर्व समानता है जैसा कि उन्होंने अपनी पुस्तक की भूमिका में स्पष्ट लिखा है --

"One such unique similarity is the pre-matrimonial love between Ram and Sita, which we do not find apparently in the valmiki Ramayana, but has been deal with in a very picturesque manner in Kambaramayana and Ramcharit Manas; each in its own characteristic style .....To our utter surprise we find this plot, with such masterly expression, only in the Ramayans of Kambar and Tulsi"--

(Kambar and Tulsi, Shri Naidu, preface. Page II.)

इस भूमिका में पूर्व राग-प्रसंग के वर्णन की विशेषता के लिए दो शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं- Picturesque और Masterly Expression। स्पष्ट है कि तुलसी और कम्बर के पूर्वराग प्रसंगों के वर्णन इन दो शब्दों को चरितार्थ करते हैं। और तुलसी के पूर्व सिवाय कम्बर के इस प्रसंग का वर्णन ऐसी शैली में कहीं नहीं मिलता, तो हो सकता है कि तुलसी को अपने चित्रोपम आकर्षक वर्णन की शैली की विशेषता कम्बर से ही प्राप्त हुई हो। अतः ऐसे प्रभाव की बात पर शंका उठाना केवल एक तर्क है।

ऐसा प्रभाव, आवश्यक नहीं है कि, केवल कथावस्तु या वाक्यांशों का ही हो। वह भावों, विचारों, शैली में से किसी का भी हो सकता है। "हो सकता है" या "पड़ सकता है" से किसी को भी आपत्ति नहीं होगी; ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है और यही सूत्र श्री नायडू के प्रतिपादित विषय की आधार-शिला है।

श्री नायडू अन्य हिंदी और तामिल कवियों के विचारधाराओं की साम्यता को हमारे सामने लावेंगे ऐसा मेरा विश्वास है। हिंदी और अहिंदी के बीच की खाई के भरने का यही सुगम सरल साधन है कि हम अपनी विचार-परम्परा और भावनाओं में समानता देखें और अपने दृष्टि-कोण को व्यापक बनाएँ फिर हमें एक दूसरे से अलग कोई नहीं कर सकता।

--रमेशचंद गंगराड़े, एम० ए०

० ० ०

"विचित्र नाटक" में अंधक-पिनाकी-युद्ध

"साहित्य समाज का दर्पण है," यह एक लोकोक्ति है। किसी भी युग के साहित्य पर उस युग की परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। प्रचण्ड प्रभंजन जैसे फुफकार कर विशालकाय तरुवरों को झकझोर डालता है, क्षुब्ध महासागर अपनी फैनिल तरंगों के थपेड़ों से किनारों को चूर्ण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचूर्ण कर शेषनाग की तरह सहस्र-सहस्र फनों के द्वारा विश्व को निगलने के लिए उफना उठता है उसी तरह इस्लाम की महाशक्ति फारस, मिस्र को जीतती हुई, भारत की छातीपर चढ़ दौड़ी ! लेकिन उस प्रलयकारी तूफान की विकट लहरों को इस देश के सपूतों ने रोक दिया। जिस वीर ने स्वयं खून से भरा खंजर लेकर जीवन भर अत्याचारी शक्तियों से संघर्ष किया हो, क्या आश्चर्य है यदि उसकी लेखनी ने भी उत्पादनकर्त्ता शक्तियों के विरुद्ध आग उगली हो।

अत्याचारी क्रूर शक्तियों को मानवता के चरणों में झुकना ही पड़ता है। विविध कथाओं द्वारा सिक्खों के गुरु श्रीगुरु गोविन्द सिंह लिखित "विचित्र नाटक" में यही मन्तव्य प्रकट किया गया है। "अन्धक-पिनाकी-युद्ध' एवम् "शिव-जलन्धर-युद्ध" में शिव के द्वारा उत्पीड़नकर्ता दानवीय शक्तियों की पराजय दिखलाई गई है। कवि की भावना ने शिव को एक जन हितैषी कल्याणकारी शक्ति के पद पर प्रतिष्ठित किया है, जो जन-पीड़क शक्तियों को नष्ट कर युग-युग से मानव संतति की रक्षा करती है ! देवताओं के आर्त पुकार करने पर शिव-स्वयं अन्धक से लड़ने चल पड़ते हैं।

शिव धाय चल्यो तिहि मारन को
जग के सब जीव उधारन को
कर कोप तज्यो सित युद्ध शरं
इक बार ही नाश कियो त्रिपुरं॥

वीर रस का वर्णन "विचित्र नाटक" में बड़ी आकर्षक शैली में किया गया है ! अन्धक-पिनाकी युद्ध की एक झांकी देखिए —

रण रंग रंगे रणधीर रणं।
जन शोभित पावक ज्वाल बणं॥
रण रंग सु दानव देव रचे।
गहे शस्त्र सबै रस रुद्र मचे॥

तथा

रेल पेल भई तहां अरु तेग तीर पुहार।
गाहि गाहि फिरे फवज्जन बाहि बाहि हथ्यार॥
साज बाज कटे कहूँ गजराज ताज अनेक।
उष्ट - पुष्ट गिरे कहूँ रिपु बाचियं नहीं एक॥

शिव-संहारकारी शक्तियों के स्वामी माने गए हैं। युद्ध की भयंकरता के साथ शिव की रौद्रता बढ़ती जाती है ! शिव का प्रलयकारी रूप दैत्य-सैना में खलबली मचा देता है —

भयो रोष रुद्रं हणे दैत्य क्षुद्रं।
कटे अद्ध अद्धं, भई सैन बद्धं॥
रिस्यो शूल पाणं, हणे दैत्य भाणं।
सरं ओघ छुट्टे, घणं जेम छुट्टे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रणं रुद्र गज्जे सबै दैत्य भज्जे।
तजे शस्त्र सर्व मिट्यो देह गर्व।।

तथा--

बाणावली रुद्र जब साजी, तब ही सैन दानवी भाजी।
तब अंधक शिव सामुहि धायो, दुंद जुद्ध रण मध्य मचायो।।

जब मानव अधिक भयातुर हो जाता है, उस समय भयानकता मानों सहस्र-सहस्र रूप धारण कर उसके चारों ओर अट्ठाहास करने लगती है। घबराए हुए विरोधी वीरों को सर्वत्र कोप-मूर्ति रुद्र के ही दर्शन होने लगते हैं!

जितेक सूर धाइयं, तितेक रुद्र धाइयं।
जितेक और धावही, तित्यो महेश पावही।।

अंत में अन्धक क्रुध होकर स्वयं युद्ध को आता है। अन्धक और शिव के द्वन्द युद्ध का भी बड़ा आकर्षक वर्णन किया गया है!

धायो तब अंधक बलवाना, संग ले सैन दानवी नाना।
अमित बाण नन्दी कहुं मारे, बेंध अंग कहं पार उतारें।।

इसके पश्चात दोनों में घमासान युद्ध छिड़ जाता है, देखिए--

बीस बाण तिन शिव हि प्रहारे कोप कर।
लगे रुद्र के गात, गए वह घाय कर।।
गहि पिनाक कहि पाण पिनाकी धायो।
हो तुमुल जुद्ध दुहुअन रण मध्य मचायो।।

शिव के प्रहार से अन्धक मूर्छित हो रणभूमि में गिर जाता है। लेकिन होश में आते ही पुनः लड़ने लगता है! अन्त में --

तब कोप करं शिव शूल लियो।
अरि को सिर काट दुखंड कियो।।

इस प्रकार अत्याचारी अंधक मारा जाता है! आनन्द का पीयूष-पयोदधि उफनाने लगता है! देवता लोग भी प्रसन्न हो जाते हैं--

सुर राज प्रसन्न भए तब ही
अरि अंधक नाश सुन्यो जब ही

इस प्रकार तोटक, नाराच, रसाबल, अडिल्ल, चोपाई आदि विविध छन्दों द्वारा कवि ने महाकाव्य में प्राण फूंक दिए हैं! सिक्खों के गुरु गोविन्द सिंह कृत "विचित्र-नाटक" अपने समय के महाकाव्यों में सर्वोच्च स्थान रखता है!

--भवानीशंकर वर्मा, एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

देख कबीरा रोया : लेखक—मन्मथनाथ गुप्त; प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली; मूल्य, तीन रुपये।

प्रस्तुत उपन्यास में चार परिवारों की कहानी है। प्रत्येक परिवार के लक्ष्य में विभिन्नता है। प्रत्येक परिवार का प्राणी भी अपने-अपने लक्ष्य से प्रभावित और प्रेरित है। समाज में कुछ व्यक्तियों के आदर्श तो बहुत ऊँचे होते हैं, किन्तु हमारे पास का वातावरण इतना दूषित और विषाक्त होता है कि उन सिद्धान्तों की रक्षा करनी बहुत कठिन होती है। 'देख कबीरा रोया' भी ऐसी ही कहानी है, जिसे लेखक ने रोचक शैली में हमारे सामने प्रस्तुत की है। लेखक ने युग के यथार्थवाद का हृदयग्राही चित्रण किया है। कथानक, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल एवं भाषा-शैली की दृष्टि से उपन्यास बड़ा ही सुंदर बन पड़ा है। सभी चरित्र अपने-अपने में पूर्ण हैं। 'वसुमती' का चरित्र आदर्शवाद से युक्त है किन्तु युग के थपेड़ों में वह अपने आदर्शों की कहाँ तक रक्षा कर पाती है यह चिन्त्य विषय है। इस उपन्यास में युग की विभीषिकाओं का साक्षात् चित्रण है। उपन्यास के उद्देश्य के सम्बन्ध में विभिन्न राएँ हो सकती हैं। सभी दृष्टि-कोणों से उपन्यास चित्ताकर्षक है।

सोवियत संघ की लोक-कथाएँ : लेखक—प्यौच अलैक्सेविच बारान्निकोव; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली; मल्य, दो पये।

भारतीय लोक-कथाएँ रूसी भाषा में बराबर प्रकाशित हो रही हैं और रूसी भाषा-भाषी उनका समुचित आदर भी कर रहे हैं। उन कथाओं के अध्ययन में रूसी भाषा-भाषी बड़ी अभिरुचि दिखलाते हैं। हमारे देशवासी भी रूसी साहित्य के अध्ययन में पर्याप्त रुचि दिखाने लगे हैं। साहित्य की इस अभि चि से हम दूसरे देश के संस्कारों, संस्कृति, आचार-विचार, मनोभावों, परम्पराओं, आदर्शों से भलीभाँति परिचित हो जाते हैं और हम दूसरे देश के बहुत निकट आ जाते हैं। "सोवियत संघ की लोक कथाएँ" में सत्रह लोक-कथाएँ दी गई हैं। रूस देश में पन्द्रह संघीय सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र शामिल हैं। लेखक ने पन्द्रहों भाषाओं की लोककथाएँ इस संग्रह में प्रस्तुत की हैं। इन लोक-कथाओं में रूस की तत्कालीन परि-स्थितियों एवं जनता की विचारधारा का मोहक प्रतिबिम्ब मिलता है।

विषय की दृष्टि से ये लोक कथाएँ दो वर्गों में विभाजित की जाती हैं—काल्पनिक और यथार्थवादिनी। व्यंग्यात्मक लोक-कथाओं में दो प्रकार के पात्र हैं—सत् पात्र और खल पात्र। कथा के प्रारंभ में सत् पात्र मूर्ख और भोलाभाला दिखाई पड़ता है। किन्तु यह तो उसका वाह्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप है। आन्तरिक रूप में, सद्गुणों में वह खल पात्र से अधिक शक्तिशाली है। अंत में खल पात्र के ऊपर सत् पात्र की विजय होती है। इन कथाओं में जनता की त्रुटियों, रूढ़ियों, परम्पराओं की भी खिल्ली उड़ाई गई है। पुस्तक की भाषा बड़ी सुंदर, मंजी हुई और मुहाविरों से युक्त है। सभी हिन्दी प्रेमियों के लिए पुस्तक संग्रहणीय है।

मूँगे का दीप: मूल लेखक—श्री आर० एम० बेलेन्टाइन; अनुवादक—श्रीकान्त व्यास; प्रकाशक —राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-६; मूल्य, एक रुपया पचास नये पैसे।

प्रस्तुत पुस्तक बाल एवं किशोर साहित्य के प्रसिद्ध लेखक आर० एम० बेलेन्टाइन की प्रसिद्ध पुस्तक "Coral Island" का सफल अनुवाद है। बेलेन्टाइन ने इस प्रकार की लगभग ८० पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से 'मूँगे का द्वीप' को सब से अधिक प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त हुई है। संसार भर की विभिन्न प्रसिद्ध भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद हुआ है और उन भाषाओं के भाषा-भाषी बच्चे बड़े कौतूहल और रुचि से इस पुस्तक का अध्ययन करते हैं। पुस्तक में तीन बालकों—राल्फ़, जैक, पेटरकिन—की मूँगे के द्वीप में यात्रा की रोमांचक कहानी का वर्णन है। किस प्रकार वे तीनों बालक मूँगे के द्वीप में पहुँचते हैं, किस प्रकार अपना समय संघर्षों एवं कठिनाइयों में व्यतीत करते हैं, किस प्रकार जंगली जाति—हब्शियों के चंगुल में फँस कर मुक्त होते हैं और साथ ही किस प्रकार एक निरीह युवती 'अवेतिया' को मुक्ति दिलाते हैं, यही सब इस पुस्तक में हैं। बालकों की सूझ-बूझ, प्रत्युत्पन्नमति पर भी सुंदर प्रकाश डाला गया है। किशोर बालकों में यह पुस्तक नई प्रेरणा, स्फूर्ति, चेतना प्रदान कर सकेगी। पुस्तक की कहानी आकर्षक, भाषा सुष्ठ, सरल और प्रवाहयुक्त है।

ऊसर में हरियाली (सर गंगाराम—जीवनी और कार्य): लेखक—श्री बी० बी० एल० बेदी, अनुवादक—राजा पाण्डे; प्रकाशक—श्रीमती कृष्णा आफताब राय; मूल्य, तीन रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के विख्यात, यशस्वी, प्रत्युत्पन्नमति, कर्त्तव्यपरायण, समाजसेवी, परिश्रमी, मेधावी, उदारमना, इंजीनियर सर गंगाराम की जीवनी का विवरण है। अपने महान् परिश्रम, अद्भुत सूझ-बूझ, विलक्षण प्रतिभा, अनुपम दूरदर्शिता से वे साधारण व्यक्ति से महान् व्यक्ति बन गए। इसमें उनके क्रमिक उत्थान की कहानी बड़े ही आकर्षक ढंग से बताई गई है। सर गंगाराम सबसे बड़े इंजीनियर ही नहीं थे, बल्कि वे एक पूर्ण इन्सान थे। वे सर्वाङ्गी थे। वे महान् समाज सुधारक थे, स्त्री-शिक्षा के बड़े समर्थक, विधवाओं की दयनीय दशा पर आँसू बहाते थे। उन्होंने २५०० एकड़ बंजर भूमि को लहलहाती भूमि में परिणत किया था। अनेक स्कूलों और आश्रमों का निर्माण कराया था। प्रस्तुत पुस्तक में उपर्युक्त बातों का विवरण बड़े ही सुंदर और मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। स्वतंत्र भारत के हताश नवयुवक इस पुस्तक से महती प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं, ऐसा हमारा विश्वास है। जीवनी-साहित्य की दृष्टि से पुस्तक बड़ी उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

स्वामी श्री नारायण गुरु: लेखक—श्री सत्यन्; प्रस्तावना लेखक—विनोबा जी; प्रकाशक—अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी; मूल्य, पचीस नये पैसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक में केरल के अर्वाचीन महान् प्रसिद्ध सन्त श्री नारायण गुरु के जीवन का संक्षिप्त वर्णन है। लेखक ने श्रद्धेय स्वामी जी के जन्म और बाल्यकाल, शिक्षा-दीक्षा, संसार-त्याग, जीवन-कार्य, जन-सेवा का संक्षिप्त पर अत्यंत रोचक ब्यौरा दिया है। रामकृष्ण परमहंस और रमण ऋषि के समान ही नारायण गुरु भी थे। वे सफल शान्तिमय क्रान्तिकारी थे। हम श्री विनोबा जी के इस कथन से अक्षरशः सहमत हैं, "मैं आशा करता हूँ कि ऐसे महान् सन्त की संक्षिप्त जीवनी हिन्दी वाले रुचि से पढ़ेंगे और उससे प्रबोध पायेंगे।"

गीता-रत्न-प्रभा : लेखक—काका साहब कालेलकर; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद-१४; मूल्य, तीन रुपये।

श्रीमद्भगवद्गीता के कुल पदों की संख्या लगभग ३८३२ या ३८६५ है। प्रस्तुत पुस्तक में ७४५ शब्द मनन योग्य समझ कर लिए गए हैं। लेखक ने बड़े श्रम से उन शब्दों की अर्थ-गहनता, व्यवहार और व्यापकता पर सुंदर ढंग से प्रकाश डाला है। कहीं-कहीं शब्द की व्युत्पत्ति भी दी गई है। जिस प्रकार सुन्दर, निर्दोष और महत्वपूर्ण रत्नों की कीमत बहुत अधिक होती है, उसी प्रकार सुंदर और निर्दोष शब्दों की बहुत बड़ी महत्ता है। कदाचित् इसीलिए शब्द को 'ब्रह्म' कहा गया है। काका कालेलकर जी की 'गीता-रत्न-प्रभा' से गीता के शब्दों के अर्थ उज्ज्वल रत्नों की भाँति चमकने लगते हैं और बरबस हमें सोचने की नयी दिशा प्रदान करते हैं। कहीं-कहीं एक ही शब्द प्रसंगानुसार विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, इसकी सूक्ष्म व्याख्या भी इस ग्रंथ में की गई है। हमारी यह निश्चित धारणा है कि गीता के अध्येताओं के लिए यह पुस्तक बड़े ही काम की चीज़ है।

गांधी चरितमानस : योजक—श्री वालजी गोविन्दजी देसाई; अनुवादक—काशीनाथ त्रिवेदी; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद-१४; मूल्य, साठ नए पैसे।

महात्मा गांधी जी की 'आत्मकथा' विश्व-विश्रुत है। उसमें गांधी जी ने सत्य और अहिंसा के विविध प्रयोग सफलतापूर्वक किए हैं। प्रस्तुत पुस्तिका में गांधी जी की 'आत्म-कथा' के उद्योग काण्ड (मध्य भाग) के अंश हैं। इसमें २३ घटनाओं का हृदयग्राही चित्रण हैं। प्रत्येक साधक, जिज्ञासु, समाजसेवक, कर्मयोगी के लिए गांधी जी के जीवन के ये वृत्त बहुत ही प्रेरणादायक हैं। साधक का अन्तस्तल एवं सच्चाई इस पुस्तिका में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होते हैं। इस पुस्तिका के पढ़ने से मस्तिष्क में उच्च विचार और हृदय में भव्यभाव जाग्रत होते हैं। नवयुवकों एवं नवयुवतियों को यह पुस्तिका मार्ग प्रदर्शिका सिद्ध होगी, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

कुटज : लेखक एवं प्रकाशक—के० ए० महमूद, १४३, सेगुम बागीचा, ढाका; मूल्य, नहीं छापा गया है।

'कुटज' हिन्दी की २४ लघु कविताओं का संग्रह है। १९५१ ई० में इसका प्रथम प्रकाशन देवनागरी लिपि में हुआ। १९५४ ई० में यह बंगला लिपि में प्रकाशित हुई। अब यह गुजराती भाषाभाषियों के अध्ययन के निमित्त गुजराती लिपि में प्रस्तुत की गई है। कुटज की कविताओं के शीर्षक हैं—वक्तव्य, कविता-रानी, क्या गाऊँ?, गाये जा, अनन्य चाह, प्रेम का मूल्य, बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिन है, प्रेम स्वरूपा, वरमाला, विच्छेद, रामटेक के अन्तस्तल में, स्मरण, दुर्दिन, अरी वेदने, अरे वधिक, याचना, कामना, प्रणय-मंत्र, अन्तिम संदेश, विचार, सुख-संवाद, आँखें, अन्तर्नाद, और किसी दिन। प्रायः सभी गीत प्रेम से संबंधित हैं। इन गीतों में प्रेम की पीड़ा, विरह की वेदना, मिलन के अह्लाद, प्रेमिका के प्रति त्याग पाये जाते हैं। इन गीतों में भौतिकता और ऐन्द्रिकता की भावना ही अधिक हैं, हाँ प्रेमिका के मंगल के लिए, प्रेमी नरक की यातनाएँ भी सहने को तैयार है। उसकी इसी त्याग-भावना से प्रेम का कालुष्य बहुत कुछ दूर भी हो जाता है और उसमें उज्ज्वलता का समावेश हो जाता है।

—(डा०) जयराम मिश्र

परमाणु शक्ति : लेखक—श्री प्रोफेसर रत्नसिंह गिल, एम० ए०; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली; मूल्य, १ रु० ५० न० पै०।

वर्तमान युग परमाणु-युग का है। परमाणु ही आज के वैज्ञानिकों के अध्ययन का विषय है। विश्व के प्रायः सभी उन्नत राष्ट्र परमाणु के अध्ययन में जुटे हुए हैं और अपनी आय का अधिक-से-अधिक भाग उसके अनुसंधान पर व्यय करने की होड़ लगा रहे हैं। ऐसी स्थिति में परमाणु क्या है, उसकी शक्ति क्या है और उसका उपयोग किस प्रकार किया गया है यह जान लेने की उत्कंठा सब में जाग्रत हो गई है। प्रस्तुत पुस्तक इसी उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से लिखी गई है। इसमें परमाणु-संबंधी मोटी-मोटी बातों को सरलतम ढंग से समझाने की सफल चेष्टा की गई है। संपूर्ण पुस्तक नौ अध्यायों में विभाजित है और प्रत्येक अध्याय में परमाणु से संबंधित एक विषय लिया गया है। इस प्रकार परमाणु-संबंधी ज्ञातव्य सामग्री को सरल और सुबोध रूप में देकर विद्वान् लेखक ने हिन्दी-भाषी जनता और विशेषतः विद्यार्थियों का बहुत उपकार किया है।

हड्डियों का दान : लेखक—श्री वीरेन्द्र कुमार गुप्त, एम० ए०; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली; मूल्य, १ रु० ५० न० पै०।

प्रस्तुत पुस्तक में कुल बारह छोटी-बड़ी कहानियाँ हैं। सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक हैं। कहानियाँ कुछ पुरानी हैं, कुछ नई, किन्तु भाषा-शैली की सजीवता से सभी कहानियों में नयापन और निखार आ गया है। किशोरों के लिए यह रचना अत्यन्त उपयोगी है। कहानियाँ सचित्र हैं, इसलिए किशोर उनका आनन्द भली प्रकार उठा सकते हैं।

पशु-पक्षियों की कहानियाँ : लेखक—श्री राजेन्द्र शर्मा; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली; मूल्य, १ रु० ५० न० पै०।

हिन्दी में पशु-पक्षियों के संबंध में अनेक कहानी-पुस्तक मिलती हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन कहानी-पुस्तकों से भिन्न है। इसमें पशु-पक्षियों की जो कहानियाँ ली गई हैं वे 'महाभारत' से ली गई हैं। अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए विद्वान् लेखक ने लिखा है—'इनमें आएं पशु-पक्षी पात्र किसी-न-किसी मानवीय गुण या अवगुण के प्रतीक हैं। इन प्रतीकों के संबंध में मैंने हरेक कथा के अन्त में वक्तव्य दिया है, जिसमें इनके आध्यात्मिक या प्रतीकात्मक मूल्यों को समझने का प्रयास किया गया है। लेखक को अपने इस दृष्टिकोण को व्यक्त करने में सफलता मिली है। हिन्दी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियों को ऐसी रचनाओं का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। इससे उन्हें अपने प्राचीन आख्यानों का परिचय मिलने के साथ-साथ महाभारतकार की मनोवृत्ति के अध्ययन का अवसर भी मिलेगा। 'महाभारत' में पशु-पक्षियों की अनेक कहानियाँ हैं। कहानियाँ सभी रोचक और शिक्षाप्रद हैं। इन्हें एकत्र कर विद्वान् लेखक ने चार भागों में विभाजित किया है। प्रस्तुत पुस्तक उस शृंखला की प्रथम कड़ी है। आशा है कि हिन्दी के विद्यार्थियों में इस रचना का अच्छा आदर होगा।

द्वा सुपर्णा: लेखक—श्री जगदीश एम० ए०, प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, मानमंदिर, वाराणसी-१; मूल्य, एक रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक प्रचारक पाकेट बुक्स की शृंखला में २८ वीं कड़ी है। इसमें श्री जगदीश एम० ए० की कुछ २६ छोटी-बड़ी कहानियाँ संगृहीत हैं। अधिकांश कहानियाँ पौराणिक हैं। इनके अतिरिक्त उपनिषद और जातक की कहानियाँ भी ली गई हैं। लेखक की कहानियाँ पुरानी हैं, पर उन पुरानी कहानियों को उन्होंने अपनी शैली की खराद पर चढ़ा कर नया रूप दे दिया है। छोटी कहानियाँ बड़ी शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक होती हैं और वे जीवन के किसी-न-किसी सत्य को पाठकों के सामने उभार देती हैं। प्रस्तुत पुस्तक में ऐसी अनेक छोटी कहानियाँ हैं। पाठकों को इन कहानियों के अध्ययन से लाभ उठाना चाहिए।

इतिहास के महापुरुष: लेखक—श्री जवाहरलाल नेहरू; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली-१; पहला अल्पमोली संस्करण; मूल्य, डेढ़ रुपया।

'विश्व इतिहास की झलक' पं० जवाहरलाल नेहरू की प्रसिद्ध रचना है। प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री इसी ग्रन्थ से ली गई है। इसमें तपःपूत महावीर से टर्की के नेता मुस्तफा कमालपाशा तक के ४१ महापुरुषों के जीवन और कृतित्व की झाँकियाँ प्रस्तुत की गई हैं। पं० नेहरू इतिहास-प्रेमी तो हैं ही, इतिहास-निर्माता भी हैं। इतिहास की गुत्थियाँ सुलझाने और उन पर से असत्य का पर्दा हटाने में वह सिद्धहस्त हैं। उनकी लेखनी में बल है। इसलिए वह जो कुछ लिखते हैं उसमें स्पष्टता होती है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने प्रत्येक ऐतिहासिक महापुरुष के जीवन और कृतित्व पर तटस्थ रह कर भी विचार किया है और अपनी व्यक्तिगत राय भी दी है। इससे पुस्तक में जान आ गई है। इतिहास-प्रेमियों और विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। कम मूल्य में इतनी सुन्दर पुस्तक प्रकाशित कर सस्ता साहित्य मंडल के अधिकारियों ने अपने देश के प्रकाशकों के सामने जो आदर्श रखा है उसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ। इस पुस्तक का हिन्दी-जगत में अच्छा प्रचार होगा ऐसा मुझे विश्वास है।

विज्ञान के दृश्य: लेखक—सी० वी० रमन; अनुवादक—श्री रामचन्द्र तिवारी; प्रकाशक—प्रकाशन-विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली-६; मूल्य, ७५ न० पै०।

नोबुल-पुरस्कार-विजेता श्री सी० वी० रमन हमारे देश के विश्व-विख्यात वैज्ञानिक हैं। आज से लगभग १०-११ वर्ष पहले उन्होंने आल इण्डिया रेडियो, मद्रास से भौतिक विज्ञान के विभिन्न दृश्यों से संबंधित कई वार्ताएँ प्रचारित की थीं। वार्ताएँ अंग्रेजी में थीं और उनका संग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Aspects of Science के नाम से प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिन्दी-रूपान्तर है। इसमें कुल उन्नीस वार्ताएँ हैं। प्रत्येक वार्ता भौतिक विज्ञान का एक दृश्य प्रस्तुत करती हैं। इसमें शक नहीं कि विज्ञान के विद्यार्थी ही इन वार्ताओं से पूरा लाभ उठा सकते हैं, किन्तु अभिव्यक्ति की सरलता और व्याख्या की स्पष्टता के कारण जन-साहित्य की दृष्टि से भी इनका महत्व कम नहीं है। हिन्दी-जगत को श्री रमन की ये वार्ताएँ स्थायी देन है। इनसे सब को लाभ उठाना चाहिए।

कपास: लेखक—श्री दादा भाई नाईक; प्रकाशक—अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ, राजघाट, काशी; मूल्य, २ रु० ५० न० पै०।

श्री दादा भाई नाईक लगभग ४० वर्षों से खादी-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। खादी और कपास का चोली-दामन का साथ है। खादी के प्रचार के लिए कपास की खेती की उन्नति करना परम आवश्यक है। श्री दादाभाई नाईक ने खादी के प्रचार-कार्य के साथ-साथ, स्वतंत्र रूप से, कपास की खेती के संबंध में जो अनुभव प्राप्त किये हैं उन्हीं के आधार पर उन्होंने इस पुस्तक की रचना की है। इसमें कुल नौ अध्याय हैं जिनसे खादी और कपास संबंधी पूरी जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार यह पुस्तक खादी-संस्थाओं और कपास की खेती करने वाले किसानों, दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। कपास-संबंधी अब तक जितनी पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं उनके मुकाबले में इसका महत्व इसके अध्ययन से ही स्पष्ट होगा। किसानों और ग्रामोद्योग में लगे हुए लोगों को इस रचना से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

सह-जीवन और सह-अध्ययन: लेखक—श्री श्री कृष्णराज मेहता; प्रकाशक—अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ, राजघाट, काशी; मूल्य, पचासी न० पै०।

श्री दादा धर्माधिकारी के मार्ग-दर्शन में दिनांक १४ जनवरी, १९६० से दिनांक १४ फरवरी, १९६० तक एक मास का सह-अध्ययन-शिविर सर्व-सेवा-संघ, काशी के तत्वावधान में संपन्न हुआ था। सह-अध्ययन का विषय था : अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया। शिविर में १३ प्रान्तों के २८ कार्यकर्ता सम्मिलित हुए थे। शिविर की अपनी दिनचर्य्या थी, अपना प्रबन्ध था। प्रस्तुत पुस्तक में मेहता जी ने इस शिविर से संबंधित कार्यों का लेखा-जोखा ब्यौरेवार क्रम से दिया है। इसके अध्ययन से सह-जीवन और सह-अध्ययन का महत्व स्पष्ट होता है। पुस्तक पठनीय और मनन योग्य है। श्री शंकर राव देव, श्री दादा धर्माधिकारी तथा मेहता जी के विचारों और आदर्शों से समन्वित इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिए।

—राजेन्द्रसिंह गौड़, एम० ए०

मैं इनका ऋणी हूँ: लेखक—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य, दो रुपये।

स्वर्गीय इन्द्र जी की इस रोचक पुस्तक में हमारे देश के पन्द्रह नर-रत्नों के जीवन-संस्मरण दिए गए हैं। इन्द्र जी स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी तो थे ही साथ ही एक सिद्धहस्त पत्रकार तथा लेखक भी थे। सुयोग्य एवं सम्मानित पिता के पुत्र होने के नाते बाल्यकाल से ही उन्हें देश के अग्रणी नेताओं एवं व्यक्तियों से मिलने-जुलने एवं उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अवसर मिले थे और आगे चल कर गुरुकुल कांगड़ी के प्रमुख एवं संसद् सदस्य होने के नाते भी उन्हें इस दिशा में जो स्थिति प्राप्त थी, वह सामान्य लेखकों के लिए असंभव थी। फलतः उनके इस संस्मरण में जो स्वाभाविकता एवं मौलिकता है, वह उन्हीं के द्वारा संभव थी। पुस्तक में जहाँ विश्ववन्द्य बापू, महामना मालवीय जी, लोकमान्य तिलक, पं० मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमल खाँ, लाला लाजपतराय, डा० अन्सारी, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, नेताजी सुभाष बोस आदि के संस्मरण हैं, वहीं बाबू शिवप्रसाद गुप्त, प्रेमचन्द जी, देवदास गांधी तथा लेखक के स्वनामधन्य पिता स्वामी श्रद्धानन्द के भी संस्मरण हैं। पुस्तक की शैली एवं भाषा इतनी सुरुचिपूर्ण, शिष्ठ तथा रोचक है कि उसे समाप्त किए बिना उठना कठिन है। अनेक ऐसे भी सन्दर्भ हैं, जो प्रथम बार प्रकाश में आए हैं। इनमें स्व० इन्द्र जी की जो व्यक्तिगत छाप है उसमें विचित्र ताजगी हैं। स्वयं लेखक के कथनानुसार—"यदि पाठक संस्मरणों को ध्यान से पढ़ेंगे तो उन्हें बीच-बीच में वर्णनीय नर चन्द्रमाओं के धब्बों का आभास भी मिल जायगा।" पुस्तक सभी दृष्टियों से संग्राह्य और सभी कोटि के पाठकों को बहुत कुछ देने वाली है।

सुभाषित सप्तशती : संकलनकर्ता—डा० मंगलदेव शास्त्री; प्रकाशक —सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली; मूल्य, ढाई रुपए।

संस्कृत वाङमय में सुभाषितों का अक्षय भाण्डार सुरक्षित है। इधर हिन्दी में भी उनके अनेक वृहत् संग्रह प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी उसी दिशा की एक उत्तम कृति है। इसके संकलनकर्ता डा० मंगलदेव शास्त्री संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् तथा हिन्दी एवं संस्कृत के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। फलतः उनका यह सुभाषित संग्रह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें वैदिक-संस्कृत एवं पाली-वाङमय से पठन एवं मनन करने योग्य जिन सुभाषितों का संकलन किया गया है, वे जीवन की विविध दिशाओं में प्रेरणाप्रद हैं। इनकी संख्या सात सौ है, अतः दुर्गा सप्तशती आदि प्राच्य ग्रन्थों की भांति इसका नाम सप्तशती रखा गया है। डा० शास्त्री स्वयं संस्कृत के सुकवि हैं। अतः स्वयं उनके सुभाषितों का भी इस संग्रह में यथाप्रसंग उपयोग हुआ है।

संगृहीत सुभाषितों का विभाजन भी भाषा एवं वर्ण्य विषयों के आधार पर ऐसे सुन्दर ढंग से हुआ है कि पाठक को इधर उधर ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं है। प्रथम खण्ड में वैदिक वाङमय के मंत्र भाग, ब्राह्मण भाग, उपनिषद् भाग से, द्वितीय खण्ड में इतिहास, पुराण-स्मृति, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, जैन, बौद्धादि साहित्यों से तथा तृतीय खण्ड में प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थों से सुभाषित लिए गए हैं। ये सुभाषित केवल पद्यों में ही नहीं हैं, विभिन्न शैली के गद्य के रूप में भी हैं। सुभाषितों में आर्य जीवन के उज्ज्वल आदर्शों की छाप सर्वत्र है। अनुवाद की भाषा सरल-सुगम रखी गई है, जिससे सभी वर्ग के पाठक लाभ उठा सकें। आशा है, पुस्तक का उचित आदर होगा।

शार्ङ्गधर संहिता : (मूल तथा टीका समेत) टीकाकार—श्री राधाकृष्ण पाराशर, आयुर्वेदाचार्य; प्रकाशक—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड, १ गुप्ता लेन, कलकत्ता-६; मूल्य, ५ रु० ७५ न० पै०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद के विशाल वाङ्मय में शार्ङ्गधर संहिता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति के सर्वोत्तम योगों का अत्यन्त सुन्दर संग्रह है। प्रायः सभी वैद्य एवं आयुर्वेद-कार्य करनेवाली संस्थाएं इस ग्रन्थ के योगों को महत्व देती और पुस्तक की उपादेयता स्वीकार करती हैं। इसमें चरक, सुश्रुत आदि प्राच्य ग्रन्थों एवं संहिताओं के उत्तमोत्तम योगों की बड़ी सुन्दरता से संचयन किया गया है। शार्ङ्गधर संहिता की संस्कृत में अनेक टीकाएं यद्यपि हैं, तथापि उन टीकाओं से औषधियों के नाम आदि की जानकारी सर्वसाधारण को सुगम नहीं थी। फलतः राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रस्तुत इस टीका से सर्वसाधारण जनता एवं वैद्यों को बड़ी सुविधा हो गई हैं। क्योंकि इसमें हर एक योग, द्रव्य एवं संकेतों का अधिकाधिक स्पष्टीकरण किया गया है। विवेचन इतना सुस्पष्ट एवं बोधगम्य है कि किसी को कोई कठिनाई नहीं। अनुवाद की भाषा बड़ी सरल, सुस्पष्ट तथा प्रांजल है और यथाप्रसंग एलोपैथी-चिकित्सा-पद्धति की औषधियों के नामादि भी कोष्टक में दिए गए हैं जिससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। अनुवादक महोदय स्वयं आयुर्वेद के विशेषज्ञ होने के साथ-साथ आयुर्वेद की शिक्षण-संस्थाओं के आचार्य रह चुके हैं, अत : उन्होंने जटिल प्रसंगों पर भी कहीं ग्रन्थि नहीं रहने दी है।

यह स्वर्ण में सुगन्धि का संयोग है कि ऐसे सुन्दर ढंग से प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण पुस्तक का मूल्य केवल ५.७५ रुपया रखा गया है, जिससे सर्वसामान्य को लाभ मिल सके। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन आयुर्वेद का कार्य करने वाली प्रमुख संस्था है, उसकी औषधियों से हमारे देश का प्रत्येक वर्ग उपकृत है। हमें आशा है, उसके ऐसे महत्वपूर्ण प्रकाशनों से भी देश की जनता अधिकाधिक लाभान्वित होगी। हम हिन्दी जगत की ओर से ऐसी महत्वपूर्ण पुस्तक के इतने सुलभ प्रकाशन के लिए प्रकाशन संस्था एवं अनुवादक के प्रति आभार प्रकट करते हैं और हमें विश्वास है कि इस पुस्तक से न केवल वैद्य ही वरन् आयुर्वेद के प्रति आस्थाशील सामान्य पाठक भी यथेष्ट लाभ उठायेंगे।

कुछ पुरानी चिट्ठियाँ: श्री जवाहर लाल नेहरू के संग्रह के महत्वपूर्ण पत्र; प्रकाशक—सस्ता सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य दस रुपए।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस पुस्तक में श्री जवाहरलाल नेहरू जी के संग्रह की कुछ महत्त्वपूर्ण पुरानी चिट्ठियों का संग्रह है। कुछ चिट्ठियां स्वयं उनकी लिखी हुई हैं और अधिकांश उनको लिखी गई हैं। पुस्तक में कुल ३६८ चिट्ठियां हैं जिनमें भारत के तथा बाहर के लोगों की भी हैं। भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई के दिनों में नेहरू जी का जैसा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है उसके अनुरूप ही इस संग्रह में भी अधिकांश उन्हीं लोगों के पत्र हैं जिनका हमारे देश के नवनिर्माण में महत्त्वपूर्ण योग-दान रहा है। पुस्तक में केवल ६ चिट्ठियां ऐसी हैं जो भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की हैं, शेष सभी पहले की हैं। फलतः इस समूची पुस्तक-सामग्री में पराधीनता के युगों की ऐसी अनेक भूली-बिसरी बातें हैं जो आज बहुत महत्त्व रखती हैं। कुछ ऐसी भी बातें हैं जो प्रथम बार सामान्य पाठकों के लिए प्रकाश में आई हैं। इसी प्रकार बहुतेरे प्रसंगों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रामाणिक जानकारी भी इनसे मिलती हैं। इन सभी पत्रों में अधिकांश ऐसे हैं जिनका ऐतिहासिक महत्व है और कालान्तर में उनका और भी अधिक महत्त्व होगा।

पत्र साहित्य में व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों एवं स्वाभाविक विशेषताओं की जो गहरी छाप होती है वह अन्यत्र नहीं होती। फलतः आत्मीयता की भावना, वात्सल्य एवं प्रेमोद्गार के साथ-साथ स्पर्द्धा, एक दूसरे को खंडित करने की भावना एवं अपने पक्ष को ऊपर उठाने की बलवती इच्छा भी पत्रों में ही व्यक्त की जा सकती है। इस संग्रह में महात्मा गांधी, पंडित मोतीलाल नेहरू, सरोजिनी नायडू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, नेता जी सुभाषचन्द्र बोस, लाला लाजपतराय, मि० जिन्ना, डा० अन्सारी, डा० राजेन्द्रप्रसाद, आचार्य कृपलानी, सरदार पटेल, मैडम च्यांग काई शेक, मैडम सनयात सेन, मौलाना आजाद, जार्ज बर्नार्ड शा, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स आदि के रोचक पत्रों को पढ़ने का अवसर हिन्दी पाठकों को प्रथम बार प्राप्त हुआ है। इन पत्रों में मतभेद के पत्रों की भी संख्या कम नहीं है। और ऐसे भी लंबे पत्र हैं, जो स्वतंत्र निबन्ध की संज्ञा में बांधे जा सकते हैं। नेता जी के पत्र तो प्रायः सभी लंबे हैं और उनमें उन्होंने अपने जो उद्गार प्रकट किए हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि नेहरू जी और उनके बीच में कितना मतभेद था।

पुस्तक की भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण है। शिकायत यही है कि ऐसी उपादेय पुस्तक का मूल्य १० रु० रखते समय सस्ता साहित्य मण्डल ने अपने नाम की ओर भी यदि ध्यान दिया होता तो हिन्दी के सहस्रों पाठकों की कृतज्ञता भी उसे प्राप्त होती। पुस्तक उपयोगी है और हिन्दी पाठकों के लिए मनोरंजन के साथ-साथ बहुत सी नई जानकारियाँ भी दे जाती हैं।

जीने की कला: लेखक—श्री सन्तराम बी० ए०; प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली; मल्य, ३ रु० ५० न० पै०।

श्री सन्तराम जी हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। उनके सामाजिक सुधारवादी विचारों के निबन्ध हिन्दी पाठकों के लिए चिरपरिचित हैं। उनकी इस उपयोगी पुस्तक में मानव-जीवन को विकसित एवं समृद्ध बनाने के अनेक साधन अत्यन्त रोचक और मनोवैज्ञानिक ढंग से बताए गए हैं। मनुष्य अपने जीवन भर सुख, समृद्धि, स्वास्थ्य और सफलता की खोज में भटकता फिरता है, उसका सम्पूर्ण कार्य-कलाप इन्हीं वस्तुओं के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता है। शिक्षा, परीक्षा, नौकरी, गृहस्थी, संन्यास सर्वत्र इन्हीं की खोज में वह दौड़ता है। किसी को कोई वस्तु मिलती है और किसी को कोई। समष्टि रूप में ये सारी वस्तुएँ एक व्यक्ति को शायद ही कभी मिलती हैं और जिसे मिलती हैं वही दूसरों की दृष्टि में भाग्यशाली माना जाता है। अनुभवी लेखक ने स्वयं अपने अनुभवों से ही नहीं अपने गंभीर अध्ययन एवं मनन से भी इस पुस्तक में ऐसे उपयोगी साधन संकलित किए हैं, जिनके पढ़ने से प्रेरणाएँ मिलती हैं और अन्धकार तथा किंकर्त्तव्य विमूढ़ता की स्थिति में भी आत्मरक्षा एवं आत्मोन्नति के मार्ग दिखाई पड़ते हैं। मानवीय जीवन में उच्चादर्शी की प्रेरणा भी इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है। कुल मिला कर वह एक सच्चे हितैषी मित्र अथवा अनुभवी गुरुजन की भांति पथ-प्रदर्शन का काम देती है। पुस्तक न केवल वास्तविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-पथ पर अग्रसर होने वाले नवयुवकों के लिए ही वरन् सभी प्रकार के पाठकों का हित करने में भी सक्षम है। पुस्तक की भाषा सरल और शैली में रोचकता है।

भारतीय स्वाधीनता का इतिहास: लेखक––श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति; प्रकाशक––सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य, साढ़े पाँच रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख सेनानी तथा हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार थे। भारतीय जीवन में उन्हें उच्च प्रतिभा भी प्राप्त थी। फलतः उनकी इस कृति में यथाशक्य सुलभ उपादानों का जितनी उत्तमता एवं वैज्ञानिक दृष्टि से उपयोग किया गया है, वह अन्य जन-सुलभ नहीं था। भारतीय स्वाधीनता के इतिहास का यह आकलन सन् १८५७ ई० की सुविख्यात क्रान्ति से आरम्भ होकर सन् १९४७ में स्वाधीनता प्राप्ति तक का है। इसमें इस लंबी कालावधि की प्रमुख उल्लेख्य घटनाओं का ऐतिहासिक दृष्टि से चित्रण किया गया है और प्रमाणभूत तथ्यों का सुन्दर विवेचन भी किया गया है। यथाप्रसंग लेखक ने अपना जो भी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है वह एक ऐतिहासिक का दृष्टिकोण है। यद्यपि इस विषय पर डा० पट्टाभि सीतारमैया का कांग्रेस का इतिहास एक सुविस्तृत ग्रन्थ है तथापि संक्षिप्त, सुव्यवस्थित एवं प्रामाणिक ढंग से इस पुस्तक के द्वारा सामान्य पाठकों को जितनी बातें ज्ञात होती हैं, उतनी उस विशाल पुस्तक से नहीं। पुस्तक में यथावसर रेखाचित्र भी दे दिए गए हैं, जो उपादेयता को और भी बढ़ा देते हैं।

प्राकृतिक जीवन की ओर: मूल लेखक––एडोल्फ जस्ट; अनुवादक––श्री विठ्ठलदास मोदी, प्रकाशक––सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य, डेढ़ रुपया।

यह पुस्तक प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति की एक श्रेष्ठ रचना है। इसमें स्वस्थ रहने के लिए हमें किस प्रकार रहना चाहिए, कैसा भोजन करना चाहिए, कैसी वेष-भूषा रखनी चाहिए, प्रकृति की देनों का लाभ किस प्रकार उठाना चाहिए आदि विषयों पर वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला गया है। इसमें मनुष्य को सर्वदा स्वस्थ और प्रसन्न रहने के लिए ऐसे सरल उपाय बताए गए हैं, जिन्हें आसानी से हर व्यक्ति कर सकता है और स्वयं तथा अपने परिवार एवं समाज को भी स्वस्थ और सुप्रसन्न देख सकता है। कठिन-से-कठिन एवं दुस्साध्य बीमारियों का भी इसमें प्राकृतिक इलाज जिस ढंग से बताया गया है उसकी जानकारी सब को यदि हो जाय तो समाज का बड़ा उपकार हो।

पुस्तक के अनुवादक स्वयं एक सफल प्राकृतिक चिकित्सक हैं। अनुवाद की भाषा अति सरल तथा रोचक है, जिससे सभी वर्ग के लोग लाभ उठा सकते हैं। इसका यह अल्पमोली संस्करण तो सब प्रकार से उपयोगी है। विश्वास है इसकी एक-एक प्रति प्रत्येक सजग पाठक अपने घर में अवश्य रखेगा।

सत्य हरिश्चन्द्र: लेखक––भारतेन्दु हरिश्चन्द्र; सम्पादक––श्री शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', काशिकेय; प्रकाशक––नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; मूल्य, ३ रुपया ५० न० पै०।

आधुनिक हिन्दी युग के निर्माता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की इस अनवद्य रचना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन इसके पहिले अनेक स्थलों से हो चुका है, और हिन्दी साहित्य का संभवतः एक भी ऐसा पाठक या विद्यार्थी न होगा जो उसका रसास्वादन न कर चुका हो, किन्तु उसका यह नूतन संस्करण जिस सुन्दरता, वैज्ञानिकता एवं नवीन शोध-सामग्रियों के साथ प्रकाशित किया गया है, वह अनुपम है। भारतेन्दु का सत्य हरिश्चन्द्र छात्रोपयोगी रचना होने के साथ-साथ ऐसा भी नाटक है, जिसका प्रभाव उसके समकालीन एवं उत्तरकालीन नाट्य कृतियों पर देखा जा सकता है। इसका अपना साहित्यिक महत्त्व भी कम नहीं रहा है। विद्वान् सम्पादक ने अपनी खोजपूर्ण भूमिका में अनेक ऐसे तथ्यों का विवेचन किया है, जो सामान्य हिन्दी पाठकों के सामने प्रथम बार आए हैं। साथ ही "भारतेन्दु के पूर्व भारतीय रंगमंच" तथा "सत्य हरिश्चन्द्र का परवर्ती प्रभाव" शीर्षक निबन्ध में भी नाट्य-साहित्य की अनेक महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला गया है। बीच-बीच में नाटक के प्रथम बार के प्रकाशित पृष्ठों के कुछ चित्र भी दिए गए हैं। पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट के रूप में वाजिद अली शाह रचित "किस्सा राधा कन्हैया" को भी नागरी लिपि में प्रथम बार प्रकाशित किया गया है। मूल कथानक के साथ-साथ कहीं कहीं चण्डकौशिक के मूलपाठ को भी तुलनात्मक दृष्टि से उपस्थित किया गया है।

इस प्रकार कुल मिला कर विद्वत्तापूर्ण भूमिका के कारण सत्य हरिश्चन्द्र का यह संस्करण हिन्दी के विद्यार्थियों एवं पाठकों के लिए नवीन रूप में प्रस्तुत हुआ है और इसके द्वारा अनेक नए सन्दर्भ प्रकाश में आये हैं।

भारत विभाजन की कहानी : मूल लेखक—ए० के० जान्सन; अनुवादक—जीरनवीर सक्सेना; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य, डेढ़ रुपया।

इस पुस्तक के मूल लेखक श्री एलन कैम्पबेल जान्सन हमारे देश के अन्तिम ब्रिटिश तथा प्रथम वायसराय लार्ड माउण्टबेटन के प्रेस अटैची थे। उन्होंने लार्ड माउण्टबेटन के साथ भारत के विभाजन की समस्त घटनाओं को स्वयं अपनी आँखों से ही नहीं देखा था, वरन् इंगलैण्ड से लेकर हमारे देश तक इस दुःखान्त नाटक के लिए कैसी-कैसी भूमिकाएँ रची गई थीं, उनके सूत्रधारों में से भी वह एक थे। अनेक कठिन अवसरों पर तो उन्होंने स्वयं निर्णय एवं निष्कर्ष निकाले थे। फलतः उनकी इस कृति में भारत के विभाजन की कहानी जितने स्वाभाविक एवं प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत की गई है, उतना अन्यत्र संभव भी नहीं था। दिन प्रति दिन घटने वाली घटनाओं का लेखक ने केवल ब्योरेवार वर्णन ही नहीं किया है, वरन् अनेक महत्त्वपूर्ण कागद-पत्रों से उद्धरण भी दिए हैं। लेखक ने भरसक निरपेक्ष और निष्पक्ष रहने का भी प्रयत्न किया है और अनेक सन्दर्भों को इतना मुखर एवं जीवन्त बना दिया है कि पाठक को उपन्यास की रोमांचकारी घटना से कम आनन्द इस पुस्तक से नहीं मिलता। शैली इतनी रोचक एवं मनोरंजक है कि पूरी पुस्तक एक बैठक में समाप्त करने को जी चाहता है। अनुवाद की भाषा बहुत स्पष्ट और सरल है।

आज के लोकप्रिय कवि : श्री रामधारी सिंह दिनकर; लेखक—श्री मन्मथनाथ गुप्त; प्रकाशक —राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली–६; मूल्य, दो रुपया।

हिन्दी के विद्यमान कवियों में दिनकर जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे अत्यधिक लोकप्रिय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और उनकी ओजपूर्ण एवं गेय रचनाओं के पाठकों की संख्या भी अधिक है। प्रस्तुत पुस्तक में दिनकर जी के मोहक एवं सफल व्यक्तित्व की अतीव रोचक झाँकी प्रस्तुत करने के साथ-साथ उनकी चुनी हुई कुछ प्रसिद्ध कविताओं का संकलन किया गया है और रचनाओं का समय भी दे दिया गया है। अधिकांश रचनाएँ वही हैं, जिनमें हिन्दी के पाठक गत अनेक दशकों से सुपरिचित हैं, किन्तु कुछ नवीन रचनाएँ भी हैं, जिन्हें देखकर उनके विकासक्रम का अनुमान लगाया जा सकता है।

दिनकर की रचनाओं में सामाजिक उत्पीड़न, राजनीतिक बेवशी, वेदना एवं अन्तर्द्वंद का इतना मार्मिक चित्रण रहता है कि पाठकों पर सद्यः प्रभाव पड़ता है। उनकी सीधी सादी किन्तु यथावसर प्रांजल एवं प्रेरणापूर्ण शब्दावली का यथेष्ट परिणाम होता है। उनके स्वर में गर्जन के साथ-साथ स्वाभिमान एवं ओजस्विता की भावना पदे-पदे मिलती है। भारत के अतीत गौरव के प्रति उनमें जितनी निष्ठा और आस्था है उतनी ही अनागत भविष्य को उज्ज्वल और स्वर्णिम बनाने की आकांक्षा भी है। अनैतिकता, कायरता एवं बर्बरता के भी वे सहज शत्रु हैं। उनकी रचनाओं में इन उच्च भावनाओं की प्रतिच्छाया सर्वत्र मिलती है। प्रकृति के विराट् स्वरूप के प्रति भी उनकी मोहक उक्तियों का विस्मरण नहीं किया जा सकता। उनकी हुंकार एवं गर्जना से भरी कविताओं के साथ-साथ प्रेम, शृंगार एवं यथार्थवादी उक्तियाँ भी इस संग्रह में संकलित हैं। गेय पदों के साथ कुछ अनुद्दात्त रचनाएँ भी हैं। इस प्रकार कुल मिला कर दिनकर जी का यह संग्रह हिन्दी काव्य-रसिकों के लिए बड़े काम की चीज है। गुप्त जी ने आरम्भ के ३५ पृष्ठों में दिनकर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर जो प्रकाश डाला है, वह भी अतीव रोचक एवं पठनीय है।

इन्कलाब : मूल लेखक––ख्वाजा अहमद अब्बास; अनुवादक––श्री मुनीश सक्सेना; प्रकाशक ––राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली–६; मूल्य, छः रुपया।

ख्वाजा अहमद अब्बास उर्दू कथा-साहित्य एवं फिल्मी जगत के सुप्रसिद्ध कलाकार हैं। उनके इस सुप्रसिद्ध उपन्यास में विगत भारतीय स्वतंत्रता का संघर्ष चित्रित किया गया है। फलतः भारतीय राजनीति के धुरन्धर नेताओं को भी इसमें पात्र बनाया गया है और भारत गण-राज्य की राजधानी दिल्ली को मुख्य केन्द्र के रूप में चित्रित किया गया है। बिना प्रेम-प्रसंग अथवा रोमांस के जिस प्रकार कोई फिल्म लोकप्रिय नहीं हो सकती, वही स्थिति बहुत कुछ उपन्यास की भी मान ली गई है। फलतः अब्बास साहब के इस उपन्यास में भी यौन-समस्या का गौण चित्रण किया गया है। घटनाओं में पर्याप्त रोचकता एवं कुतूहल के साथ साथ संवादों में नाटकीयता एवं चुस्ती है। परिस्थितियों एवं वस्तु-तत्त्वों का चित्रण सूक्ष्मता से किया गया है, और प्रयास इस बात का भी किया गया है कि हिन्दू-मुसलिम एकता का आदर्श भी प्रतिष्ठापित किया जा सके। फिर भी उपन्यास के सम्पूर्ण कथानक में मुसलिम संस्कृति एवं सामाजिक रीति-रस्मों का जितना सफल चित्रण किया गया है, उतना अन्य संस्कृति का नहीं। अलीगढ़ विश्वविद्यालय को भी कथानक का एक प्रमुख स्थल बनाया गया है। मुख्य नायक अनवर में प्रतिभा एवं भावुकता के साथ-साथ त्याग, सहिष्णुता एवं सच्चरित्रता भी है। वह कठिनाइयों से डट कर मोर्चा लेता है और अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाइयों के बीच भी अपने कर्त्तव्य-पथ से च्युत नहीं होता। इस प्रकार आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का चित्रण करते हुए लेखक को अपनी इस कृति में यथेष्ट सफलता मिली है। बीच-बीच में कथानक के प्रवाह में मोहक मोड़ हैं जो फिल्म के चित्रों की भांति पाठकों को पर्याप्त मनोरंजन करते हैं। जेल, कचहरी, गोलीकाण्ड, लूटपाट, मारपीट, घृणा, ईर्ष्या और कुण्ठा के दर्जनों प्रसंग वर्णित हैं, साथ ही कुछ महनीय व्यक्तियों के चित्र भी अंकित हैं। इस उपन्यास के प्रायः सभी पात्रों में पर्याप्त जीवन है जिसे लेखक की तूलिका ने यथावसर दुर्गुणों के साथ साथ उनके सद्गुणों को भी प्रकाश में रखा है। भाषा बहुत ही प्रवाह पूर्ण, रोचक तथा मुहावरों से भरी-पूरी है। संवाद की भाषा को यथावत् रहने दिया गया है।

उपन्यास का कथानक आरम्भ में तो शिथिल है, किन्तु ज्यों-ज्यों घटनाओं का ताना-बाना आरम्भ होता है, त्यों-त्यों उसमें रोचकता एवं चमत्कारों की सृष्टि भी होती गई है और अन्त में पहुँच कर लेखक के उदात्त दृष्टिकोण का भी प्रभाव पाठक के मन पर पड़ता है। ऐसी सफल कृति के लिए लेखक तथा प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

महाकवि कालिदास–शकुन्तला : (पाकेट बुक) अनुवादक—श्री वागीश्वर विद्यालंकार, प्रकाशक —हिन्द पाकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का विश्व साहित्य में ऊँचा स्थान है। उसकी विदेशों में भी पर्याप्त प्रतिष्ठा है। प्रस्तुत पुस्तक पाकेट सीरीज में सर्वसाधारण के लिए सुलभ की गई है। अनुवाद की भाषा अतीव सरल, सुबोध तथा रोचक है। संस्कृत पद्यों का अनुवाद भी पद्य में ही किया गया है, किन्तु कहीं-कहीं अनुवादक को महान् कवि के भावों की रक्षा करने में विवश हो कर दूर होना पड़ा है। यदि वे केवल गद्य में ही इसे प्रस्तुत किए होते तो अधिक सफलता प्राप्त करते। फिर भी अनुवाद पठनीय है और इस पाकेट सीरीज द्वारा हिन्दी के सभी प्रकार के पाठकों के लिए सुलभ है।

सामान्य ज्ञान : (पाकेट बुक) सम्पादक—श्री नरेश वेदी; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है, इसमें ज्ञान, विज्ञान की विविध जानकारी दी गई है। पाकेट बुक एवं सुलभ मूल्य में होने के कारण इसके द्वारा सभी प्रकार के पाठक लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक में ४ अध्याय हैं। प्रथम है, भारत दर्शन, जिसमें संविधान के साथ साथ राष्ट्र चिन्ह, राष्ट्रपति, राष्ट्रीय झण्डा, भारत सरकार के सभी अंगों के संगठन आदि पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में संयुक्त राष्ट्र संघ आदि से संबंधित जानकारियां दी गई हैं। तीसरे अध्याय में दुनिया में सभी महाद्वीपों में अवस्थित देशों का संक्षिप्त किन्तु आवश्यक जानकारियों से पूर्ण परिचय दिए गए हैं और चतुर्थ अध्याय का सुलभ विज्ञान तो सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें पृथ्वी और नक्षत्र-मण्डल के परिचय के साथ-साथ सृष्टि के विकास की कहानी का भी वर्णन है। भाषा सरल, सुबोध तथा प्रवाहपूर्ण है और इसके द्वारा हिन्दी-पाठकों को सामान्य ज्ञान विज्ञान की आवश्यक एवं यथेष्ट जानकारी मिलती है।

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूनी घाटी का सूरज : लेखक--श्री श्रीलाल शुक्ल; प्रकाशक---किताब महल, इलाहाबाद; मूल्य, तीन रुपए।

यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसका नायक एक प्रतिभाशाली, भावनापूर्ण एवं ऐसा कर्मठ व्यक्ति है जो मातृ-पितृ-विहीन होने के कारण बचपन से ही सामाजिक अन्याय एवं उत्पीड़नों का शिकार बन कर संघर्षों और कठिनाइयों के बीच से आगे बढ़ता है। वह प्रथम श्रेणी में यूनिवर्सिटी से उपाधि ले लेने के बाद भी अपनी निजी मान्यताओं तथा अन्यायों के कारण एक स्कूल में प्रधानाध्यापक हो जाता है। उसके इस जीवन में अनेक रोचक एवं उत्तेजक प्रसंग भी आते हैं, किन्तु वह अडिग रहता है। उसमें अदम्य साहस एवं अपार सहिष्णुता है। संघर्षों का वह डट कर सामना करता है किन्तु स्वयं घिस कर भी किसी अन्य का भार नहीं बनता।

समूची पुस्तक संस्मरण के रूप में लिखी गई है। इसके मोहक चित्रों को गहरी अनुभूतियों एवं संवदेनाओं से रँगने में लेखक को अनुपम सफलता मिली है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल किन्तु गुदगुदाने वाली है। मानवीय संवेदनाओं का इतना संश्लिष्ट चित्रण किसी नये लेखक की कृति में मिलेगा, मुझे तो इसका विश्वास भी नहीं होता। लेखक में हमारे देश के बहुसंख्यक स्वल्प साधन-सम्पन्न समाज के साथ साथ-मध्य वित्त एवं उन्नत समृद्ध समाज के जीवन का गहरा अनुभव मालूम पड़ता है। क्योंकि उसके वर्णनों एवं चित्रों में जो सजीवता एवं भाव-प्रवलता मिलती है, वह हिन्दी के बड़े से बड़े लेखकों में भी सुलभ नहीं है। कालेज जीवन के साथ-साथ गृहस्थ जीवन की झांकि ों में भी उसे उतनी ही सफलता मिली है। मुझे विश्वास है कि यदि लेखक इसी प्रकार आगे बढ़ता रहे तो वह एक दिन हिन्दी कथा-साहित्य में अपनी अनवद्य कृतियों के कारण सम्माननीय पद प्राप्त कर सकता है। मैं उसे उसकी इस अनवद्य एवं रोचक कृति के लिए बधाइयाँ देता हूँ।

मेघदूत : कालिदास (पाकेट बुक)--अनुवादक--डा० भगवतशरण उपाध्याय; प्रकाशक--हिन्द पाकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

'मेघदूत' महाकवि कालिदास की विश्वविख्यात रचना है। इस पाकेट सीरीज में उसका सफल अनुवाद हिन्दी के सभी कोटि के पाठकों के लिए सुलभ किया गया है। अनुवादक डा० उपाध्याय संस्कृत तथा हिन्दी के विशिष्ट विद्वान् एवं सुलेखक हैं। फलतः उनके अनुवाद में महाकवि के भावों की यथेष्ट रक्षा हुई है। अनुवाद गद्य-काव्य में प्रस्तुत किया गया है, जिसका भावार्थ अति स्पष्ट है। पदों के नीचे सन्दर्भ पर प्रकाश डालने वाले सूक्ष्म रेखाचित्र भी दिए गए हैं। कुल मिला कर पुस्तक की साज-सज्जा एवं अन्तरंग बहिरंग सब कुछ आकर्षक एवं उपादेय है। आशा है, हिन्दी जगत में उसका यथेष्ट समादर होगा।

सुभाषित : संकलनकर्ता--श्री आनन्द कुमार; प्रकाशक--हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; मूल्य, एक रुपया।

इस पुस्तक में संस्कृत साहित्य के विविध क्षेत्रों से मानव-जीवन के विविध अंगों पर प्रकाश एवं प्रेरणा बिखेरने वाली सूक्तियों का संकलन एवं सम्पादन किया गया है। ये सूक्तियाँ प्रायः मूर्धन्य कवियों, मनीषियों एवं पुराणकर्त्ताओं की हैं, और इनमें जीवन की व्यापक एवं चिरकालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूतियों को वाणी दी गई है। सूक्तियों के नीचे उनका सुन्दर अनुवाद भी दिया गया है जिससे उनका आनन्द सर्वसामान्य पाठकों के लिए भी सुलभ है। पुस्तक संग्रहणीय है और आशा है, हिन्दी के विद्यार्थी, प्राध्यापक एवं प्रेमी पाठक सभी इसे पसन्द करेंगे।

एक सवाल : लेखक—अमृता प्रीतम; प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

अमृता प्रीतम पंजाबी साहित्य की अत्यधिक लोकप्रिय लेखिका एवं गायिका हैं। उनकी वाणी एवं लेखनी का जादू हिन्दी पाठकों को भी उनकी अनेक अनूदित कृतियों द्वारा मिल चुका है। पंजाब के जन-जीवन में उनकी गहरी पैठ तो है ही, स्त्री और सफल लेखिका होने के नाते उनमें संवेदना, सहानुभूति एवं कोमलता का सुन्दर समावेश है। उनके चित्रित सन्दर्भों एवं पात्रों में एक अजीब आकर्षण रहता है। उनका यह एक सामाजिक उपन्यास है, जिसको पर्याप्त लोकप्रियता मिल चुकी है। इसके नायक नायिका जगदीप और रेखा के चरित्र को चित्रित करने में लेखिका को जितनी सफलता मिली है, उतनी ही अन्यान्य पात्रों के चित्रण एवं कथानक को अन्त तक कुतूहल एवं रोचकता से भरा-पूरा बनाने में भी सफलता मिली है। संवादों में इतनी चुस्ती और नाटकीयता है कि व्यक्तित्व की आभा एक-दो वाक्यों के अनन्तर ही प्रस्फुटित हो उठती है। पुस्तक अतीव रोचक शैली और भाषा में है और इससे हिन्दी पाठकों को एक मोहक वातावरण और समाज मिलता है, जिसमें अन्त तक वह डूबा रहता है।

घरेलू बुनाई : लेखक—लीला प्रकाश; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य एक रुपया।

पुस्तक में घरेलू बुनाई का सरल और सुबोध वर्णन किया गया है। इसमें बुनाई के प्राथमिक ज्ञान से लेकर, शिशुओं, बालक-बालिकाओं, स्त्रियों, पुरुषों के विविध वस्त्रों एवं आच्छादनों की बुनाई के नमूने प्रस्तुत किए गए हैं और सब के यथावसर चित्र भी दिए गए हैं। पुस्तक की शैली इतनी रोचक और बोधगम्य है कि इसके सहारे स्त्रियों को सभी प्रकार की बुनाई की यथेष्ट जानकारी दी जा सकती है। पुस्तक स्त्रियों के लिए तथा बालिकाओं के लिए बड़े काम की है।

आरती : मूल लेखक—श्री ताराशंकर वंद्योपाध्याय; अनुवादक—श्री हंसकुमार तिवारी; प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

श्री ताराशंकर वंद्योपाध्याय बंगला साहित्य के सुप्रसिद्ध कथा-शिल्पी हैं। बंगला उपन्यासकारों में उनको शरत्चन्द्र के बाद सर्वाधिक लोकप्रियता मिली है। यह उनका एक सामाजिक उपन्यास है, जो हिन्दी में अनूदित होकर पाकेट बुक सीरीज में सर्व सामान्य हिन्दी पाठकों के लिए सुलभ किया गया है। उपन्यास के नायक-नायिका प्रवीर और आरती एक कालेज के छात्र थे। उनका परिचय धीरे-धीरे प्रगाढ़ होकर प्रेम के रूप में परिणत हो गया। किन्तु दोनों प्रायः मौन रहते थे। इसी बीच प्रवीर मोर्चे पर जाने लगता है और वह अपने मौन को तोड़ना चाहता है। वह प्रेम के आदान-प्रदान की मधुर स्मृति से अपने को सदैव के लिए कृतार्थ करना चाहता था किन्तु उसे सफलता नहीं मिलती और आरती भी उसके स्वागत के लिए अन्त तक प्रतीक्षा में बैठी रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। बीच-बीच में अनेक नाटकीय मोड़ों से कथा-प्रवाह में इतनी रोचकता और आकर्षण है कि एक ही बैठक में समाप्त किए बिना उठना कठिन हो जाता है। पुस्तक अतीव रोचक और पाठक के मन पर सुप्रभाव डालने वाली है।

दशकुमार चरित (पाकेट बुक) : अनुवादक—श्री लालधर त्रिपाठी, प्रवासी; प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; मूल्य, एक रुपया।

संस्कृत साहित्य में महाकवि दण्डी के दशकुमार चरित की अपनी विशेषता है। इसमें विचित्र कथाएँ दी गई हैं, जिनमें राजनीति एवं कूटनीति के छल-छद्मों के साथ-साथ समाज की विविध अच्छाइयों एवं बुराइयों को भी चित्रित किया गया है। किन्तु दशकुमार चरित मूलतः एक गद्य-काव्य का ग्रन्थ है। इसका काव्य-वैशिष्ट्य ऐसा है कि संस्कृत के साहित्य-मर्मज्ञों के एक दल ने इसके रचयिता को सर्वश्रेष्ठ कवि होने का दावा किया है। इसके लम्बे-लम्बे विविध अलंकारों एवं काव्य-गुणों से गुंफित वाक्यों को पढ़ते समय संस्कृत के काव्य-रसिकों का मन-मयूर नाच उठता है। इस पाकेट सीरीज में प्रवासी जी ने बड़ी सफलता से इस उच्च कोटि के महान् ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है। उन्होंने बड़ी सतर्कता से मूल भावों की भरसक रक्षा की है। आशा है, इस पुस्तक से हिन्दी के पाठकों का विशेष मनोरंजन होगा।

प्रभावशाली व्यक्तित्व (पाकेट बुक) : मूल लेखक—स्वेट मार्डेन; अनुवादिका—श्री मोहिनी राव; प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स, प्राइवेट लि०, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक पाकेट बुक सीरीज में महान् विचारक स्वेट मार्डेन की सुप्रसिद्ध पुस्तक "पावर आफ पर्सनैलिटी" का हिन्दी रूपान्तर है। इसमें नवयुवकों के लिए बड़े काम की बातें बताई गई हैं। प्रभावशाली बनने और जीवन में सफलता प्राप्त करने के साधनों की बड़े वैज्ञानिक एवं रोचक ढंग से चर्चा की गई है। आज के आर्थिक युग में मनुष्य की योग्यता एवं कार्य क्षमता की परख में उसके व्यक्तित्व का स्थान प्रमुख माना गया है। यदि उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है तो उसकी छोटी-मोटी कमजोरियाँ व्यक्तित्व की आड़ में चिरकाल तक दबी रह जाती हैं और वह अपने व्यावहारिक जीवन में आसानी से सफलता प्राप्त कर सकता है। इस पुस्तक में व्यक्तित्व के विकास के साथ साथ चरित्र एवं शिष्टाचार के महत्व पर भी बल दिया गया है और व्यावसायिक जीवन में आ सकने वाली सभी प्रकार की कठिनाइयों एवं समस्याओं पर विजय प्राप्त करने का मार्ग-प्रदर्शन भी किया गया है। पुस्तक अपने उद्देश्यों में पूर्णतया सफल हुई है, और उसे पढ़ कर नवयुवकों एवं नवयुवतियों को अपने भावी जीवन की सफलता के सोपान को प्राप्त करने में प्रेरणा मिलेगी। भाषा स्वच्छ तथा सुगम है, शैली रोचक एवं चर्चाएं सोदाहरण हैं। पुस्तक महत्वपूर्ण है।

सरकार तुम्हारी आँखों में : (पाकेट बुक) लेखक—श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का हिन्दी के कथा-साहित्यकारों में अग्रणी स्थान है। अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैली एवं भाषा के चुटीलेपन के कारण वे अतीव लोकप्रिय साहित्यकार हैं। उनका यह उपन्यास हिन्दी पाठकों के बीच सुपरिचित रहा है। पाकेट बुक सीरीज में इसके प्रकाशन की बड़ी उपयोगिता है। इस उपन्यास का कथानक स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व की कुछ देसी रियासतों के घृणित जीवन का पर्दाफाश करते हुए चलता है। धरमपुर के सूर्यवंशी महाराज मदनसिंह अपनी गलत शिक्षा-दीक्षा, वातावरण एवं दूषित मनोवृत्ति वाले सलाहकारों तथा वजीरों के प्रभाव में आकर भोग-विलास के पंक में आकण्ठ मग्न हो जाते हैं और धीरे-धीरे सर्वनाश के पथ पर अग्रसर हो जाते हैं। सामन्ती वर्ग के जन-जीवन का जैसा सूक्ष्म चित्रण उग्र जी ने अपने इस उपन्यास में किया है, इसे वही कर भी सकते थे। उपन्यास अतीव रोचक तथा मनोरंजक सन्दर्भों से भरा पूरा है। इसे आरम्भ कर के समाप्त किए बिना उठना कठिन है। भाषा चहकती हुई है और उसमें मुहावरों की चुस्ती तथा पर्याप्त प्रवाह है। चुटीलेपन के कारण उग्र की शैली की प्रशंसा तो सभी करते हैं। उपन्यास में उनकी कला का यथेष्ट विकास देखने को मिलता है।

राजसी: लेखक—श्री देवेशदास आई० सी० एस०; प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुंड रोड, काशी; मूल्य, ढाई रुपए।

श्री देवेशदास अपनी अनेक उत्कृष्ट रचनाओं द्वारा हिन्दी पाठकों के लिए सुपरिचित हो चुके हैं। उनकी यह पुस्तक राजस्थान के प्राचीन ऐतिहासिक जीवन पर दूसरी उत्तम कृति है। इसमें राजपूती शौर्य, वीरता एवं प्रेम-प्रसंगों से पूर्ण कथाओं का आकलन मोहक शैली में किया गया है। इसमें राजस्थान के प्राचीन शासकों के राजदबारों की अनेक गुप्त-प्रकट कथाएँ उत्कृष्ट शैली में अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं। महाराज पृथ्वीराज और संयुक्ता, महावत खाँ, नूरजहाँ, बापा रावल तथा उनकी ग्राम्य सखियाँ, रूपमती और बाजबहादुर, होली पर्व में किशोरियां, मरुभूमि में वर्षा मंगल आदि प्रसंगों तथा प्राचीन कथाओं को सुकुमार भावनाओं से भरी भाषा एवं शैली में प्रस्तुत किया गया है। प्रसंगों में ऐसी माधुरी भर दी गई है कि अनेक अवसरों पर पाठकों का हृदय रसार्द्र हुए बिना नहीं रह सकता। इसमें प्रेम-प्रसंग है तो साथ ही शौर्य और वीरता की झांकियां भी हैं। चरित्रों का निर्माण-सौष्ठव देखते ही बनता है। कथा प्रसंग के बीच-बीच में काव्य के मधुर-मोहक उद्धरणों से एवं व्यक्तिगत सम्पर्कों से रोचकता में विशेष वृद्धि हुई है और पाठक को यह अनुभव होता है कि वह किसी विशिष्ट वातावरण में है और बहुत कुछ नया और अपूर्व देख रहा है। ऐसी उत्तम कृति के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं।

अछूता प्यार: मूल लेखक—मामा वरेरकर; अनुवादक—श्री रामचन्द्र रघुनाथ सरवटे; प्रकाशक—राजपाल एण्ड संन्स, दिल्ली; मूल्य, चार रुपए।

मामा वरेरकर का मराठी के कथा-साहित्यकारों में ऊंचा स्थान है। वे एक प्रख्यात नाटककार भी हैं। उनका यह सामाजिक उपन्यास जाति-पांति के भेदों एवं बन्धनों पर कठोर आघात करता है और पाठकों के हृदय और मस्तिष्क पर इन बुराइयों से ऊपर उठने की प्रेरणा और शक्ति प्रदान करता है। कथा का आरम्भ अतीव रोचक ढंग से निजी जीवन से आरम्भ होता है और अन्त में एक पाण्डुलिपि के रूप में समस्त कथानक को ऐसे ढंग से सँजोकर प्रस्तुत किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि पाठक को समाप्त किए बिना चैन नहीं मिलता। उपन्यास का वर्ण्य-स्थल महाराष्ट्र का जन-जीवन है और वहीं के रीति-रस्मों एवं व्यवहारों की उसमें चर्चा भी है, किन्तु सामान्य प्रसंगों का चित्रण विश्वजनीन है। उत्कण्ठा और कुतूहल की शान्ति कथानक के अन्त तक बनी रहती है। इसमें जिन दो प्रेमियों के सच्चे प्रणय का मोहक चित्रण किया गया है, वह अपने ढंग का अनूठा और असाधारण है। वर्णन इतने सजीव और मार्मिक हैं। कई प्रसंग इतने कारुणिक तथा आकर्षक हैं कि पाठक लेखक की कला पर विमुग्ध हो उठता है। पात्रों की आत्म स्वीकृति तथा प्रेमियों के विरह-वर्णन बड़े ही प्रभावकारी एवं जीवन्त हैं।

यह अवश्य कहा जा सकता है कि उपन्यास के कथानक में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा के लिए जो नाटक किया गया है, उससे पाठकों का एक संकुचित वर्ग ऐसा भी हो सकता है, जो सहमत नहीं हो सकता। वह वर्ग उपन्यास की नायिका के ब्राह्मण-पुत्री और नायक के दर्जी होने की बात को सुन कर पारस्परिक प्रणय-सूत्र में बंधने की स्वीकृति मनोहर पन्त की भांति नहीं दे सकता। वह तो उस नर्मदा बाई के विचारों का प्रतिनिधि है जो कहती है—'मुए' यह पहले ही क्यों नहीं बताया। अब कहता है कि दर्जी हूँ। दर्जियों में कैसे घुस पड़े ये ब्राह्मणों के उपनाम। आदि। किन्तु लेखक को इस वर्ग की चिन्ता नहीं है, उसकी नायिका में अदम्य साहस है। वह मनोहर पंत के विचारों को विश्वजनीन बनाने के लिए ही तो अपनी लेखनी चलाता है। उपन्यास में बड़ा रस है। बड़ी रोचकता है। हिन्दी पाठक उससे पर्याप्त प्रीति करेंगे।

चिड़ियों के देश में: लेखक—श्री कृष्णनारायण लाल एम० ए०; प्रकाशक—अग्रवाल प्रेस, प्रयाग; मूल्य, डेढ़ रुपया।

इस पुस्तक में भारत के प्रमुख पक्षियों का परिचय सरल एवं सुबोध भाषा में दिया गया है। परिचय में समस्त ज्ञातव्य बातें भी दे दी गई हैं। कुल ४४ पक्षियों का परिचय दिया गया है। भाषा बड़ी सरल, सरस तथा प्रवाहपूर्ण है। बीच बीच में चित्र भी दे दिए गए हैं जिससे उपयोगिता बढ़ गई है। पुस्तक बच्चों के साथ साथ वयस्कों के लिए भी लाभदायक है।

अक्षर गीत: प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य, दो रुपया।

इस पुस्तक में नागरी वर्ण माला के सभी अक्षरों के गीत दिए गए हैं। साथ ही बहुरंगी चित्र भी हैं। गीत की भाषा सरस, सरल तथा लुभावनी है और अक्षरों के संबंधित चित्र भी बहुलांश में उपयोगी हैं। किन्तु कुछ अक्षरों के गीत सुकुमारमति शिशुओं तथा बच्चों के लिए क्लिष्ट हैं तथा कुछ शब्द अनावश्यक भी हैं। जैसे—"सुन लो बच्चो मेरी सीख, खा लो गन्ना चूसो ईख।" गन्ना कोई खाने की वस्तु नहीं है। इसी प्रकार—'ओ' अक्षर के लिए ओले, 'भ' के लिए भक्त, तथा 'य' के लिए यती का गीत भी बच्चों की समझ से बाहर की बात है। संख्या के गीत भी कुछ क्लिष्ट हैं। आशा है, अगले संस्करणों में इस पर ध्यान दिया जायगा। पुस्तक का मूल्य बच्चों की दृष्टि से कुछ अधिक है।

आओ मिलकर गाएँ: लेखक—श्री धर्मपाल शास्त्री; प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली; मूल्य, ७५ नए पैसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बालकों के लिए उपयोगी पुस्तक है। इसमें बच्चों के लिए सुन्दर गीत दिए गए हैं, जो सरल, सुबोध तथा उच्च भावनाओं से भरे हुए हैं। साथ ही गीत में जीवन में विचारणीय एवं ध्यान देने योग्य बातों पर भी बच्चों की रुझान की गई है। गीतों के ऊपर सुन्दर रेखाचित्र हैं जो गीत की भावनाओं को प्रकट करते हैं। भाषा अत्यन्त सरल तथा मुहावरों और सानुप्रास से पूर्ण होने के कारण बच्चों के लिए सहज ग्राह्य है। इन गीतों को कण्ठस्थ करने से बालकों को बड़ा लाभ मिलेगा।

जानवरों का जगत : लेखक—श्री सुरेश सिंह; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली; मूल्य, दो रुपया।

श्री सुरेश सिंह पशु-पक्षी जगत के माने हुए विशेषज्ञ लेखक हैं। उनकी इस बालोपयोगी पुस्तक में धरती पर चलने वाले जानवरों, आकाश में उड़ने वाले पक्षियों तथा अन्यान्य जीव-जन्तुओं की रोचक चर्चा की गई है। भाषा बड़ी सरल तथा प्रवाहपूर्ण है, जिससे सभी वर्ग के पाठकों का मनोरंजन होने के साथ साथ इन जीव-जन्तुओं के जीवन से दिलचस्पी भी बढ़ सकती है। पुस्तक में यथावसर चित्र भी दिए गए हैं, जिससे उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

मनुष्य का बचपन : लेखक—श्री देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

इस बालकोपयोगी पुस्तक में पृथ्वी के आदिमकालीन विकासक्रम की कहानी रोचक शैली में दी गई है। यह पृथ्वी कब और कैसे बनी, उस पर जीव-जन्तु कब और कैसे आए, इन जीवों से बाद में चल कर मानव का विकास कैसे हुआ और आदिम मानव समाज को आज की सभ्यता एवं संस्कृति तक पहुँचने में कितनी सीढ़ियां और पगडंडियां पार करनी पड़ीं। निश्चय ही यह सारा विषय अत्यन्त रोचक एवं कुतूहलवर्द्धक है और सुकुमार-मति बालकों के लिए उसकी जानकारी अतीव उपयोगी है। विद्वान् लेखक ने बड़े सजीव ढंग से रोचक शैली में इसे प्रस्तुत किया है और बीच-बीच में चित्रों के कारण पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। भाषा सरल तथा बोध-गम्य है। आशा है, इस उपयोगी पुस्तक का उचित सम्मान होगा।

भारत के प्रमुख साँप : लेखक—श्री विराज; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; मूल्य, दो रुपया।

साँप के प्रति मानव की जिज्ञासा एवं कुतूहलवृत्ति स्वाभाविक है। बच्चे, बूढ़े और जवान भी सर्पों के बारे में अधिक से अधिक जानना सुनना चाहते हैं। इस पुस्तक में भारत में और भारत के बाहर पाए जाने वाले सभी प्रकार के मुख्य सर्पों का सचित्र वर्णन किया गया है। साथ ही उनके शरीर की रचना, रहन-सहन, उनके काटने पर आवश्यक उपचार एवं सर्प विषयक किंवदन्तियां भी दे दी गई हैं। भाषा बड़ी सरल तथा प्रवाहपूर्ण है और इसे पढ़ कर सामान्य पाठक भी सर्पों तथा सर्पों से बचने के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेता है। पुस्तक अतीव उपयोगी तथा रोचक है। विश्वास है, उसे सभी कोटि के पाठक पसन्द करेंगे।

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि पाठक को समाप्त किए बिना चैन नहीं मिलता। उपन्यास का वर्ण्य-स्थल महाराष्ट्र का जन-जीवन है और वहीं के रीति-रस्मों एवं व्यवहारों की उसमें चर्चा भी है, किन्तु सामान्य प्रसंगों का चित्रण विश्वजनीन है। उत्कण्ठा और कुतूहल की शान्ति कथानक के अन्त तक बनी रहती है। इसमें जिन दो प्रेमियों के सच्चे प्रणय का मोहक चित्रण किया गया है, वह अपने ढंग का अनूठा और असाधारण है। वर्णन इतने सजीव और मार्मिक हैं। कई प्रसंग इतने कारुणिक तथा आकर्षक हैं कि पाठक लेखक की कला पर विमुग्ध हो उठता है। पात्रों की आत्म स्वीकृति तथा प्रेमियों के विरह-वर्णन बड़े ही प्रभावकारी एवं जीवन्त हैं।

यह अवश्य कहा जा सकता है कि उपन्यास के कथानक में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा के लिए जो नाटक किया गया है, उससे पाठकों का एक संकुचित वर्ग ऐसा भी हो सकता है, जो सहमत नहीं हो सकता। वह वर्ग उपन्यास की नायिका के ब्राह्मण-पुत्री और नायक के दर्जी होने की बात को सुन कर पारस्परिक प्रणय-सूत्र में बंधने की स्वीकृति मनोहर पन्त की भांति नहीं दे सकता। वह तो उस नर्मदा बाई के विचारों का प्रतिनिधि है जो कहती है—'मुए' यह पहले ही क्यों नहीं बताया। अब कहता है कि दर्जी हूँ। दर्जियों में कैसे घुस पड़े ये ब्राह्मणों के उपनाम। आदि। किन्तु लेखक को इस वर्ग की चिन्ता नहीं है, उसकी नायिका में अदम्य साहस है। वह मनोहर पंत के विचारों को विश्वजनीन बनाने के लिए ही तो अपनी लेखनी चलाता है। उपन्यास में बड़ा रस है। बड़ी रोचकता है। हिन्दी पाठक उससे पर्याप्त प्रीति करेंगे।

चिड़ियों के देश में: लेखक—श्री कृष्णनारायण लाल एम० ए०; प्रकाशक—अग्रवाल प्रेस, प्रयाग; मूल्य, डेढ़ रुपया।

इस पुस्तक में भारत के प्रमुख पक्षियों का परिचय सरल एवं सुबोध भाषा में दिया गया है। परिचय में समस्त ज्ञातव्य बातें भी दे दी गई हैं। कुल ४४ पक्षियों का परिचय दिया गया है। भाषा बड़ी सरल, सरस तथा प्रवाहपूर्ण है। बीच बीच में चित्र भी दे दिए गए हैं जिससे उपयोगिता बढ़ गई है। पुस्तक बच्चों के साथ साथ वयस्कों के लिए भी लाभदायक है।

अक्षर गीत: प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य, दो रुपया।

इस पुस्तक में नागरी वर्ण माला के सभी अक्षरों के गीत दिए गए हैं। साथ ही बहुरंगी चित्र भी हैं। गीत की भाषा सरस, सरल तथा लुभावनी है और अक्षरों के संबंधित चित्र भी बहुलांश में उपयोगी हैं। किन्तु कुछ अक्षरों के गीत सुकुमारमति शिशुओं तथा बच्चों के लिए क्लिष्ट हैं तथा कुछ शब्द अनावश्यक भी हैं। जैसे—"सुन लो बच्चो मेरी सीख, खा लो गन्ना चूसो ईख।" गन्ना कोई खाने की वस्तु नहीं है। इसी प्रकार—'ओ' अक्षर के लिए ओले, 'भ' के लिए भक्त, तथा 'य' के लिए यती का गीत भी बच्चों की समझ से बाहर की बात है। संख्या के गीत भी कुछ क्लिष्ट हैं। आशा है, अगले संस्करणों में इस पर ध्यान दिया जायगा। पुस्तक का मूल्य बच्चों की दृष्टि से कुछ अधिक है।

आओ मिलकर गाएँ: लेखक—श्री धर्मपाल शास्त्री; प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली; मूल्य, ७५ नए पैसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बालकों के लिए उपयोगी पुस्तक है। इसमें बच्चों के लिए सुन्दर गीत दिए गए हैं, जो सरल, सुबोध तथा उच्च भावनाओं से भरे हुए हैं। साथ ही गीत में जीवन में विचारणीय एवं ध्यान देने योग्य बातों पर भी बच्चों की रुझान की गई है। गीतों के ऊपर सुन्दर रेखाचित्र हैं जो गीत की भावनाओं को प्रकट करते हैं। भाषा अत्यन्त सरल तथा मुहावरों और सानुप्रास से पूर्ण होने के कारण बच्चों के लिए सहज ग्राह्य है। इन गीतों को कण्ठस्थ करने से बालकों को बड़ा लाभ मिलेगा।

जानवरों का जगत : लेखक—श्री सुरेश सिंह; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली; मूल्य, दो रुपया।

श्री सुरेश सिंह पशु-पक्षी जगत के माने हुए विशेषज्ञ लेखक हैं। उनकी इस बालोपयोगी पुस्तक में धरती पर चलने वाले जानवरों, आकाश में उड़ने वाले पक्षियों तथा अन्यान्य जीव-जन्तुओं की रोचक चर्चा की गई है। भाषा बड़ी सरल तथा प्रवाहपूर्ण है, जिससे सभी वर्ग के पाठकों का मनोरंजन होने के साथ साथ इन जीव-जन्तुओं के जीवन से दिलचस्पी भी बढ़ सकती है। पुस्तक में यथावसर चित्र भी दिए गए हैं, जिससे उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

मनुष्य का बचपन : लेखक—श्री देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

इस बालकोपयोगी पुस्तक में पृथ्वी के आदिमकालीन विकासक्रम की कहानी रोचक शैली में दी गई है। यह पृथ्वी कब और कैसे बनी, उस पर जीव-जन्तु कब और कैसे आए, इन जीवों से बाद में चल कर मानव का विकास कैसे हुआ और आदिम मानव समाज को आज की सभ्यता एवं संस्कृति तक पहुँचने में कितनी सीढ़ियां और पगडंडियां पार करनी पड़ीं। निश्चय ही यह सारा विषय अत्यन्त रोचक एवं कुतूहलवर्द्धक है और सुकुमार-मति बालकों के लिए उसकी जानकारी अतीव उपयोगी है। विद्वान् लेखक ने बड़े सजीव ढंग से रोचक शैली में इसे प्रस्तुत किया है और बीच-बीच में चित्रों के कारण पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। भाषा सरल तथा बोध-गम्य है। आशा है, इस उपयोगी पुस्तक का उचित सम्मान होगा।

भारत के प्रमुख साँप : लेखक—श्री विराज; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; मूल्य, दो रुपया।

साँप के प्रति मानव की जिज्ञासा एवं कुतूहलवृत्ति स्वाभाविक है। बच्चे, बूढ़े और जवान भी सर्पों के बारे में अधिक से अधिक जानना सुनना चाहते हैं। इस पुस्तक में भारत में और भारत के बाहर पाए जाने वाले सभी प्रकार के मुख्य सर्पों का सचित्र वर्णन किया गया है। साथ ही उनके शरीर की रचना, रहन-सहन, उनके काटने पर आवश्यक उपचार एवं सर्प विषयक किंवदन्तियां भी दे दी गई हैं। भाषा बड़ी सरल तथा प्रवाहपूर्ण है और इसे पढ़ कर सामान्य पाठक भी सर्पों तथा सर्पों से बचने के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेता है। पुस्तक अतीव उपयोगी तथा रोचक है। विश्वास है, उसे सभी कोटि के पाठक पसन्द करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा जी की लघु कथाएँ : मूल लेखक––श्री राजगोपालाचार्य; अनुवादिका––श्रीमती लक्ष्मी देवदास गान्धी; प्रकाशक––सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

राजा जी राजनीति के साथ साहित्य के भी मर्मी विद्वान् तथा सिद्धहस्त लेखक हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनकी २६ लघु कथाओं का संग्रह है। ये लघु कथाएँ अतीव रोचक एवं रसपूर्ण ही नहीं हैं, वरन् इनमें से प्रत्येक में कोई न कोई उपयोगी जीवन-प्रेरणा दी गई है। शैली इतनी मोहक तथा चुटीली है कि कहानियों में डूब जाना स्वाभाविक है। हिन्दी कथा-साहित्य में यह एक अनुपम देन है, जो विद्वान् लेखक की सुपुत्री की कृपा से हिन्दी-पाठकों के लिए सुलभ हुई है। कथाएँ इतनी जीवन्त और चिर प्रभावकारी हैं कि उन्हें पढ़ कर वयस्क और वृद्ध जन भी बहुत कुछ सीख सकते हैं, जब कि नवयुवकों तथा किशोरों के लिए तो उनका सर्वश्रेष्ठ पाथेय है। ऐसी उपयोगी पुस्तक के प्रकाशन से हिन्दी जगत की श्री वृद्धि हुई है।

––रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

मोती : लेखक––स्वर्गीय आचार्य चतुरसेन शास्त्री; प्रकाशक––राजपाल एण्ड संस, दिल्ली; मूल्य, दो रुपया।

उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन का यह नवीनतम उपन्यास है। सदा की भाँति यह भी अर्द्ध-ऐतिहासिक उपन्यास, भारत में अंग्रेजी राज्य के समय, सन १९३०-३१ में हुई सशस्त्र क्रांति की एक घटना पर आधारित है। वायसराय की रेल पर बम फेंके जाने की घटना सभी भारतीय जानते हैं। उसी घटना को आधार-केन्द्र बना कर एक सच्चे, देशभक्त नवजवान मोती का चरित्र-चित्रण इस कथा में किया गया है, जो हमारी भावनाओं को जगाने में समर्थ है। परन्तु जो पाठक स्वर्गीय शास्त्री जी की 'सोना और खून' तथा 'गोली' या 'वैशाली की नगर वधू' पढ़ चुके हैं उन्हें किंचित निराशा ही होगी, इस उपन्यास से। यों यह लघु-उपन्यास घटना प्रधान है और घटनाओं की अधिकता के कारण पाठक कम से कम ऊबेगा तो नहीं ही। इस उपन्यास के संबंध में एक बात निश्चय ही ध्यान देने की है कि पुस्तक के प्रारम्भ में स्वर्गीय आचार्य जी के संबंधी श्री चन्द्रसेन जी का एक वक्तव्य है कि यह उपन्यास १९२९ में चतुरसेन जी ने लिखा था और इसकी पाण्डुलिपि अलमारी में दबी पड़ी रही। पेंसिल से लिखी और पिनों में लगी तथा बिना पेज नंबर की इस पाण्डुलिपि की खोज आचार्य जी की मृत्यु के बाद ही हो सकी और अब छपी। हम इस विषय में कोई शंका प्रकट तो नहीं करते परन्तु इतना जरूर कहेंगे कि आश्चर्य है कि अपने जीवन-काल में चतुरसेन जी ने इसे क्यों नहीं छपाया ? वास्तविकता यह है कि आचार्य जी की विख्यात कृतियों के मुकाबले यह कृति बहुत कमजोर है और इसका अब प्रकाशन आचार्य जी के नाम को शोभा भी नहीं देता। यों तो हिन्दी का पाठक आचार्य चतुरसेन जी का इतना ऋणी है कि उनके नाम से छपी किसी भी पुस्तक को वह अपने सिर-माथे लगा कर ही रखेगा।

मोतीलाल नेहरू-एक जीवनी ; लेखक––सेठ गोविन्ददास; प्रकाशक––मध्यप्रदेश मोतीलाल नेहरू जन्म शताब्दि समारोह समिति, भोपाल; मूल्य, २.५० न० पै०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के मूर्धन्य नाटककार सेठ गोविन्ददास ने पं० मोतीलाल नेहरू की जन्म शताब्दी के अवसर पर यह एक प्रमाणिक जीवनी लिखी है जिसे मध्यप्रदेश मोतीलाल नेहरू जन्म शताब्दी समारोह भोपाल ने प्रकाशित की है। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी ने भूमिका लिखी है। समारोह समिति धन्यवाद की भागी है क्योंकि स्वर्गीय पं० मोतीलाल की जन्म शताब्दी तो सारे देश ने मनाई पर किसी ने उन पर साहित्य प्रकाशित नहीं किया और इस समिति ने सेठ गोविन्ददास जैसे उच्चकोटि के लेखक से उनकी जीवनी लिखवा कर जनता को लाभान्वित किया। प्रस्तुत जीवन चरित में पाठकों को स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू के प्रारम्भिक जीवन, वंश परंपरा, उनकी वकालत, उनकी राष्ट्रीय सेवाएं और इसके बीच पं० जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व के क्रमिक विकास की पूरी झाँकी देखने को मिलेगी। पुस्तक के अंत में स्व० पं० मोतीलालजी और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के कुछ आपसी पत्र भी दिये गए हैं जिनसे तत्कालीन भारत की राजनीति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और इन पत्रों से राष्ट्रसेवक मोतीलाल नेहरू बनने के कुछ व्यक्तिगत अनुभवों का भी पाठक रसास्वादन करेंगे। पुस्तक के प्रकाशन के लिए लेखक व प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

अमृत और विष ; लेखक—श्री उदयशंकर भट्ट; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली; मूल्य, दो रुपया।

यह पुस्तक प्रसिद्ध कवि-नाटककार श्री उदयशंकर भट्ट की फुटकर काव्य-रचनाओं का प्रसिद्ध संग्रह है जिसका यह तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है। पुस्तक की लोकप्रियता का यही जीवित प्रमाण है। कविताएँ काफी पुरानी हैं। दूसरे महायुद्ध के बादलों से विश्व जब घटाटोप था, उसी काल में इसकी रचना हुई है, अतः अधिकांश रचनाओं में युद्ध की विभीषिका का काफी प्रभाव प्रगट होता है। कविताओं की एक विशेषता और है कि यह सभी मुक्तक वृत्त में हैं फिर भी मुक्तक वृत्त भी गतिमय लय से सराबोर हैं।

किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई; लेखक—श्री शैलेश मटियानी; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली; मूल्य, दो रुपया पचास नये पैसे।

'हौलदार' के प्रसिद्ध कथाकार शैलेश मटियानी का यह नवीनतम उपन्यास है। श्री शैलेश की लेखनी की एक विशेषता रही है कि वे सदा ही देश, काल, पात्र की एक सीमा बना कर बड़े यतन से अपने अनोखे चरित्रों को अनोखे व नए ढंग से पेश कर देते हैं जो सदा नवीन लगता है। इस उपन्यास में भी अपने देश, काल, पात्र के फारमूला में लेखक ने बंबई शहर, आधुनिक युग और वहां के चरित्रों को पकड़ा है। बंबई शहर, उसकी विशालता और विचित्रता और वहां के छबके पंजे के बीच नर्मदा बेन नामक एक सेठानी और गंगूबाई नामक एक नौकरानी का अजीब व दिलचस्प किस्सा, प्रेम के झूले पर झूलता हुआ पाठकों को भी उसी वातावरण में डुबो देता है। बंबई को देखें, गंगूबाई और नर्मदा बेन को देखें। दो नारी चरित्रों का दो अनूठा नायाब नमूना! शैलेश जी की लेखनी एक नए रंग में सामने आई है। उपन्यास की नई शैली और रोचकता देखने योग्य है।

चैत्र-ज्येष्ठ, १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोंसला ; लेखक—श्री किशोर साहू; प्रकाशक—हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा० लि०, दिल्ली-३२; मूल्य, एक रुपया।

यह कहानी-संग्रह प्रसिद्ध सिने-अभिनेता और साहित्य-प्रेमी श्री किशोर साहू की ग्यारह रोमांटिक कहानियों का संग्रह है। यह संग्रह लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व 'टेसू के फूल' नाम से प्रकाशित हुआ था और पाठकों में प्रसिद्ध भी हुआ था। अब संभवतः पाठकों को सस्ते मूल्य में प्राप्त हो सके इसलिए पाकेट बुक्स की सीरीज में नाम बदल कर ज्यों का त्यों छाप दिया गया है। परन्तु अनुरोध है कि पुरानी पुस्तकों के नए संस्करण चाहे वे जिस भी रूप में हों, अगर नाम न बदले जाएँ तो अच्छा है क्योंकि इससे पाठकों को भ्रम में पड़ने का खतरा नहीं रहता।

सत्यानाशी के फूल ; लेखक—श्री सूर्यकुमार जोशी; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

'सत्यानाशी के फूल' श्री जोशी का नया यथार्थवादी उपन्यास है। कुछ अलबेले और अस्वाभाविक चरित्रों पर बहुत स्वाभाविक ढंग से उपन्यास लिखने की प्रथा अब हिन्दी में बहुत जोरों से चल पड़ी है। यह उपन्यास भी एक अलबेले चरित्र झूमर बाबा के चरित्र पर आधारित चरित्र-प्रधान उपन्यास है। झूमर बाबा एक असाधारण व्यक्ति हैं जिनके काम भी असाधारण हैं पर लेखक ने उन्हें अपनी कथा के चौखटे में इतने स्वाभाविक ढंग से कसा है कि पढ़ते ही बनता है। रोचकता तो उपन्यास के प्रत्येक पृष्ठ में भरी है। शैली नई और ग्राह्य है। ऐसे ही उपन्यासों की हम लेखक से भविष्य में भी आशा करते हैं।

—ओंकार शरद

आदिम मानव समाज : लेखक—श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; मूल्य, चार रुपये।

'आदिम मानव समाज' मानव-शास्त्र की परिचयात्मक पुस्तक है जिसमें उस युग के मानव समाज तथा संस्कृति का एक संक्षिप्त तथा सुसंबद्ध इतिहास है। इसमें "आदिम समाज" का आरंभ, उसके जाति, धर्म, कृषि, न्याय, शासन, राजनीति, कला आदि विभिन्न अंगों के क्रमिक विकास का दिग्दर्शन कराया गया है। लेखक ने मानव-विज्ञान के सूक्ष्म तत्वों और तथ्यों को प्रभावशाली ढंग से तथा मंजी हुई भाषा में पाठकों के सम्मुख बहुत आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है जो जनसाधारण के लिए सहज ग्राह्य है। लोकसाहित्य का अधिक वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये, उसकी पृष्ठभूमि, मानव-शास्त्र का ज्ञान आवश्यक होता है। हमारा वर्त्तमान समाज व सभ्यता भी उसीसे ज्ञात और अज्ञात रूप से प्रभावित है। अतः इसकी उपेक्षा करना बुद्धिमानी नहीं है। पुस्तक की भाषा सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। लेखक ने नीरस और गंभीर विषय का भी बहुत रोचक ढंग से वर्णन किया है। संलग्न चित्रों तथा रेखाचित्रों के द्वारा उनको और भी स्पष्ट किया गया है जिससे उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

कार्तिकेय : लेखक—श्री विराज; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; मूल्य, डेढ़ रुपया।

महाकवि कालिदास के 'कुमार संभव' का कथासार 'कार्त्तिकेय' नाम से प्रस्तुत किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यद्यपि 'कार्त्तिकेय' पुस्तक के नाम से मूलरचना का अनुमान नहीं होता क्योंकि लेखक ने परिचित नाम "कुमार संभव" से उसको "कार्त्तिकेय" कर दिया है। नाम-परिवर्तन की आवश्यकता समझ में नहीं आती। 'कार्त्तिकेय' 'कुमारसंभव' महाकाव्य का कथासार है अनुवाद नहीं—इस दृष्टि से यह सफल प्रयास है। अनुवाद में प्रायः भाव विशृंखल हो कर कथा-प्रवाह त्रुटिपूर्ण हो जाता है। यह दोष इसमें नहीं है। इसी रूप में संस्कृत की रचनाएँ सरल और जनसाधारण के लिये सुगम, उपलब्ध हो सकती हैं। संस्कृत के महाकाव्यों, नाटकों आदि अन्य रचनाओं को इस प्रकार सरल रूप मिलना आवश्यक है। इसी प्रकार हिन्दी भाषा-भाषी ज्ञान-वर्द्धन कर सकेंगे।

आरती : लेखिका—श्रीमती विद्यावती कोकिल; प्रकाशक—ज्योति प्रकाशन, अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी; मूल्य, दो रुपये, पचास नये पैसे।

'आरती' कविता-संग्रह में सुप्रसिद्ध कवियित्री ने अपने शुद्ध व सरल भावों से अपने आराध्य की आरती उतारी है। 'आरती' उतारते समय जिस प्रकार भक्त तन्मय होने पर अपने को भगवान के बहुत निकट समझता है, कोई भी दुराव-छिपाव नहीं रखता, मन की हर अच्छी बुरी स्थिति को हीनभाव से स्वीकार लेता है। कुछ इसी प्रकार की यहां पर कवयित्री की मनः-स्थिति मिलती है।

लेखिका ने भूमिका में कहा है "इनमें रस लेने के लिए पाठकों की सरल सहृदयता अपेक्षित है। क्योंकि यह सब मां के विशाल प्रांगण की शिशु-क्रीड़ा ही है।" यह अक्षरशः सत्य है। आधुनिक बुद्धिवादी को यह महत्वहीन प्रतीत हो सकती है। इनके संबंध में एक विचार प्रचलित है कि उनकी रचनाओं पर मीरां का प्रभाव अधिक है। परंतु एक विशिष्ट मानसिक स्थिति में भावनाओं का साम्य होना अपवाद नहीं। उनकी सरलता और स्वानुभूति की रचनाओं पर अपनी ही छाप है, यथा—"कब किसको ईश्वर मिल जाये", "ये मेरी पूजा के क्षण हैं" तथा "अरी तमिस्रे तेरा सब षड्यंत्र खुल गया" आदि। जब नई कविताओं तथा साहित्य में नई पद्धितियों का प्रयोग हो रहा है, उस समय अपनी पीर को जीवन के हृदय की दिव्य पीर बताने वाली नारी निश्चित रूप से एक ऐसे युग की याद दिला रही है जिसमें मीराँ रही होगी। परंतु विद्यावती जी ने अपनी पीड़ा को मीराँ की भाँति व्यक्तिगत पीड़ा नहीं बनाई। उन्होंने उसको मानव-जीवन के स्तर पर उठा कर रख दिया। यही कारण है कि वे उपर्युक्त पंक्ति कह सकीं। वैसे तो कोकिल जी की कविता में कहीं-कहीं पर उनका आत्म-मंथन तथा आत्म-समर्पण इतना उच्चकोटि का है कि जहां तक बहुत ही कम कवि या कवयित्री पहुँच पाए हैं।

'कोकिल' जी ने अपने अंतर की 'दोनों सत्ताओं को' पहचाना है परन्तु उन्होंने उन दोनों को माँ के माध्यम से ही स्वीकारा है जो कि आत्म-मंथन और आत्म-समर्पण का पुष्ट प्रमाण है। अंत में एक बात की ओर संकेत करना आवश्यक हो जाता है कि उनकी भाषा कहीं कहीं पर शिथिल हो गई है और कहीं पर आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, जो भाव के तो अनुरूप है लेकिन उसके श्रृंगार के लिये ग्रामीण प्रसाधन-सा प्रतीत होता है।

—सत्या गुप्ता, एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ आ गये : लेखक—श्री अरविन्द गुर्टू; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली–६; मूल्य, दो रुपये।

'कहाँ आ गये' अरविन्द गुर्टू का सचित्र बड़ा उपन्यास है जिसमें चार सैलानी बालकों के साहस, बुद्धिमत्ता तथा आकस्मिक एवं अप्रत्याशित परिस्थिति में राह खोजने की रोचक कथा वर्णित हुई है। उपन्यास कुतूहलात्मक है। उपन्यासकार ने कथा के माध्यम से प्रसंगवश बालकों को शिक्षा दी है कि संकट में घबराना नहीं चाहिए वरन् चारों बालकों की भाँति साहस और बुद्धि का उपयोग कर गंतव्यस्थल खोज लेना चाहिए। अनेक नैतिक शिक्षाएं रोचक ढंग से दी गई हैं जैसे विपत्तिग्रस्त भक्त की सहायता करने से लाभ होता है, अपरिचित स्थान में मार्ग समझने के लिए वृक्षों पर चाकू से निशान लगा देना उचित है, यात्रा में दुरबीन और टार्च की अत्यधिक आवश्यकता होती है आदि। बालकों की कल्पना को पकड़ने की उपन्यासकार में अद्भुत शक्ति है, इसीलिए प्रस्तुत उपन्यास अत्यधिक रोचक तथा हृदयग्राही है।

कविवर प्रसाद : लेखक—आचार्य राजेन्द्रमोहन भटनागर एवं प्रोफेसर ओम्प्रकाश शर्मा, एम० ए०, शास्त्री; प्रकाशक—हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली; मूल्य, दो रुपया।

कविवर प्रसाद पर अनेक समीक्षात्मक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं परन्तु प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि यह विद्यार्थियों के उपयोग के हेतु हुआ है। अतएव लेखक ने प्रश्नोत्तर की शैली ग्रहण कर कविवर प्रसाद की काव्य-साधना पर सम्यक् प्रकाश डालने की चेष्टा की है। प्रश्नोत्तर में मौलिकता तथा पूर्णता है। परन्तु शैली के कारण प्रस्तुत पुस्तक का मूल्यांकन तो हो जाता है किंतु इसका महत्व कीनोटस् से अधिक नहीं है।

—कुमारी माधवी, एम० ए०

श्रीगुरु ग्रंथ-दर्शन—लेखक—डा० जयराम मिश्र; प्रकाशक—साहित्य भवन, प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद; मूल्य, आठ रुपए।

प्रस्तुत ग्रन्थ आगरा विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबंध है। श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब पर अनुसन्धानात्मक दृष्टि रख कर लिखा जाने वाला यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम है। गुरु ग्रंथ साहिब सिक्ख सम्प्रदाय तथा इतर समन्वयवादी गुरुओं, सन्तों की वाणियों का एक विशाल संग्रह है किन्तु लेखक ने केवल सिक्ख सन्तों की वाणियों को ही अपने अध्ययन का आधार बनाया है। इस सिद्धान्त के अनुसार लेखक ने गुरु ग्रंथ साहिब के संकलन पर तुलनात्मक दृष्टिकोण रखते हुए ग्रन्थ साहिब की अन्तरंग-बहिरंग समीक्षा, तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन, सिक्ख धर्म की व्यावहारिक और सैद्धान्तिक विशेषताओं का विवेचन, सिक्ख गुरुओं के आधारभूत रचनात्मक कार्यों और सिक्ख धर्म में अद्वैत सिद्धान्त पर विशद विवेचन किया है।

शोध-प्रबंध होने के कारण इस ग्रंथ के सिनाप्सिस पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो वह हमें समग्र और व्यापक नहीं जान पड़ता है। दार्शनिक सिद्धान्तों का बहुमुखी विवेचन जहाँ प्रशस्त और निर्विवाद है वहाँ भाषाशास्त्रीय अध्ययन का अभाव बुरी तरह खटकता है। गुरु ग्रंथ साहिब के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक पक्षों के विवेचन के साथ ही भाषाशास्त्रीय अध्ययन का होना नितान्त आवश्यक जान पड़ता है। ग्रन्थ साहिब में 'वाहे गुरु', 'हउमे', 'विस्माद' आदि अनेक ऐसे नये शब्द हैं जिनका भाषाशास्त्रीय अध्ययन बहुत ही रोचक और ज्ञानवर्द्धक है।

इस शोध प्रबंध को पढ़ने से इतना तो निश्चय जान पड़ता है कि लेखक का भारतीय दर्शन पर अच्छा खासा अधिकार है और अद्वैतदर्शन पर गहरी आस्था और एकान्त चिन्तन का प्रभाव है। यही कारण है कि इस अध्ययन का दार्शनिक पक्ष अत्यन्त समृद्ध और संगत है। लेखक ने अपना अभिमत व्यक्त करते हुए सर्वत्र समन्वय-भावना और निष्पक्ष आलोचना को प्रश्रय दिया है। सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक पक्षों के विवेचन में गुरु ग्रन्थ साहिब के रचना-काल के इतिहास को माध्यम बनाया गया है, अतएव इस अध्याय का अध्ययन पूर्ण एवं प्रशस्त बन पड़ा है। लेखक ने इस ग्रंथ के लिखने में जितना श्रम किया है उससे अधिक उनकी जिज्ञासा और रुचि जान पड़ती है। ग्रन्थ पढ़ने पर ऐसा भी प्रतीत होता है कि शोध-प्रबंध लिखते हुए लेखक को मार्ग-निर्देशन उचित ढंग से नहीं मिल पाया है, अन्यथा ग्रन्थ का बहुमुखी महत्त्व स्थापित होने में कोई संदेह न रह जाता ग्रंथ अपने ढंग का अनूठा और पठनीय है। इससे हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि तो हुई ही है, साथ ही एक अभाव की पूर्ति भी।

—देवदत्त शास्त्री

मोहन-माला : संग्रहकार—श्री आर० के० प्रभु; अनुवादक—श्री सोमेश्वर पुरोहित; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद; मूल्य, १ रु० २५ न० पै०।

विश्ववंद्य महात्मा गांधी का नाम संसार-प्रसिद्ध है। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के सफल सेनानी महात्मा गान्धी की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए अपने त्याग-तपस्या के बल पर अनेक सफल प्रयोग किये थे। प्रस्तुत पुस्तक में उनके जीवन-दर्शन का सार उपस्थित किया गया है। गांधी जी के विविध स्थानों पर दिये गये भाषणों, प्रार्थना-प्रवचनों और विविध लेखों से चयन कर अनेक सुन्दर सुविचारों को एकत्र किया गया है। पुस्तक की सब से बड़ी विशेषता है कि इसके द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सारे महत्वपूर्ण प्रश्नों पर गांधी जी के विचार उपस्थित किये गये हैं। विचारों का क्रम इस प्रकार रखा गया है कि पाठकों को एक विचार से दूसरे विचार पर जाने में कोई कठिनाई नहीं होती। प्रत्येक भारतीय को इस पुस्तक का मनन करना उपयोगी है।

धूमरेखा : (एकांकी) लेखक—श्री गुलाबदास ब्रोकर तथा श्री धनसुख लाल मेहता; अनुवादक—श्री गौरीशंकर जोशी; प्रकाशक—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा; मूल्य, एक रुपया २५ न० पै०।

गुजराती भाषा का स्थान भारतीय भाषाओं में पर्याप्त ऊँचा है। सन् १८८६ से १९१४ के बीच साहित्य की विभिन्न दिशाओं में गुजराती भाषा की उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इस अवधि में नाटक लिखे गये तथा रंगमंच का विकास हुआ। ऐन्द्रिक प्रत्यक्षता के आधार पर 'नाटक' को दृश्य काव्य की संज्ञा दी जाती है। इससे मनुष्य जीवन पर प्रभाव डालने की शक्ति के सम्बन्ध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो मत नहीं हो सकते। प्रस्तुत नाटक 'धूमरेखा' में भी इस 'शक्ति' की कमी नहीं है। इस नाटक का कथानक राजकीय भूमिका पर आधारित है। नाटक में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अवसर पर युवकों के मन में किस प्रकार देश-प्रेम की उमंगें उठती थीं और वे किस समय और कैसे विशेष रूप में प्रकट हो जाती थीं, इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण बड़ी सफलता के साथ किया गया है। इस सुन्दर दृश्य काव्य (नाटक) का हिन्दी अनुवाद बड़ी ही सुन्दरता से मूल-भावना को सुरक्षित रखते हुए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रस्तुत किया गया है। समिति का यह कार्य स्तुत्य है।

मधु-ज्वाल : रचयिता—श्री माणकचन्द रामपुरिया; प्रकाशक—रामपुरिया प्रकाशन, कलकत्ता; मूल्य, दो रुपया।

कवि की यह प्रथम रचना है। कवि श्री रामपुरिया बीकानेर के सम्पन्न व्यापारी हैं। कवि का प्रथम प्रयास होने के कारण 'मधु-ज्वाल' सफल ही कहा जायेगा। वैसे तो लोकप्रियता की दृष्टि से वर्तमान युग के कलाकारों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक श्रेणी लोकप्रिय साहित्यकारों की है। जनसाधारण के द्वारा ऐसे कलाकारों का कृतित्व आदर पाता है। दूसरी श्रेणी में ऐसे कलाकार आते हैं जिनकी साहित्यिक रचनाओं के साथ सामान्य जनों का सहज सम्पर्क नहीं रहता। निस्सन्देह 'मधु-ज्वाल' के रचयिता को इन दोनों कोटियों में से कवि-कर्म की दृष्टि से किसी में भी नहीं रखा जा सकता। परन्तु कवि ने जहां एक ओर 'मधु' एकत्र किया है, वहाँ दूसरी ओर समय की 'ज्वाल' को भी उपस्थित कर प्रस्तुत 'मधु-ज्वाल' की सार्थकता को सिद्ध करने की भी चेष्टा की है। कवि में प्रतिभा के अंकुर विद्यमान हैं और आशा है कि श्री माणकचन्द रामपुरिया कविता के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास करते हुए साहित्य की श्रीवृद्धि करेंगे।

रविशंकर के आरकेस्ट्रा : संपादक—श्री लक्ष्मीनारायण गर्ग; प्रकाशक—प्रभूलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस; मूल्य, पाँच रुपया।

संगीत के क्षेत्र में सुप्रसिद्ध कलाकार पं० रविशंकर का नाम सदैव अमर रहेगा। सितार-वादन को लोकप्रिय बनाने और समाप्तप्राय भारतीय आरकेस्ट्रा को जीवन-दान देने का वास्तविक श्रेय श्री रविशंकर जी को ही है। भारत में प्राचीन काल से ही सामूहिक वाद्य-वादन (आरकेस्ट्रा) का प्रयोग सिद्ध हो सका है और महर्षि भरत का 'नाट्यशास्त्र' भारतीय संगीत का प्रामाणिक आदि ग्रन्थ माना जा सकता है। उसमें वृन्द-विशेष को 'कुतप' (आरकेस्ट्रा) की संज्ञा दी गई है। देवमंदिरों की परम्परा में आराधना के समय शंख, घड़ियाल, मृदंग, ढोल, करताल, मुरज, वीणा तथा मृदंग आदि का प्रयोग न मालूम कब से होता चला आ रहा है। दक्षिण भारत के मन्दिरों में नृत्य के साथ सामूहिक वादन का प्रयोग भी अति प्राचीन काल से होता आ रहा है। 'गुप्त काल' और 'मुगल काल' में भी अनेक वाद्यों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। वर्तमान-काल में पाश्चात्य देशों ने वाद्ययंत्रों के क्षेत्र में अत्यधिक विकास किया है। वहाँ कुशल भारत में वादकों की संख्या भी बहुत अधिक है। पं० रविशंकर के द्वारा आरकेस्ट्रा के क्षेत्र में किये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये परीक्षण एवं प्रयोग प्रशंसनीय हैं। उन्हीं आदरणीय परीक्षणों एवं प्रयोगों को श्री लक्ष्मी-नारायण गर्ग ने सम्पादित किया है। हमारा विश्वास है कि सामूहिक वाद्य-यंत्रों के प्रेमियों एवं खोजियों के लिए प्रस्तुत पुस्तक लाभदायक सिद्ध होगी और प्राचीन भारतीय वाद्ययंत्रों को पुनरुज्जीवित करने में प्रेरणादायी सिद्ध होगी।

एकला चलो रे : लेखक—श्री उदयशंकर भट्ट; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली; मूल्य, एक रुपया।

कवि, उपन्यासकार और नाटककार के रूप में श्री उदयशंकर जी भट्ट का हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। आपकी रचनाओं में सत्य के प्रति एक विशिष्ट निष्ठा का बोध होता है। स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर का 'एकला चलो रे' शीर्षक गीत महात्मा जी को बहुत प्रिय था। महात्मा जी भारतीय संत परम्परा के नररत्न थे। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, भगवान कृष्ण, महात्मा बुद्ध, ईसामसीह और मुहम्मद के समान ही महात्मा गांधी ने भी भारतीय जनता को नवजागरण का संदेश दिया। जनता में नव-आलोक वितरण के लिए ही महात्मा जी ने नोआखाली की यात्रा की थी। प्रस्तुत पद्य-नाटक में महात्मा जी की इसी यात्रा का मार्मिक विवेचन किया गया है। रचना शैली अर्थ गर्भित और प्रवाहमयी है। पुस्तक की उपादेयता असंदिग्ध है।

मिर्ज़ा गालिब : लेखक—श्री रसूल अहमद 'अबोध'; प्रकाशक—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा; मूल्य, एक रुपया पचीस नये पैसे।

अनेक विद्वान् उर्दू को हिन्दी की एक शैली मात्र मानते हैं। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से लिपि भेद के अतिरिक्त दोनों भाषाओं में मौलिक अन्तर न होने के कारण उर्दू को हिन्दीतर भाषा मानना ठीक नहीं है। देवनागरी लिपि में उर्दू के मूर्धन्य कलाकारों की रचनाओं को प्रकाशित करना आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने 'मिर्ज़ा गालिब' की जीवनी और उनके साहित्य पर प्रकाश डालने के लिए प्रस्तुत सुन्दर पुस्तक प्रकाशित की है। पुस्तक में सर्वप्रथम 'गालिब' की गज़लों के कुछ प्रसिद्ध तथा सरल और सुबोध पंक्तियाँ दी गई हैं। साथ ही गालिब के कुछ पत्रों को भी प्रकाश में लाया गया है। पत्रों का कोई क्रम न होने पर भी 'गालिब' के स्वभाव और रहन-सहन पर उनसे पूर-पूरा प्रकाश पड़ता है। अन्त में उनके जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख करने के पश्चात् 'गालिब' के साहित्य में आने वाली अन्तर्कथाओं से सम्बन्धित शब्दों के अर्थ और 'गालिब' के सम्पर्क में आने वाले शिष्यों और मित्रों का सामान्य परिचय भी परिशिष्ट के रूप में दे दिया गया है। सब मिला कर यह कहा जा सकता है कि पुस्तक अत्यंत सुन्दर है। ऐसी उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।

—सूर्यनारायण मिश्र, एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

ये अंग्रेजी-भक्त शासक !

कदाचित् उत्तर प्रदेश का ही नहीं, उत्तर भारत का ऐसा कोई विरला ही राष्ट्रप्रेमी होगा, जो उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री आचार्य जुगुलकिशोर के इस वक्तव्य से चिन्तित, चकित एवं क्षुब्ध न हुआ हो कि अब उत्तर प्रदेश के प्रारंभिक विद्यालयों में तीसरी कक्षा से ही अंग्रेजी की पढ़ाई आरम्भ की जायेगी। शिक्षा मंत्री महोदय को राज्य के छात्रों में अंग्रेजी के गिरते हुए स्तर की बड़ी चिन्ता है, और वे अपने शासनकाल में संभवतः आम चुनाव के पहिले ही अंग्रेजी की जड़ मजबूत करने का एक सुदृढ़ कदम उठाना चाहते हैं, क्योंकि पिछले सौ सवा सौ वर्षों के शासन-काल में जिस अंग्रेजी को सामान्य जनता में एक प्रतिशत से भी अधिक स्थान नहीं मिल सका, उसे प्रारंभिक विद्यालयों में स्थान दे कर वे प्रत्येक साक्षर को अंग्रेजी का जानकार बनाने का यह प्रच्छन्न किन्तु घातक प्रयत्न करने जा रहे हैं, जिससे दस-पन्द्रह वर्ष बाद यह तर्क प्रस्तुत किया जा सके कि अब चूँकि अंग्रेजी का प्रसार अत्यधिक बढ़ गया है, अतः हिंदी को हटा कर अंग्रेजी को राजभाषा के स्थान पर पदासीन किया जाना चाहिए। हमारी यह आशंका इसलिए और भी साधार मालूम पड़ती है कि ठीक इसी समय दक्षिण भारत में भी इसी प्रकार का प्रयत्न किया जा रहा है।

एक संवाद के अनुसार दक्षिण भारत के समस्त राज्यों के शिक्षा मंत्रियों की एक बैठक अभी कुछ दिनों पूर्व हैदराबाद में हुई थी, जिसमें इस बात पर बड़ी चिन्ता व्यक्त की गई थी कि हमारे देश के छात्रों का अंग्रेजी-ज्ञान दिनानुदिन घटता जा रहा है। इस बैठक में उक्त मंत्रियों ने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि भविष्य में शिक्षा-विभाग इस संबंध में विशेष रूप से ध्यान दे कि अंग्रेजी का स्तर गिरने न पाये। यही नहीं, वहाँ भी उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री की भाँति अंग्रेजी-प्रेमी मंत्रियों की कमी नहीं है। उन लोगों ने अंग्रेजी के समुचित ज्ञान के लिए यह आवश्यक समझा है कि जिन विद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती है वहाँ तीसरी श्रेणी से अंग्रेजी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी जाय। इधर शिक्षा-विभाग में हुई नई व्यवस्था के अनुसार दूसरी श्रेणी ही तीसरी श्रेणी कहलाने लगी है। जिसका तात्पर्य यह हुआ कि क्षेत्रीय अथवा मातृभाषा की वर्णमाला पहचानने के अनन्तर प्रत्येक छात्र के लिए अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो जायगा। यह अन्धेर अंग्रेज शासकों के जमाने में यदि होती तो कदाचित् हमारे राष्ट्र-नेताओं को स्वराज्य-प्राप्ति से पूर्व इस भाषा-स्वराज्य की प्राप्ति के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्दोलन खड़ा करना पड़ता। किन्तु आज हम स्वतंत्र कहे जाते हैं, हमारे द्वारा चुने हुए जन-प्रतिनिधियों के हाथ में शासन-सत्ता है और वे प्रदेश के बच्चों के ऊपर ऐसा असह्य एवं अस्वाभाविक भार डालने का कुचक्र रच रहे हैं जिससे न केवल हमारे बच्चों के स्वाभाविक विकास का मार्ग ही अवरुद्ध होगा वरन् कालान्तर में हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी के सहज उत्थान, विकास एवं प्रगति में बाधाएँ भी उत्पन्न हो जायेंगी।

अंग्रेज शासकों के जमाने में मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा द्वारा शिक्षा देने वाली पाठशालाओं अथवा प्रारंभिक विद्यालयों में अंग्रेजी का कोई स्थान नहीं था। वह विशुद्ध अंग्रेजी स्कूलों में अथवा ईसाई मिश्नरियों द्वारा आरंभ किए गए विद्यालयों में ही आरंभिक कक्षाओं से पढ़ाई जाती रही। अब इस नये निश्चय के अनुसार अंग्रेजी सभी विद्यालयों में प्रारंभिक कक्षाओं से ही अनिवार्य कर दी जायगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर मद्रास राज्य को छोड़ कर मैसूर, आन्ध्र और केरल राज्य में भाषा की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व मातृभाषा अर्थात् कन्नड़, तेलुगू और मलयालम को दिया जाता रहा है और मातृभाषा के अनन्तर राष्ट्रभाषा हिन्दी के पठन-पाठन को प्रमुखता दी जाती रही है। केवल मद्रास राज्य ऐसा था जहाँ मातृभाषा तमिल के अनन्तर प्रमुखता अँग्रेजी के पठन-पाठन की थी। इस प्रकार जहाँ उपर्युक्त तीनों राज्यों में अंग्रेजी को तृतीय स्थान प्राप्त था वहीं मद्रास में अंग्रेजी को द्वितीय स्थान। अब उक्त राज्यों के शिक्षा मंत्रियों के इस नए निश्चय के अनुसार दक्षिण के इन सभी राज्यों में अंग्रेजी को आरंभिक कक्षाओं से अनिवार्य बना कर मातृभाषा के समान ही गौरव देने का कुचक्र इसलिए रचा जा रहा है कि उसके गिरते हुए स्तर की रक्षा की जा सके और अब तक जो काम अंग्रेज शासक नहीं कर सके, वह काम हमारे वर्तमान अंग्रेजी-भक्त शासक करने को उद्यत हो गये हैं। अर्थात् अंग्रेजी का प्रसार आगामी दस-पन्द्रह वर्षों में समूचे देश के नव-साक्षर मात्र में हो जाय। क्योंकि आरंभिक कक्षाओं में अंग्रेजी का समावेश केवल इसी दृष्टि से किया जा रहा है कि उसे सर्वव्यापी और सर्वप्रिय बनाया जा सके।

यह कैसा दुर्भाग्य है कि आज इन दूरगामी कुप्रभाव डालने वाली अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों को कार्यान्वित करने का प्रयास हमारे राष्ट्र के कर्णधार कर रहे हैं और उनकी प्रेरणा से ही यह सब कुछ हो रहा है। वे अनन्त काल तक हिन्दी को उसी स्थिति में बनाए रखना चाहते हैं, जैसे पहले थी। क्योंकि यदि राष्ट्रभाषा होने के बाद भी उसे क्षेत्रीय भाषा तथा विदेशी भाषा अंग्रेजी के बाद स्थान दिया जाता है तो उसका सार्वत्रिक प्रचार एवं प्रसार अपेक्षित समय में नहीं हो सकता; और उस समय जब आज का यह कुचक्र फलीभूत हो जायगा अर्थात् अंग्रेजी जानने वालों का प्रतिशत उत्तर एवं दक्षिण में सर्वत्र अधिक बढ़ जायगा तो यह कह कर हिन्दी अपने वर्तमान पद से हटा दी जा सकती है कि चूंकि हिन्दी अंग्रेजी की भाँति सर्वत्र व्याप्त एवं समर्थ नहीं है, अतः उसे अंग्रेजी के स्थान पर राष्ट्रभाषा नहीं बनाया जा सकता। हमारे आज के इन अंग्रेजी-भक्त शासकों के मस्तिष्क में हिन्दी के सम्बन्ध में कुछ इसी प्रकार की कल्पना है और वे इसी को कार्यान्वित करने के लिए ऐसा करने जा रहे हैं। दक्षिण और उत्तर में सर्वत्र एक साथ अंग्रेजी के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मायाजाल के पीछे यही प्रवृत्ति काम कर रही है। अंग्रेजी की उत्तरोत्तर क्षीण होती हुई स्थिति से चिन्तित हमारे अंग्रेजी भक्त शिक्षा मंत्री महोदय भी इस प्रकार उसे पुनः स्थापित करना चाहते हैं और सर्वसामान्य जनता को भुलावे में डाल कर हिन्दी की जड़ में कुठाराघात करने जा रहे हैं।

आज हिन्दी की प्रगति एवं विकास में सबसे बड़ी बाधा अंग्रेजी ही है। उर्दू, बंगाली, तमिल, तेलुगू, मराठी, गुजराती आदि क्षेत्रीय भाषाएँ हिन्दी की शक्ति को बढ़ाने वाली हैं। इनकी जितनी भी उन्नति होगी उसका सुपरिणाम हिन्दी को अवश्य ही प्राप्त होगा जब कि अंग्रेजी की उन्नति एवं प्रसार के कारण हिन्दी की शक्ति को धक्का लगना स्वाभाविक है। कारण स्पष्ट है। अंग्रेजी विदेशी भाषा है। उसका सब कुछ विदेशी है और वह हमारे लिए कठोर तथा श्रमसाध्य है। अनुभवी लोग मानते हैं कि दस-पन्द्रह वर्षों के अनवरत अध्ययन के बाद भी वह दुर्गम ही बनी रहती है। राष्ट्र की अपार धन-जन एवं श्रम-शक्ति को उसकी आराधना में नष्ट करके भी हम अकृतकार्य ही रहेंगे। राष्ट्रभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा के द्वारा जो ज्ञान-विज्ञान दो-तीन वर्षों में दिया जा सकता है वही अंग्रेजी-द्वारा पांच सात वर्षों में बड़ी कठिनाई से दिया जा सकता है। प्रयोगों से ज्ञात यह हुआ है कि ज्ञान-विज्ञान की उन कक्षाओं में जहाँ अंग्रेजी माध्यम होती है, हमारे विद्यार्थियों का मन नहीं लगता जब कि हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से उन्हें बड़ी सुविधाएँ मिलती हैं।

किन्तु इस बात को हमारे राष्ट्र-नेताओं के हृदय एवं मस्तिष्क में बैठाया कैसे जाय यह एक टेढ़ी समस्या है? वे या तो हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषाओं की शक्ति से अपरिचित हैं अथवा जान बूझ कर अंग्रेजी को यथावत् बनाए रखना चाहते हैं। चूंकि उनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी में हुई है, उनके जीवन का अधिकांश अंग्रेजी-प्रभाव में बीता है अतः अपने अंग्रेजी-मोह को त्याग पाना उनके लिए कठिन है। अन्यथा इस प्रकार के अनर्थकारी प्रयत्नों में वे कैसे अग्रसर होते? वे समय रहते हुए इस स्वीकृत तथ्य के प्रति क्यों उदासीन होते कि अपनी राष्ट्रभाषा के बिना हमारी स्वतंत्रता भी छूंछी है। हम एक ऐसी विदेशी भाषा अपना कर अपना मस्तक ऊँचा नहीं रख सकते जो वर्षों के कठोर श्रम के बाद भी दुरासाध्य रहती है और जो हमारी भूली हुई परतंत्रता को बरबस याद दिलाने वाली है। हम यह नहीं चाहते कि लोग अंग्रेजी न पढ़ें। वह एक समुन्नत भाषा है। जो विद्या-व्यसनी या प्रतिभाशाली छात्र हैं वे अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, चीनी, रूसी किसी भी भाषा में दक्षता प्राप्त कर सकते हैं किन्तु सर्वसामान्य तथा मध्यवर्ग के विद्यार्थियों पर इस दुरासाध्य विदेशी भाषा को लादना अक्षम्य राष्ट्रद्रोह है; साथ ही अपरिमित प्रतिभा, शक्ति, समय एवं धन का दुरुपयोग भी है।

हम चाहते हैं कि बच्चों के भविष्य के साथ इस प्रकार खिलवाड़ न किया जाय। उनके सुकोमल मस्तिष्क पर चिर पराधीनता की ताजी याद दिलाने वाली अंग्रेजी को लादना राष्ट्रपिता गांधी जी के आदर्शों के प्रतिकूल है, अन्यथा उनका विकास रुक जायगा। जितनी शक्ति लगा कर वे एक विदेशी भाषा सीखेंगे उतने में अपनी मातृ-भाषा द्वारा अन्य विषयों की दक्षता प्राप्त कर लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरंभिक पाठशालाओं से अंग्रेजी के पठन-पाठन को प्रचलित करके हम उसके गिरते हुए स्तर की रक्षा नहीं कर सकते क्योंकि देश भर में अंग्रेजी विषय ले कर हाई स्कूल एवं इण्टर की परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की विपुल संख्या ही इसका प्रमाण है कि हमारी नई पीढ़ी अंग्रेजी भाषा के दुर्वह भार को चिरकाल तक उठाना नहीं चाहती क्योंकि वह समझ गई है कि इन भ्रान्तमति वयोवृद्ध स्वदेशवासी अंग्रेजी-प्रेमियों के शासनकाल के अनन्तर हमारे राष्ट्र में अंग्रेजी का कोई भविष्य नहीं है।

पिछले वर्ष एक अवसर पर भाषण करते हुए आचार्य विनोबा भावे ने कहा था—**"अंग्रेजी में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की वृहत संख्या देख कर भारतवर्ष के सुन्दर भविष्य की कल्पना करनी चाहिए, क्योंकि यदि हमारा नवयुवक वर्ग अंग्रेजी के प्रति विशेष दिलचस्पी रखता तो भारतवर्ष के अन्धकाराच्छन्न भविष्य की सूचना होती।"**

अतः अंग्रेजी के स्तर को पुनः पूर्ववत् उन्नत बनाने के लिए चिन्तित इन शिक्षा-मंत्रियों से विशेषकर आचार्य जुगुलकिशोर जी से हमारा निवेदन है कि वे उल्टीगंगा बहाने की कोशिश न करें। उनके इस प्रयत्न से भी अंग्रेजी का हित-साधन नहीं होगा। उन्हें सोचना चाहिए कि छोटे-छोटे बच्चों पर अपनी मातृभाषा के सीखने का ही भार बहुत है। अनेक भाषाओं को सीखने की अवस्था १२, १४ वर्ष की हो सकती है, जब बच्चे प्रायः छठीं कक्षा में तो पहुंच ही जाते हैं। अतः उत्तर प्रदेश में छठीं कक्षा के छात्रों में दक्षिण भारत की किसी एक भाषा अथवा बंगाली, मराठी या गुजराती आदि भारतीय भाषाओं में से किसी को पढ़ाने की व्यवस्था करना अधिक समीचीन होगा। इससे न केवल राष्ट्रीय भावनाओं की वृद्धि में सहायता मिलेगी अपितु देश की एकता के बिखरे सूत्रों को सशक्त बनाने की भी प्रेरणा मिलेगी।

हमारा विश्वास है कि हमारे शिक्षा मंत्री महोदय समय रहते हुए इस तथ्य पर विचार करेंगे और बच्चों पर अंग्रेजी का असह्य एवं अनुचित भार डालने का निश्चय वापस ले लेंगे। किन्तु यदि वे इस जन भावना को ठुकराकर अंग्रेजी के समाप्तप्राय महत्त्व को पुनः स्थापित करने से विरत नहीं होते तो हिन्दी प्रेमी जनता को उनके इस निश्चय का सक्रिय विरोध करना अनिवार्य है। क्योंकि अंग्रेजी का यह मायाजाल केवल हिन्दी को अनन्त काल तक के लिए अशक्त एवं निर्बल बनाने के लिए ही खड़ा किया जा रहा है, जिससे कालान्तर में उसे सदा के लिए अपदस्थ कर दिया जाय और अंग्रेजी को सर्वप्रिय एवं सर्वत्र व्याप्त बतला कर यथावत् बनाए रखने के लिए संविधान में संशोधन कराया जा सके।

हिन्दी जगत में शिक्षा मंत्री के इस अविचार पूर्ण निर्णय की तीव्र प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। हमारा हिन्दी-प्रेमियों से एवं हिन्दी तथा राष्ट्रभाषा का कार्य करने वाली संस्थाओं से अनुरोध है कि वे इस अन्याय का तीव्र विरोध करें और शिक्षा मंत्री को बतला दें कि वे अंग्रेजी को हमारे नन्हें बच्चों पर अस्वाभाविक रूप में लाद कर उनके विकास में बाधक न बनें और हमारी प्यारी राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति एवं विकास के मार्ग में अंग्रेजी की बाधा न खड़ी करें।

चैत्र-ज्येष्ठ १८८३ शक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्राण निराला और साहित्यकार

हिन्दी साहित्य के विख्यात महाकवि महाप्राण पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का महाप्रयाण गत १५ अक्टूबर को प्रयाग में एक लम्बी बीमारी के बाद अकस्मात हो गया, हिन्दी संसार के लिये यह अत्यन्त वज्रपातिक और दुखद घटना है। निराला जी गत १४, १५ वर्ष से रोगग्रस्त थे। कई बार वह रोगाक्रांत हुए किन्तु दैवयोग से बचते रहे, मनःस्थिति भी कुछ विक्षिप्त सी हो गई किन्तु इस बार वह नहीं बच सके और ६४ वर्ष की अवस्था में ही उनका एकाएक प्राणांत हो गया। गत ४० वर्ष से वह निरंतर हिन्दी सेवा में लगे रहे, हिन्दी साहित्य का सृजन उनके जीवन का आदर्श रहा, हिन्दी के लिए ही वह उत्पन्न हुए, हिन्दी ही के लिये वह जीवित रहे और हिन्दी साहित्य की सेवा करते हुए वह इस आसार संसार से बिदा हुए। हिन्दी के एक महान सेवक, महान कलाकार और महान युगप्रवर्तक का प्राणान्त कितनी दयनीय अवस्था में हुआ, इसकी कहानी बड़ी दुखद, क्लेशदायिनी और मर्मान्तिक पीड़ा पहुँचाने वाली है; जो कुछ भी और जितना भी लिखा जाय वह सब थोड़ा है। अभी तो नहीं, किन्तु ज्यों ज्यों हिन्दी का अभ्युदय होता जायेगा त्यों त्यों इस महान साहित्यकार की कृतियों का मूल्यांकन भी बढ़ता जायेगा, ग्रन्थ पर ग्रन्थ रचे जायेंगे किन्तु काव्य-सुधियों को उनके काव्य से तृप्ति नहीं होगी।

निराला जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के युगप्रवर्तक कवि और निर्माता थे। निराला का समस्त जीवन संघर्षमय रहा। वह अपनी 'अनामिका' लेकर जिस समय हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए उस समय आलोचकों ने अपनी विरोधी-वृत्ति से उन्हें पराजित करने की पूरी चेष्टा की किन्तु वह अपराजेय सिद्ध हुए और अनवरत गति से आगे बढ़ते गये। आज निरालाजी आधुनिक नई कविता के जनक तथा प्रेरणा-स्रोत माने जाते हैं। उन्होंने काव्य, उपन्यास, कहानी, आलोचना, निबन्ध, रेखाचित्र, श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य, अनुवाद तथा स्फुट साहित्य सम्बन्धी ऐसे ग्रन्थों का प्रणायन किया जिनसे हिन्दी का साहित्य गौरवान्वित है। काव्यों में अनामिका (१९२३) गीतिका (१९३६) तुलसीदास (१९३९) कुकुरमुत्ता (१९४२) अणिमा (१९४३) नये पत्ते (१९४६) बेला (१९४६) अपरा (१९४४) अर्चना (१९५०) आराधना (१९५३) गीतगुन्ज (१९५३-५६) अभूतपूर्व हैं। अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, चोटी की पकड़ और काले कारनामे उपन्यासों को जिसने पढ़ा है वह निराला की लेखन-शैली पर मोहित हुए बिना नहीं रहा। कहानी-संग्रहों में लिली, सुकुल की बीबी (१९४१) चतुरी चमार (१९४१) और सखी का अपना स्थान है। निराला जी के निबन्ध बेजोड़ हैं, जिनकी कोई तुलना नहीं—प्रबन्ध-पद्म, प्रबन्ध प्रतिमा और चाबुक उच्चकोटि के निबन्ध-संग्रह हैं। कुल्लीभाट और बिल्लेसुर बकरिहा ऐसे रेखा-चित्र हैं जिसमें भारतीय समाज का चित्रण बड़ा सजीव और हृदय पर एक छाप छोड़ जाने वाला है। इसी प्रकार निराला जी ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की कृतियों को अनूदित करके हिन्दी पाठकों को उसका रसास्वादन कराया। ध्रुव, भीष्म और महाराणा प्रताप की जीवनियाँ भी उनकी प्रभावित गद्य-शैली के उदाहरण हैं। बंगला की अनेक पुस्तकों का विशेषकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम बाबू के ११ उपन्यासों को अनुदित करके निराला जी ने हिन्दी के लिए सुलभ बनाया। पंत और पल्लव तथा रवीन्द्र-कविता-कानन उनकी आलोचनात्मक लेखनकला की उत्कृष्ट रचनायें है। तुलसीकृत रामायण को दोहा और चौपाई की शैली में टीका भी पठनीय है। इस प्रकार निराला जी ने दर्जनों ग्रन्थों का प्रणयन करके हिन्दी की श्रीवृद्धि की। साहित्य में यही रचनायें निराला जी की अमर कीर्ति के बनाये रखने के वास्तविक चिन्ह हैं।

इस प्रकार साहित्यिक और कलाकार की दृष्टि से निराला जी की महानता अक्षुण्ण है। उनकी कलाकृति केवल भारत ही नहीं, संसार के महान कलाकारों की कृतियों की कोटि में रखी जा सकती है। उनका साहित्यिक जीवन सन् १९२२-२३ से प्रारंभ होता है। पिछले ४० वर्षों से वह माता सरस्वती की आराधना में तल्लीन रहे। वास्तविकता यह है कि निराला के काव्यों का समझना सरल नहीं है यही कारण है कि उनकी कलाकृतियों का अभी तक समुचित रूप से मूल्यांकन नहीं हो सका। संत-काव्य, संस्कृत साहित्य और दर्शनशास्त्र के मनीषी और मर्मज्ञ ही निराला जी के काव्यों का अनुशीलन और मूल्यांकन करने के विशुद्ध अधिकारी हो सकते हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन का यह कथन कितना सत्य और समीचीन है–"हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में निराला का आगमन एक विद्रोह-स्वर की सूचना देता है। आरंभ से अन्त तक उनके काव्य में शतानुगातिकता के प्रति विद्रोह है। पुराने संत कवियों के समान उनमें अपने व्यक्तित्व को पुरुष-भाव में व्यक्त करने की तेजस्विता और अपूर्व क्षमता है। यही निराला का प्रधान आकर्षण है। संत कवियों के साथ निराला का स्थान स्थान पर समन्वय है। वही फक्कड़पन, वही मस्ती, अंत में अपने अंतर की अनभूतियों का अबाध वर्णन, अज्ञात प्रियतम के मर्म की व्याकुलता, रूढ़ियों के प्रति विप्लवीभाव विरोध की उपेक्षा और अनन्त का संदेश निराला के काव्य की विशेषतायें हैं।" निराला जी कलाकार तो थे ही किन्तु सबसे अधिक वह महामानव थे। उनका समस्त काव्यमय जीवन मानवता से ओतप्रोत है। उनके काव्य में महान मानवता, युग की पुकार की संवेदनशीलता, आडम्बरहीन सहज, सरल सहृदयता इतनी व्याप्त मात्रा में है कि जिसकी कोई तुलना नहीं। निराला की कृतियों की अमरता का यही सबसे बड़ा मर्म है।

ऐसे महामानव का निधन केवल ६४ वर्ष की आयु में हो गया, इसे दैव दुर्विपाक के सिवा और क्या कहा जाये? ६४ वर्ष की आयु कोई आयु नहीं है। पिछले कई वर्षों से वह कुछ विक्षिप्त से भी दिखाई पड़ते थे, रुग्णता से वह जर्जर होते जा रहे थे किन्तु यह हिन्दी संसार तथा विशेषकर स्वतंत्र भारत का दुर्भाग्य है कि उन्हें उस परिस्थिति से उबारा नहीं जा सका। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि निराला जी की पूर्णरूप और व्यवस्थित ढंग से चिकित्सा और देखभाल होती तो उनका कुछ और दिनों तक जीवित रहना असंभव नहीं था। किन्तु इसकी किसे चिन्ता थी? कहा जाता है कि साहित्यकारों पर इसका उत्तरदायित्व अधिक है? किन्तु आजकल साहित्यकार कौन समझा जा रहा है? विभिन्न शिक्षण संस्थाओं, विद्या-केन्द्रों तथा शासन-संरक्षणों में जो ऊंची ऊंची गद्दियाँ निर्मित हुई हैं, उन पर जिस प्रकार के स्वयंभू साहित्यकार बैठाये गये हैं उन्हें निराला ऐसे त्यागी और स्वाभिमानी साहित्यकार के लिये क्या चिन्ता? सच तो यह है कि निराला जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन साहित्यकारों की अंतिम पीढ़ी के बलिदानी साहित्यकार थे जिसकी परंपरा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रारंभ होती है और जिन्होंने बिना किसी लिप्सा तथा स्वार्थ के साहित्य-निर्माण में अपना खून-पसीना एक करते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दी की नींव को सुदृढ़ करने में अपना समस्त जीवन समर्पण कर दिया, 'जयहिन्दी' तथा 'जय नागरी' की ध्वनि से हिन्दी जनता में नवस्फूर्ति भरते हुए साहित्य-निर्माण और हिन्दी के प्रचार-प्रसार का साधन सुलभ किया और साहित्य-सेवा के आदर्श की स्थापना को। इस परम्परा का साहित्यकार स्वयं आज भी महाप्राण निराला की ही भांति अत्यन्त पीड़ित और दुखी है। वह महाकवि के प्रति अपनी सहानुभूति देने और संवेदना प्रगट करने के सिवा कर ही क्या सकता है? इसका प्रमाण केवल इतने से ही प्रगट है कि महाकवि के प्राणविसर्जन पर साहित्य के वास्तविक पुजारियों और हिन्दी जनता ने जिस प्रकार व्यापक रूप में उनके प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित की उसका एक ऐतिहासिक महत्व है। इस प्रकार का गौरव हिन्दी-जगत में केवल निराला जी को ही प्राप्त हुआ जो राष्ट्र के महान से महान नेताओं को समय समय पर प्राप्त होता आया है। हमारी तो स्पष्ट सम्मति है कि स्वयंभू साहित्यकारों और राष्ट्रीय शासन ने महाकवि की सदा उपेक्षा की। इस प्रकार की उपेक्षा का प्रभाव निराला जी के जीवन पर कितनी गहराई के साथ पड़ा है, इसका भेद उनके निकटस्थ लोग ही जानते हैं। हिन्दी के प्रश्न पर वह अपरिवर्तनवादी थे। हिन्दी, भाषा, वेश-भूषा, चिंतन-मनन सभी में वह विशुद्ध भारतीय थे। संस्कृत तथा संस्कृति की भावना के वह पूरक थे। साहित्य की दिशा में एक क्रांति के सृष्टा और दृष्टा थे। निराला जी निराले ही थे। उनकी कोई तुलना और समानता नहीं। आज ही नहीं आगे की पीढ़ी भी उनका वंदन करेगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

हमें स्वयंभू तथा अवसरवादी साहित्यकारों से कुछ नहीं कहना है। क्योंकि अवसरवादी, पदलोलुप और अर्थलिप्सा में आत्मसमर्पण करने वाले हिन्दी वाले अंग्रेजी शासन में भी थे और आज राष्ट्रीय शासन में भी हैं। परिस्थितियों से लाभ उठा लेना बुद्धिवाद है, उससे वंचित रहना अबुद्धिवाद। किन्तु इस राष्ट्रीय शासन का हिन्दी के विशुद्ध साहित्यकारों तथा कलाकारों के प्रति जो उपेक्षा भाव है, वह चिन्त्य अवश्य है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा संविधान के अनुसार हो गई है किन्तु शासन के कुछ चोटी के नेताओं के अतिरिक्त हिन्दी साहित्यिकों, कलाकारों तथा हिन्दी के लिये समस्त जीवन-समर्पण करने वालों के प्रति किसकी सहानुभूति है? वह साहित्यकारों का संतुलन किस तराजू पर करते हैं, यह प्रश्न बड़ा गम्भीर और विचारणीय है। रूस, ब्रिटेन और अमरीका को दुहाई दी जाती है किन्तु क्या विदेशों में साहित्यकारों की यही स्थिति है जिस प्रकार भारत में? महाप्राण निराला को तो 'पागल' संज्ञा तक दे डाली गई किन्तु क्या मुन्शी प्रेमचन्द्र ऐसे महान कलाकार भी पागल थे? उनके स्मारक का क्या हुआ? इसी प्रकार हिन्दी में कितने ही कलाकार दिवंगत हो चुके किन्तु सरकारी राजनीति की आंधी में किसी का कहीं कुछ पता नहीं है। योजना पर योजना बन रही हैं किन्तु साहित्य-निर्माण और महान साहित्यकारों की कीर्तिरक्षा के निमित्त कोई योजना नहीं है। ऐसे साहित्यकार जो साहित्य के लिये जीवन-दान दे रहे हैं, हिन्दी-सेवा ही जिनका मिशन है, उनके लिये सरकार क्या कर रही है? क्या राष्ट्र बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य के ही जीवित रह सकता है? इस प्रकार की उपेक्षा का परिणाम क्या होगा? सरकार, सरकार के उपयुक्त अधिकारियों तथा सरकार को परामर्श देने वाले उन स्वयंभू साहित्यकारों को विशुद्ध हृदय से किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की आवश्यकता है। निराला जी अब हमारे बीच नहीं हैं किन्तु उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने का उत्तरदायित्व सरकार पर भी है। जन-जीवन की तृप्ति क्षणिक राजनीति से नहीं, साहित्य से ही होगी। इसलिये साहित्य-स्रष्टा के प्रति उसे सचेत और शुद्ध मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए। निराला की उपेक्षा समस्त साहित्यकारों की उपेक्षा है।

महाप्राण निराला के जीवन का अन्त ऐसे समय में हुआ है जब राष्ट्रभाषा हिन्दी संकटकाल से गुजर रही है। राजनीतिज्ञों ने हिन्दी को पद-भ्रष्ट करने के निमित्त समस्त राष्ट्र में भाषा सम्बन्धी तूफान बरपा कर दिया है। किन्तु राजनीति राजनीति है और संस्कृति संस्कृति। संस्कृति रहेगी और राजनीति नष्ट होगी। इसलिये हमें विश्वास है कि सभी क्षेत्रीय भाषायें फलेंगी फलेंगी और राष्ट्रभाषा हिन्दी उनके गले का हार बनेगी। महाकवि निराला का यही अंतिम संदेश था कि हिन्दी को राजनीति और राजनीतिज्ञों से दूर रखना चाहिए। हिन्दी अमर है, उसका जीवन अमर है, राष्ट्रभाषा हिन्दी की गति अबाध है, उसका अवरोध राष्ट्र का अवरोध है। हम महाप्राण निराला के निधन से कोटि कोटि हिन्दी प्रेमियों की भांति ही अत्यन्त दुखी हैं और दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धापूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

० ० ०

स्वर्गीय श्री नलिनविलोचन शर्मा

पटना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष और हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री नलिनविलोचन शर्मा का असामयिक स्वर्गवास हिन्दी जगत के लिये अत्यन्त दुखदाई और कष्टप्रद है। उनकी आयु केवल ४३ वर्ष की थी। उनका साहित्यिक जीवन केवल २८-२९ वर्ष का रहा। इस बीच में उन्होंने अपनी प्रतिभा का ऐसा उज्ज्वल परिचय दिया कि उनकी गणना केवल बिहार में ही नहीं समस्त हिन्दी जगत में चोटी के रचनाकारों में होने लगी। वह केवल मूर्धन्य विद्वान ही नहीं, सफल सम्पादक, कुशल कहानीकार, हिन्दी कविता के प्रपद्यवाद के प्रवर्तक, बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के अनुसंधान विभाग के निर्देशक भी थे। वह संसार के विख्यात दार्शनिक और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा के यशस्वी पुत्र थे। प्रतिभा और विद्वत्ता उनको अपने पिता से विरासत में मिली थी। नलिन जी को इस थोड़े से जीवन-काल में यथेष्ट समादर और सम्मान प्राप्त हो चुका था। इस बीच में उन्होंने हिन्दी में जो लिखा या जो कुछ साहित्य को दिया इतिहास की दृष्टि से उसका गौरवपूर्ण स्थान है। उन्होंने साहित्य के साथ ही सांस्कृतिक गतिविधियों का भी नेतृत्व किया। आचार्य नलिनविलोचन ने कुछ ऐसी मौलिक और अन्वेषण सम्बन्धी रचनायें हिन्दी में प्रस्तुत कीं जिनका साहित्यिक दृष्टि से यथेष्ट मूल्य है। 'दृष्टि-कोण' आपकी आलोचनात्मक तथा गवेषणात्मक निबन्धों का अभूतपूर्व संग्रह है। 'साहित्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास-दर्शन' साहित्येतिहास संबंधी उच्चकोटि का ग्रन्थ है। इसके सिवा 'सदल मिश्र ग्रन्थावली' 'हस्तलिखित हिन्दी पोथियों का विवरण' गोस्वामी तुलसीदास' 'अयोध्या प्रसाद खत्री अभिनन्दन-ग्रन्थ' 'लोक साहित्य आकर सूची', 'लोकगाथा परिचय' 'लोककथा-कोष' आदि ग्रन्थों का भी प्रणयन और सम्पादन किया। 'विष के दांत' आपकी कहानियों का अनूठा संग्रह है। आपका पाश्चात्य साहित्य पर अच्छा अधिकार था। आलोचनात्मक शैली उनके गहन गम्भीर अध्ययन, पैनी दृष्टि और निष्पक्ष विचारों की परिचायिका है।

ऐसे मनीषी युवक विद्वान का देहावसान गत १२ सितम्बर १९६१ ई० को हृदय की गति रुक जाने से अकस्मात् हो गया, इससे प्रत्येक हिन्दी प्रेमी का दुखी होना अनिवार्य है। हिन्दी जगत को स्वर्गीय नलिन जी से अभी बड़ी बड़ी आशायें थीं। हम ईश्वर से प्रार्थी हैं कि वह स्वर्गीय नलिन जी की आत्मा को शांति तथा उनके परिवार वालों को धैर्य प्रदान करे।

० ० ०

महामना मालवीय-जन्म-शती

भारतरत्न महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का जन्म-शती समारोह समस्त भारत में बड़े व्यापक रूप में मनाया जा रहा है। समस्त राष्ट्र के लिये यह बड़े गौरव का अवसर है। पूज्य मालवीय जी भारत के उन महान निर्माताओं में अग्रणी हैं जिन्होंने अपने त्याग और तपस्या से भारतीय गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपना समस्त जीवन राष्ट्र-हित में समर्पण कर दिया। उनकी उज्ज्वल कीर्ति का अमरस्तम्भ काशी विश्वविद्यालय आज भी देदीप्यमान है। राष्ट्रीय दृष्टि से ही नहीं शिक्षा, साहित्य, भाषा, संस्कृति तथा हिन्दी के अभ्युदय और उत्थान में उनकी धवलकीर्ति इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णांकित है। पूज्य मालवीय का उज्ज्वल चरित्र अनेकानेक लोककल्याणकारी कार्यों तथा मानवता के निर्माण में अपनी समता नहीं रखता। हिन्दी को प्रारंभिककाल में महामना की शक्तिपूर्ण लेखनी तथा सम्मोहक वाणी का योगदान प्राप्त हुआ उसी का यह परिणाम है कि आज हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है। हिन्दू जाति को जीवन-दान देने में पूज्य मालवीय जी का संबल देदीप्यमान है। जब तक भारतीय राष्ट्र तथा हिन्दू जाति जीवित है, पूज्य मालवीय के त्याग और बलिदान की गाथा अमर रहेगी। ऐसे महामना की जन्मशताब्दी मनाकर संपूर्ण राष्ट्र गौरवान्वित है। पूज्य मालवीय जी का गौरव और संस्तुति समस्त राष्ट्र का गौरव और संस्तुति है। इससे राष्ट्र में पुनरुज्जीवन की स्थापना ही नहीं होगी वरन उनके द्वारा निर्देशित मार्ग का भी प्रक्षालन होगा।

पूज्य मालवीय महाराज ऐसे राष्ट्र नेता किसी भी राष्ट्र को सौभाग्य से ही प्राप्त होते हैं। भारत का यह सौभाग्य है कि ऐसे महामानव के निर्देशन में उसका राष्ट्रीय विकास हुआ और आज भी जो विकास-क्रम चल रहा है वह भी उन्हीं के त्याग और तपस्या का ही फल है। हमें प्रसन्नता है कि समस्त राष्ट्र तथा राष्ट्र के नेता अखिल भारतीय पैमाने पर पूज्य मालवीय जी की जन्म-शती का समारोह सफलतापूर्वक मना रहे हैं। पूज्य मालवीय जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभापति थे। हिन्दी तथा राष्ट्रभाषा की उन्नति में उनका योगदान उज्ज्वल है। सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के वह सभापति थे। उनके निर्देशन में सम्मेलन को हिन्दी के विकास में जो सफलता प्राप्त हुई वह ऐतिहासिक है। हमारा अनुरोध है कि प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी और हिन्दी-भक्त तन मन और धन से पूज्य मालवीय जी की जन्मशती की स्मृति में स्थान स्थान पर सभायें करके अपनी श्रद्धांजलि उस अमर आत्मा के प्रति समर्पित करे। यह उसका पावन कर्त्तव्य है। हम भी पूज्य मालवीय की जन्मशती के अवसर पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें राष्ट्र भाषा हिन्दी की सेवा करने में उनके द्वारा बताये मार्ग पर चलने की शक्ति और बल प्रदान करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113065
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सम्मेलन-पत्रिका' का अनवद्य विशेषांक

कला-अंक

'सम्मेलन-पत्रिका' का सत्यं, शिवं, सुन्दरं और स्वस्तिकम् इन चार विभागों में विभक्त कला अंक सुपर रायल साइज़ में साढ़े पाँच सौ पृष्ठों का कला विषयक एक सन्दर्भ, संग्रहणीय ग्रन्थ है। कलाओं की प्राचीनता, उनके उद्भव और विकास से लेकर वर्तमान कला प्रगतियों का सैद्धान्तिक विवेचन इस अंक की विशेषता है। आलोचकों, कलामर्मज्ञों की दृष्टि में यह कला अंक हिन्दी में कला विषयक सर्वप्रथम भारतीय सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक ग्रन्थ है। चित्रकला के अग्रदूत अवनीन्द्रनाथ ठाकुर कृत 'भारत शिल्प के षडंग' नामक बँगला कृति का सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद और विष्णुधर्मोत्तर पुराणान्तर्गत 'चित्रसूत्रम्' का भाषानुवाद सहित प्रकाशन हिन्दी में प्रथम बार इस अंक में हुआ है। साथ ही, प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर कलाओं की पूरी सूची, भारत के प्रसिद्ध कला-मण्डप, कला, संस्कृति और पुरातत्त्व सम्बन्धी ग्रन्थों की सूची, विश्व के अद्भुत स्मारक और कलाचार्यों की नामावली प्रस्तुत कला अंक के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र किसी एक स्थान पर मिलना सम्भव नहीं है। ऐसे कलापूर्ण मुद्रित सचित्र विशेषांक का लागत मूल्य केवल आठ रुपये है।

सम्मेलन के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आचार्य सायण और माधव	६) रु०	मत्स्यपुराण	२०) रु०
तुलसी-दर्शन	५) रु०	वायुपुराण	१२) रु०
गोरखबानी	६) रु०	महावंश	५॥) रु०
हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण	१०) रु०	जातक (छः भागों में)	१०), ८), १०), ८), ८), ११) रु०
पाली साहित्य का इतिहास	१०) रु०		
प्रेमघन सर्वस्व भाग १, २	६), १०) रु०	पुराणों में गंगा	३॥) रु०
शिशुपालवध महाकाव्य	८) रु०	तपोभूमि	१०) रु०
राजनीति के सिद्धान्त	८) रु०	शंकराचार्य का आचार दर्शन	५) रु०
आयुर्वेद का इतिहास	३॥) रु०	रश्मिमाला	३॥।) रु०
ज्योति-विहग	५) रु०	भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता	५) रु०
राजस्थानी लोक गीत	२) रु०	क्रान्तिकारी तुलसी	१०) रु०
भोजपुरी लोकगीत (दो भाग)	६), १०) रु०	साहित्य और कला	२॥) रु०
मैथिली लोकगीत	५) रु०	प्रत्यक्ष शारीर कोश	८) रु०
भोजपुरी लोकगीत में करुण रस	६) रु०	जीवरसायन कोश	६) रु०
आदर्श नगर-व्यवस्था	१०) रु०	चिकित्सा विज्ञान कोश	७॥) ०
ऐतरेय ब्राह्मण	५) रु०	भूतत्त्व विज्ञान कोश	२॥) रु०

सहायक मंत्री—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

• • •

मुद्रक तथा प्रकाशक : रामप्रताप त्रिपाठी : सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् कलाकारों की प्रारंभिक रचनाएँ उन पद-चिह्नों के समान हैं, जिन पर चल कर सामान्य लोग जीवन और उसके उद्देश्यों का संधान कर सकते हैं

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित

हार

युग-कवि पं० सुमित्रानन्दन पंत की किशोरावस्था में लिखी गयी सर्व-प्रथम रचना है

यह उपन्यास सब के लिए सर्वोत्तम मार्गदर्शक है

सीमित संस्करण तथा प्रत्येक प्रति पर कवि का तात्कालिक चित्र और हस्ताक्षर

मूल्य, दस रुपए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम सभापति

सम्मेलन पत्रिका

महामना मालवीय

के

जन्मशती के उपलक्ष में

'सम्मेलन पत्रिका' का नये वर्ष का अंक

'मालवीय-स्मृति-अंक'

वृहद् विशेषांक के रूप में प्रकाशित होगा

इस विशेषांक में महामना मालवीय के संबंध में राष्ट्र-नेताओं, हिन्दी के वयोवृद्ध विद्वानों, प्रसिद्ध लेखकों तथा कलाकारों की प्रमुख रचनायें प्रकाशित होंगी। हिन्दी भाषा एवं साहित्य, भारतीय संस्कृति तथा धर्म संबंधी विशिष्ट रचनाओं के साथ ही पूज्य मालवीय जी महाराज की प्रामाणिक जीवनी, उनकी हिन्दी-पत्रकारिता, हिन्दी-सेवा, लेखन-कला, रोचक संस्मरण तथा अन्य अनेक बहुमूल्य सामग्री तथा दुर्लभ कृतियों का प्रकाशन भी इस वृहद् विशेषांक में होगा। साथ ही दर्जनों अलभ्य चित्रों से यह विशेषांक सुसज्जित होगा।

सहायक मन्त्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

मुद्रक और प्रकाशक : रामप्रताप त्रिपाठी : सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar